MAPSY-101

मनोवैज्ञानिक शोध विधियाँ
Methods of Psychological Research

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय–हल्द्वानी 263139
फोन नं : 05946–286001
टोल फ्री नं. 18001804025
ई–मेल info@uou.ac.in, http://uou.ac.in

अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष
कुलपति,
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

संयोजक
निदेशक,
शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

अध्ययन मण्डल के सदस्य

डॉ0 आर.आर . सिंह (सदस्य)
असिस्टेंट प्रोफेसर
शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखंड

डॉ0 ए0पी0 सिंह (सदस्य)
एसोशिएट प्रोफेसर
मनोविज्ञान विभाग
राजकीय रजा पी जी कॉलेज, रामपुर

डॉ0 स्मिता गुप्ता
मनोविज्ञान विभाग
इग्नू

डॉ0 संगीता सिंह
अकादमिक परामर्शदाता
मनोविज्ञान विभाग
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखंड

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ. सीता
मनोविज्ञान विभाग
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखंड

इकाई लेखन	इकाई संख्या
डॉ. अन्दकेश्वर सिंह, मनोविज्ञान विभाग, टी0डी0 कॉलेज, जौनपुर, उत्तर प्रदेश	1,2,3,19, 20
डॉ. ए.पी. सिंह, मनोविज्ञान विभाग, राजकीय रजा. पी. जी. कॉलेज, रामपुर	4,5,6,7,8,9, 13,14, 15
डॉ. जगदीश सिंह, मनोविज्ञान विभाग, टी0डी0 कॉलेज,जौनपुर, उत्तर प्रदेश	10,11,12,16,17,18

पाठ्यक्रम संपादन

गरिमा बिष्ट, अकादमिक परामर्शदाता
मनोविज्ञान विभाग
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी, उत्तराखंड

प्रकाशन वर्ष : 2019

इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

कॉपीराइट : @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
संस्करण : सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति
प्रकाशक : सामग्री उत्पादन तथा वितरण निदेशालय,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी–263139, नैनीताल
Mail : books@uou.ac.in
मुद्रक : डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर मुद्रित प्रतियाँ 200

अनुक्रमणिका

MAPSY - 101

मनोवैज्ञानिक शोध विधियाँ
Methods of Psychological Research

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
	खण्ड 1: मनोवैज्ञानिक शोध:- अर्थ, स्वरूप एवं विषय-अर्थ क्षेत्र	
1	मनोवैज्ञानिक शोध का अर्थ एवं विशेषताएँ (Meaning and Characteristics of Psychological Research)	1-6
2	मनोवैज्ञानिक शोध का स्वरूप एवं विषय-क्षेत्र (Nature and Scope of Psychological Research)	7-12
3	मनोवैज्ञानिक शोध का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य (Historical Perspective of Psychological Research)	13-16
	खण्ड 2: मनोवैज्ञानिक शोध के प्रकार (Types of Psychological Research)	
4	मौलिक एवं अनुप्रयुक्त शोध (Fundamental and Applied Research)	17-25
5	प्रयोगात्मक एवं सह-संबंध शोध (Experimental and Correlation Research)	26-47
6	एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध (Ex-post facto Research)	47-57
	खण्ड 3: शोध समस्या एवं उपकल्पना (Research Problem and Hypothesis)	
7	शोध समस्या की परिभाषा एवं चयन की कसौटियाँ (Definition and criteria of selecting a Research Problem)	58-69
8	शोध उपकल्पना:- अर्थ एवं प्रकार (Research Hypothesis:- Meaning and types)	70-80
9	उपकल्पना के स्त्रोत एवं एक अच्छी उपकल्पना की विशेषताएँ (Sources of hypothesis, Characteristics of a Good Research Hypothesis)	81-88
	खण्ड 4: प्रतिदर्शन प्रक्रिया एवं प्रविधियाँ (Process of Sampling and its Technique)	
10	प्रतिदर्श का अर्थ, एक अच्छे प्रतिदर्श की विशेषता, प्रतिदर्श आकार एवं प्रतिदर्श की विश्वसनीयता (Meaning, characteristics, size and reliability of a good sample)	89-95
11	संभाव्यता प्रतिदर्शन:- सरल एवं स्तरीकृत यादृच्छिक प्रतिदर्शन (Probability Sampling - Simple and Stratified Random Sampling)	96-103
12	गैर संभाव्यता प्रतिदर्शन:- प्रासांगिक, कोटा एवं हिमकन्दु प्रतिदर्शन (Non-Probability Sampling:- Incidental, Quota and Snow Ball sampling)	104-109
	खण्ड 5: चर एवं उनका मापन (Variables and their measurement)	
13	चर का अर्थ एवं प्रकार (Meaning and Types of Variables)	110-119

14	चरों का नियंत्रण (Control of Variables)	120-130
15	मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का स्वरूप एवं प्रकार (Nature and Types of Psychological Tests)	131-142
	खण्ड 6: शोध अभिकल्प एवं रणनीति (Research Design and its Strategies)	
16	शोध अभिकल्प का अर्थ एवं उद्देश्य (Meaning and purpose of Research Design)	143-147
17	शोध अभिकल्प के प्रकार:- अन्तःसमूह, अन्तर समूह एवं कारकीय अभिकल्प (Types of Research Design: Within Group, Between Group and Factorial)	148-161
18	प्रदत्त संग्रहण की प्रविधियाँ- अवलोकन, प्रश्नावली, साक्षात्कार, श्रेणी मूल्यांकन, चिह्नांकन-सूची, एवम समाजमिति (Technique of Data Collection: Observation, Questionnaires, Interview, Rating Scales, Check List and Sociometry)	162-183
	खण्ड 7: प्रतिवेदन लेखन (Report Writing)	
19	शोध प्रस्ताव की तैयारी (Preparation of Research Proposal)	184-188
20	शोध प्रतिवेदन लेखन (Writing a Research Report)	189-194

इकाई-1 मनोवैज्ञानिक शोध का अर्थ एवं विशेषताएँ

(Meaning and Characteristics of Psychological Research)

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 मनोवैज्ञानिक शोध का अर्थ

1.4 मनोवैज्ञानिक शोध की विशेषताएँ

1.5 सारांश

1.6 शब्दावली

1.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

अनुसंधान मानव ज्ञान को नई दिशा प्रदान करता है तथा उसे विकसित तथा परिमार्जित करता है। अनुसंधान ज्ञान के विविध पक्षों में गहनता तथा सूक्ष्मता प्रदान करता है। अनुसंधान अनेक नवीन कार्य विधियों को विकसित करता है, अनुसंधान वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित विश्लेषण करने की अधिक तर्कयुक्त, व्यवस्थित, गहन प्रक्रिया है। अनुसंधान वैज्ञानिक पद्धति की अत्यन्त विशिष्ट अवस्था है। एडवर्डस कहते हैं कि-अनुसंधान किसी प्रश्न या समस्या या प्रस्तावित उत्तरों की जांच के लिए उत्तर खोजने हेतु किया जाता है। इस प्रकार अनुसंधान चतुर्दिक विकास का संवाहक होता है। अनुसंधान की यह विशेषता है कि वह एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जो मापन पर आधारित होता है। इसकी यह भी विशेषता है कि यह तथ्यपरक होता है, जिसे सतर्कता के साथ प्रतिवेदित किया जाता है।

मनोवैज्ञानिक शोध के माध्यम से मनुष्य के व्यवहारों एवं मानसिक क्रियाओं के स्वरूप, उनमें निहित क्रियातंत्रों तथा उनके निर्धारकों का पता लगाया जाता है। मनोवैज्ञानिक अनुसंधान भी वैज्ञानिक ढ़ंग से किया

जाता है। इसमें मनोविज्ञान सम्बन्धी अनुसंधानों के सम्प्रत्ययन, वर्गीकरण, प्रदत्त संग्रह की प्रक्रियाओं एवं अभिकल्पों का विवेचन किया गया है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह जान सकेंगे कि -

- अनुसंधान क्या है ?
- मनोवैज्ञानिक अनुसंधान क्या है?
- अनुसंधान की विशेषकर मनोवैज्ञानिक शोध की विशेषता क्या होती है ?

1.3 मनोवैज्ञानिक शोध का अर्थ

मनोवैज्ञानिक शोध के अर्थ को स्पष्ट करने से पहले शोध या अनुसंधान क्या है, वैज्ञानिक शोध क्या है, इसे समझना आवश्यक है। वैसे तो अनुसंधान या शोध की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी जा सकती है। सामान्यतया शोध का अर्थ किसी समस्या के निराकरण के लिए व्यक्ति निरपेक्ष विधियों के आधार पर समस्या का प्रासंगिक, विश्वसनीय, वैध तथा पक्षपात रहित उत्तर खोजना है।

जे डब्ल्यू बेस्ट के अनुसार- "शोध वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित विश्लेषण करने की तर्कयुक्त, व्यवस्थित गहन प्रक्रिया है। शोध वैज्ञानिक पद्धति की अत्यन्त विशिष्ट अवस्था है।"

ए0एल0 एडवर्डस के अनुसार - *"शोध किसी प्रश्न या समस्या या प्रस्तावित उत्तरों की जाँच के लिए उत्तर खोजने हेतु किया जाता है।"*

करलिंगर का मत है कि - *"वैज्ञानिक अनुसंधान प्राकृतिक दृश्य विषयों के मध्य अनुमानित सम्बन्धों से सम्बन्धित परिकल्पनात्मक कथनों की व्यवस्थित, नियंत्रित, अनुभवजन्य तथा तार्किक खोज है।"*

पी0एम0 कुक के अनुसार- *"अनुसंधान एक दी गई समस्या से संदर्भित तथ्यों एवं उनके अर्थों या निहित तात्पर्यों की एक सत्यनिष्ठ, व्यापक एवं बौद्धिक खोज है।"* इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि शोध व्यक्ति निरपेक्ष विधियों के आधार पर समस्या के समाधान के लिए अपनाई गई व्यवस्थित, तर्कसंगत एवं अनुभवजन्य प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया प्रत्येक अध्ययन विषय में शोध के लिए आवश्यक है।

वैज्ञानिक शोध के अर्थ को सपष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि किसी समस्या या प्रश्न का समाधान करने का क्रमबद्ध एवं वस्तुनिष्ठ प्रयास ही वैज्ञानिक शोध कहलाता है। वैज्ञानिक शोध में शोधकर्ता नियंत्रित एवं

आनुभविक शोध करता है । करलिंगर ने वैज्ञानिक शोध की परिभाषा करते हुए कहा है कि *"स्वाभाविक घटनाओं का क्रमबद्ध, नियंत्रित, आनुभविक एवं आलोचनात्मक अनुसंधान जो घटनाओं के बीच कल्पित सम्बन्धों के सिद्धान्तों एवं प्राक्कल्पनाओं द्वारा निर्देशित होता है को वैज्ञानिक शोध कहा जाता है।"* **बेस्ट एवं काहन** ने भी वैज्ञानिक शोध के अर्थ को स्पष्ट किया है- *"वैज्ञानिक शोध किसी नियंत्रित प्रेक्षण क्रमबद्ध, वस्तुनिष्ठ अभिलेख एवं विश्लेषण है, जिसके आधार पर सामान्यीकरण, नियम या सिद्धान्त विकसित किया जाता है तथा जिससे बहुत सारी घटनाओं, जो किसी खास क्रिया का परिणाम या कारण हो सकती है, को नियंत्रित कर उनके बारे में पूर्व कथन किया जाता है।"*

इस प्रकार इन परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि-वैज्ञानिक शोध के स्वरूप का मूल तथ्य यह है कि इसमें एक नियंत्रित प्रेक्षण होता है और इस तरह से प्रेक्षण से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर कोई नया सिद्धान्त या नियम विकसित किया जाता है। इसके अलावा भी वैज्ञानिक शोध की अनेक विशेषताएँ होती हैं।

अनुसंधान या वैज्ञानिक अनुसंधान के अर्थ स्पष्ट हो जाने के पश्चात अब मनोवैज्ञानिक शोध के अर्थ को अच्छी तरह से स्पष्ट किया जा सकता है।

मनोवैज्ञानिक शोध- मनोवैज्ञानिक शोध के माध्यम से मनुष्य के व्यवहारों एवं मानसिक क्रियाओं के स्वरूप, उनमें निहित क्रियातंत्रों तथा उनके निर्धारकों का पता लगाया जाता है। मनोवैज्ञानिक अनुसंधान को इस प्रकार भी स्पष्ट किया जा सकता है- मनोविज्ञान के विषय क्षेत्र से सम्बन्धित किसी समस्या के निराकरण के लिए व्यक्ति निरपेक्ष/तर्कयुक्त पद्धति के आधार पर प्रासंगिक, विश्वसनीय, वैध, पक्षपात रहित तथा परखे जा सकने योग्य तथ्यों के एकत्रीकरण, परिणामों, के विवेचन एवं निष्कर्षों तक पहुँचने की समस्त प्रक्रिया को मनोवैज्ञानिक शोध कहा जा सकता है। **डी एमैटो** ने मनोवैज्ञानिक शोध को परिभाषित करते हुए कहा है कि - *"मनोवैज्ञानिक शोध के अंतर्गत मनोविज्ञान के क्षेत्र के भीतर की समस्याओं के बारे में किए गए सभी शोध को रखा जाता है।"* इस प्रकार मनोविज्ञान की विभिन्न शाखाओं में किए गए सभी तरह के शोध चाहे वह प्रयोगात्मक हों या अप्रयोगात्मक व मनोवैज्ञानिक शोध कहलाते हैं। मनोवैज्ञानिक शोध भी वैज्ञानिक ढंग से किया जाता है। इसमें व्यवहारों एवं क्रियाओं के स्वरूप, उनमें निहित क्रियातंत्रों एवं उनके नियमों का निर्धारण किया जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शोध वैज्ञानिक को मनोवैज्ञानिक या किसी क्षेत्र से सम्बन्धित हो उसे वैज्ञानिक पद्धति से खोजे गए उत्तर के रूप में समझा जा सकता है। शोध एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया होती है। यही निरंतरता विज्ञान की प्रगति का चरण है।

1.4 मनोवैज्ञानिक शोध की विशेषताएँ

किसी भी मनोवैज्ञानिक शोध में निम्नलिखित विशेषताएँ पायी जाती हैं -

1. मनोवैज्ञानिक अनुसंधान में प्रायः प्रायोगिक पद्धति का व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है। अतः अधिकांश मनोवैज्ञानिक शोध का स्वरूप उच्च वैज्ञानिक स्तर का होता है।
2. मनोवैज्ञानिक शोध में बाह्यचरों के नियंत्रण की व्यवस्था रहती है।
3. मनोवैज्ञानिक शोधों में इस प्रकार के शोध अभिकल्प मनोवैज्ञानिकों द्वारा विकसित किए गए हैं जिनके आधार पर स्वतंत्र चर के प्रभाव को अन्य चरों के प्रभावों से अलग किया जा सकता है। इसमें विभिन्न चरों के पारस्परिक सम्बन्धों के वैज्ञानिक मूल्यांकन में भी पर्याप्त सहायता मिलती है।
4. मनोवैज्ञानिक शोधों में विशिष्ट सांख्यकीय विधियों का आँकड़ों के संकलन, विश्लेषण एवं विवेचन में उपयोग किया जाता है।
5. मनोवैज्ञानिक शोधों द्वारा प्राप्त तथ्यों, नियमों व सिद्धान्तों का स्वरूप पर्याप्त मात्रा में वैज्ञानिक होता है।
6. मनोवैज्ञानिकों द्वारा मनोवैज्ञानिक तथ्यों को मात्रात्मक रूप प्रदान करने से अधिकांश शोधों का स्वरूप विधि -अनुस्थापित रहता है। अतः उनमें वैज्ञानिक पद्धति का व्यापक उपयोग किया जाता है।
7. मनोवैज्ञानिक मूलभूत शोधों का स्तर अत्यन्त उच्च वैज्ञानिक होता है।
8. मनोवैज्ञानिक शोध प्रायः उद्दीपक-प्राणी-अनुक्रिया (एस0ओ0आर0) से सम्बन्धित रहता है।

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप शोध, वैज्ञानिक शोध एवं मनोवैज्ञानिक शोध के अर्थ के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक शोध की विशेषताओं के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। शोध या अनुसंधान वैज्ञानिक पद्धति पर आधरित विश्लेषण करने की अधिक तर्कयुक्त, व्यवस्थित गहन प्रक्रिया है। शोध वैज्ञानिक पद्धति की अत्यन्त विशिष्ट अवस्था है। इसी प्रकार वैज्ञानिक शोध प्राकृतिक दृश्य विषयों के बीच अनुमानित सम्बन्धों से सम्बन्धित परिकल्पनात्मक कथनों की व्यवस्थित, नियंत्रित, अनुभवजन्य तथा तार्किक खोज है। मनोवैज्ञानिक अनुसंधान जिसमें मनोविज्ञान के क्षेत्र के भीतर की समस्याओं के बारे में किए गए सभी प्रकार के शोध को रखते हैं। मनोविज्ञान में चूँकि जीवित प्राणियों के व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है, इसलिए मनोवैज्ञानिक शोध का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है। मनोवैज्ञानिक अनुसंधान या शोध की अनेक विशेषताएँ होती है। अधिकतर मनोवैज्ञानिक शोध का स्वरूप उच्च वैज्ञानिक स्तर का होता है। मनोवैज्ञानिक शोधों में अधिकांशतया प्रयोग पद्धति का उपयोग किया जाता है। इसमें तथ्यों के विश्लेषण हेतु उच्च स्तर की सांख्यिकीय प्रविधियों का उपयोग किया जाता है।

1.6 शब्दावली

- शोध अनुसंधान : शोध सत्य को खोजने की व पद्धति है जो तर्कपूर्ण चिन्तन की विधि द्वारा की जाती है। यह समस्या के निराकरण हेतु अपनाई गई वैज्ञानिक पद्धति है।
- वैज्ञानिक शोध : यह प्राकृतिक गोचरों से पूर्व कल्पित सम्बन्धों के बारे में परिकल्पनात्मक कथनों का क्रमबद्ध, नियंत्रित इन्द्रियानुभविक और आलोचनात्मक खोज है।
- गोचर : गोचर वह है जिसका हम प्रत्यक्षीकरण करते हैं और जो प्रकृति के किसी क्षेत्र एवं मानवीय व्यवहारों से सम्बन्धित होता है। गोचर को ही सबके लिए एक रूप में प्रत्यक्ष हो जाने पर तथ्य कहा जाता है।
- इन्द्रियानुभविक : इससे तात्पर्य अनुभवगम्य होना है। ज्ञान वैज्ञानिक तभी होता है जब वह अनुभव की कसौटी पर खरा उतरता है।
- मनोवैज्ञानिक शोध : इस माध्यम से मनुष्य के व्यवहारों एवं मानसिक क्रियाओं के स्वरूप, उनमें निहित क्रियातंत्रों तथा उनके निर्धारकों का पता लगाया जाता है। यह वैज्ञानिक ढ़ंग से किया जाता है।

1.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. शोध वैज्ञानिक पद्धति की अत्यन्त ------ अवस्था है।
2. किसी समस्या या प्रश्न का समाधान करने का ------एवं वस्तुनिष्ठ प्रारूप ही वैज्ञानिक शोध है।
3. मनोवैज्ञानिक शोध के माध्यम से मनुष्य के --- एवं मानसिक क्रियाओं के स्वरूप को समझते हैं।
4. मनोवैज्ञानिक शोध भी ------ से किया जाता है।
5. मनोवैज्ञानिक शोध में प्रायः ----- का व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है।
6. मनोवैज्ञानिक शोध प्रायः ---- से सम्बन्धित रहता है।

उत्तर: 1)विशिष्ट 2) क्रम बद्ध 3) व्यवहारों 4) वैज्ञानिक ढ़ंग

5) प्रयोग पद्धति 6) उद्दीपक-प्राणी-अनुक्रिया

1.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- **कपिल, डा0 एच0 के0** (2010): अनुसंधान विधियाँ- व्यवहारपरक विज्ञानों में, हर प्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशक, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।

- **त्रिपाठी, जयगोपाल** (2007): मनोविज्ञान एवं शिक्षा में शोध पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- **त्रिपाठी, प्रो0 लाल बचन एवं अन्य** (2008): मनोवैज्ञानिक अनुसंधान पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- **सिंह, अरूण कुमार** (2009): मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल- बनारसी दास, पटना एवं वाराणसी।
- Goode, W.J. & Hatt, P. K. (1981): Methods in Scoial Research
- Festinger and Katz : Research method in Behavioural Sciences.
- Kerlinger, F.N. (1986): Foundations of Behavioural Research
- Mc Guin, F.J. (1990) : Experimental Psychology

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मनोवैज्ञानिक शोध का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
2. मनोवैज्ञानिक शोध की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

इकाई-2 मनोवैज्ञानिक शोध: स्वरूप एवं क्षेत्र

(Psychological Research:- Nature and Scope)

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 मनोवैज्ञानिक शोध का स्वरूप

2.4 मनोवैज्ञानिक शोध का क्षेत्र

2.5 सारांश

2.6 शब्दावली

2.7 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

अनुसंधान किसी विशिष्ट प्रश्न के महत्व पर आधारित होकर प्रस्तुत प्रश्नों के उत्तरों के लिए अपेक्षित विषय सामग्री के एकत्रीकरण के लिए अपनाई गई विधियों के स्वरूप पर आधारित है। यदि प्रश्न के उत्तर हेतु व्यक्ति निरपेक्ष, पक्षपात रहित विधियों को अपनाया गया है तभी इस समस्त प्रक्रियाओं को अनुसंधान या शोध कहा जा सकता है। व्यक्ति निरपेक्ष विधियाँ ही ऐसा साधन हैं जिनका प्रयोग कोई भी व्यक्ति कर सकता है और पूर्व अध्ययनों को परख कर सकता है। वास्तव में शोध कभी न समाप्त होने वाली निरन्तर प्रक्रिया है। यही निरन्तरता विज्ञान या मनोविज्ञान की प्रगति का सोपान है। अनुसंधान के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए क्लिफर्ड वुडी का मत है कि - "अनुसंधान सत्य को खोजने की वह पद्धति है जो तर्कपूर्ण चिन्तन की विधि द्वारा की जाती है।" इस प्रकार समस्त विवेचना से स्पष्ट है कि अनुसंधान समस्या के निराकरण हेतु अपनाई गयी वैज्ञानिक पद्धति है। यह एक निरन्तर प्रक्रिया है जो विज्ञान के प्रगति की दिशा निर्देशिका है।

मनोवैज्ञानिक शोध के माध्यम से मनुष्य के व्यवहारों एवं मानसिक प्रक्रियाओं के स्वरूप, उनमें निहित क्रियातंत्रों तथा उनके निर्धारकों का पता लगाया जाता है। इन्द्रियानुभविक ढ़ंग से मनोवैज्ञानिक जगत के बारे में ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। मनोवैज्ञानिक शोध का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे कि-

- मनोवैज्ञानिक शोध का स्वरूप क्या है।
- मनोवैज्ञानिक शोध के कौन-कौन से क्षेत्र हैं।

2.3 मनोवैज्ञानिक शोध का स्वरूप

मनोविज्ञान के अंतर्गत जीवित प्राणी के व्यवहारों एवं मानसिक प्रक्रियाओं का उद्देश्यपूर्ण ढ़ंग से वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। जिस प्रकार से अन्य विज्ञानों में समस्याओं के अध्ययन में वैज्ञानिक विधियों का उपयोग किया जाता है उसी प्रकार मनोविज्ञान में भी वैज्ञानिक विधियों का प्राणियों के समस्त व्यवहारों के अध्ययन के लिए उपयोग किया जाता है। इस प्रकार जो वैज्ञानिक शोध का स्वरूप होता है वही मनोवैज्ञानिक शोध का स्वरूप है। दिल्ली विश्वविद्यालय ने समस्त विषयों में अनुसंधान के लिए एक मानदण्ड निश्चित किया है। इस मानदण्ड को भारत के समस्त विश्वविद्यालय अपनाते हैं। अनुसंधान प्रबन्ध के मापदण्ड को यहाँ दिया जा रहा है - "अनुसंधान कार्य ऐसा अवश्य होना चाहिए कि उसमें या तो नये तथ्यों को प्रकाश में लाया गया हो या तथ्यों या सिद्धान्तों की नयी व्याख्या की गई हो। किसी भी दशा में शोध प्रबन्ध को अभ्यर्थी की आलोचनात्मक परीक्षण एवं निर्णय की क्षमता का साक्षी होना वांछनीय है। अनुसंधान प्रबन्ध को जहाँ तक साहित्यिक प्रस्तुति का प्रश्न है संतोषजनक होना चाहिए" इस प्रकार स्पष्ट है कि अनुसंधान के दो लक्ष्य होते हैं – 1) नये तथ्यों का अविष्कार और 2) ज्ञात तथ्यों एवं प्रचलित सिद्धान्तों को नये दृष्टि से व्याख्या। वैज्ञानिक शोध का स्वरूप और विशिष्ट होता है। चूँकि मनोविज्ञान भी एक विज्ञान है और सभी विज्ञानों में किए जाने वाले शोध को वैज्ञानिक शोध माना जाता है। वैज्ञानिक शोध में भी नए तथ्यों का अविष्कार या ज्ञात तथ्यों एवं प्रचलित सिद्धान्तों की नयी व्याख्या करने का प्रयास किया जाता है। लेकिन वैज्ञानिक शोध के लिए आवश्यक है कि वह इन्द्रियानुभविक चक्र का अनुसरण करती हो। इस बात को ध्यान में रखते हुए मनोवैज्ञानिकों ने वैज्ञानिक शोध की परिभाषा की है। आगे दी जा रही परिभाषा से वैज्ञानिक शोध के स्वरूप एवं विशेषताओं को स्पष्ट किया जा सकता है।

कर्लिंगर के अनुसार - *"वैज्ञानिक अनुसंधान प्राकृतिक गोचरों से पूर्वकल्पित सम्बन्धों के बारे में परिकल्पनात्मक कथनों का क्रमबद्ध, नियंत्रित, इन्द्रियानुभविक और आलोचनात्मक अन्वेषण हैं।"*

उपर्युक्त परिभाषा में गोचर पद महत्वपूर्ण है। गोचर वह है जिसका हम प्रत्यक्षीकरण करते हैं। गोचर को ही सबके लिए एक रूप में प्रत्यक्ष हो जाने पर तथ्य कहते हैं। अतः वैज्ञानिक शोध का केन्द्र बिन्दु हमारे जगत के तथ्य हैं। उपर्युक्त परिभाषा का एक दूसरा पद गोचरों में पूर्वकल्पित सम्बन्ध होता है। प्रकृति, परिवेश, समाज और मनुष्य के व्यवहारों में जो घटनाएं होती हैं उनके बीच पारस्परिक सम्बन्ध होता है। इस जगत् में होने वाले गोचरों में प्रकार्यात्मक सम्बन्ध होता है। इन्हीं सम्बन्धों की खोज एवं निर्धारण वैज्ञानिक शोध है। वैज्ञानिक शोध इन्द्रियानुभविक आधार पर की जाती है। इन्द्रियानुभविक से तात्पर्य है अनुभवगम्य। ज्ञान वैज्ञानिक तभी होता है जब अनुभव की कसौटी पर खरा उतरता है। जब क्रमबद्ध ढंग से इन्द्रियानुभविक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है तब उसे वैज्ञानिक अनुसंधान माना जाता है।

वैज्ञानिक शोध के स्वरूप का विवेचन करते हुए स्पष्ट किया गया है कि समस्त प्रकार के गोचरों का इन्द्रियानुभविक अध्ययन शोध है। जो गोचर पूरी तरह प्रमाणित हो जाता है और जिसका स्वरूप निश्चित हो जाता है तो उसे तथ्य मान लेते हैं। वैज्ञानिक के लिए कोई भी कथन उस स्थिति में तथ्य हो जाता है जब उसका इन्द्रियानुभविक सत्यापन हो जाता है। इन तथ्यों का इन्द्रियानुभविक परीक्षण कोई भी व्यक्ति कर सकता है।

मनोवैज्ञानिक शोध के माध्यम से मनुष्य के व्यवहारों एवं मानसिक क्रियाओं के स्वरूप, उनमें निहित क्रियातंत्रों तथा उनके निर्धारकों का पता लगाया जाता है। मनोवैज्ञानिक भी विज्ञान के अभिग्रहों, उद्देश्यों और उपागमों को स्वीकार करता है। वह इन्द्रियानुभविक विधि से मनोवैज्ञानिक जगत के बारे में ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करता है। मानव के व्यवहारों का प्रेक्षण एवं मापन करता है। मानसिकक्रियाओं का इन्द्रियानुभविक रूप से जानकारी प्राप्त की जा सकती है। उद्दीपक और अनुक्रिया या निवेश और निर्गम का प्रत्यक्ष प्रेक्षण कर उनके बीच घटित होने वाली मानसिक क्रियाओं के स्वरूप और कारकों का अनुमान लगाया जा सकता है।

मनोवैज्ञानिक शोध की विषयवस्तु अत्यन्त जटिल और परिवर्तनशील होती है। किसी भी व्यवहार या मानसिक क्रिया को उत्पन्न करने वाले अनेक कारक होते हैं, जिसके नियंत्रण में कठिनाई तो होती है, लेकिन इनका नियंत्रण भी किया जाता है। मनोवैज्ञानिकों ने इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए अनेक प्रकार की वैज्ञानिक विधियों का विकास किया है।

मनोवैज्ञानिक अनुसंधान में किसी भी समस्या को लेकर जो शोध किए जाते हैं उनके कुछ निश्चत सोपान होते हैं। इन सोपानों का अनुपालन मनोवैज्ञानिक शोधों में होता है। विद्वानों ने कई प्रकार से शोध के चरणों की व्याख्या की है। जहोदा आदि ने शोध के मुख्य चरण सात बतलाए हैं। इन चरणों से गुजरने पर किसी भी शोध की

वैधता तथा निर्भरता काफी बढ़ जाती है। इन सभी चरणों या अवस्थाओं का अनुपालन मनोवैज्ञानिक शोधों में भी किया जाता है।

2.4 मनोवैज्ञानिक शोध का क्षेत्र

मानव जीवन के अक्सर सभी क्षेत्रों में मनोवैज्ञानिक शोध की जरूरत पड़ रही है। औद्योगिक, व्यावसायिक, सैनिक चिकित्सा, शिक्षा जैसे क्षेत्रों में मनोवैज्ञानिक शोध की काफी प्रगति हुई। मनोविज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों जैसे अधिगम, अभिप्रेरणा, सम्प्रत्यय अधिगम, प्रत्यक्षीकरण, स्मरण, चिन्तन आदि में अनेक वैज्ञानिक तथा सैद्धान्तिक अध्ययन हो रहे हैं। इस प्रकार मनोविज्ञान के क्षेत्र में न केवल व्यवहारिक समस्याओं के समाधान के लिए ही गहन शोध हो रहे हैं बल्कि सैद्धान्तिक शोध भी व्यापक स्तर पर हो रहे हैं। मनोवैज्ञानिक तथ्यों, सिद्धान्तों तथा नियमों की खोज में मनोवैज्ञानिक पशुओं तथा पक्षियों के व्यवहार के वैज्ञानिक अध्ययनों को महत्वपूर्ण सफलताएँ मिली है। आज शैक्षिक एवं सामाजिक समस्या को लेकर मनोवैज्ञानिकों द्वारा बड़ी संख्या में शोध किए जा रहे हैं। समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा बालक के सामाजीकरण, सामाजिक अंतः क्रियाओं, समूह प्रतिक्रियाओं, समूह संरचना, समूह प्रभाव, नेतृत्व, अभिवृत्ति, प्रेरणा आदि का अध्ययन तो किया ही जा रहा है साथ ही किस प्रकार संस्कृति बच्चे के व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करती है, वैयक्तिक भिन्नताएँ कैसे अनेक समस्याओं को जन्म देती हैं इनका भी व्यापक रूप से अध्ययन हो रहा है। औद्योगिक क्षेत्र में कर्मचारियों के चयन से लेकर कैसे उद्योगों में मानवीय सम्बन्धों को बढ़ावा दिया जा सकता है, औद्योगिक संघर्ष को कैसे समाप्त किया जा सकता है आदि का भी मनोवैज्ञानिक शोध हो रहा है। आज नित्य नये क्षेत्र मनोवैज्ञानिक शोध के बनते जा रहे हैं।

मनोवैज्ञानिक शोध के क्षेत्र में शोधकर्ता विशेष रूप से तीन चरों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन करता है -

1. उद्दीपक चर
2. प्राणी चर
3. अनुक्रिया चर

अनुक्रिया चर का सम्बन्ध जीव की किसी भी क्रिया या व्यवहार से होता है। जैविक चर का सम्बन्ध जीव की विशेषताओं से होता है। उद्दीपक चर के अंतर्गत कभी-कभी जीव की विशेषताएँ भी आती हैं। उद्दीपक चरों को अनुक्रियाओं का कारक मानते हैं। उद्दीपक को उद्दीपक निवेश के नाम से भी जानते हैं। इसे उद्दीपक संकेत या सूचना निवेश का भी नाम दिया जाता है। मनोवैज्ञानिक प्रयोगों में अक्सर उद्दीपक चर तथा जैविक चर के सम्मिलित प्रभाव से प्रयोज्य की अनुक्रिया प्रभावित होती है। जिसका मापन व अध्ययन करना शोधकर्त्ता का उद्देश्य होता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि मनोवैज्ञानिक शोध का क्षेत्र व्यापक है। मनोवैज्ञानिक शोध की किसी भी स्थिति को उद्दीपक-प्राणी-अनुक्रिया (एस-ओ-आर) इन तीन सम्प्रत्ययों के अंगर्तत विभक्त कर मनोवैज्ञानिक जिस प्रकार की सैद्धान्तिक प्रतिबद्धता या अभिनति को लेकर अपना शोध करना चाहे तो शोध प्रारूप की रूपरेखा तैयार कर सकता है।

2.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह जान चुके होंगे कि मनोवैज्ञानिक शोध का स्वरूप एवं क्षेत्र क्या है। डी एमैटो ने मनोवैज्ञानिक शोध को परिभाषित करते हुए कहा है कि "मनोवैज्ञानिक शोध के अंतर्गत मनोविज्ञान के क्षेत्र के भीतर की समस्याओं के बारे में किए गए सभी तरह के शोध को रखा जाता है।" मनोवैज्ञानिक शोधों का स्वरूप वैज्ञानिक होता है। इसमें प्राणी के व्यवहारों एवं मानसिक क्रियाओं के स्वरूप उनमें निहित क्रियातंत्रों एवं उनके नियमों का निर्धारण किया जाता है। मनोवैज्ञानिक शोध का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है। मानव जीवन के अक्सर सभी क्षेत्रों में मनोवैज्ञानिक शोध की आज आवश्यकता पड़ रही है। मनोवैज्ञानक शोध के क्षेत्र में शोधकर्त्ता विशेष रूप से उद्दीपक-प्राणी-अनुक्रिया इन तीन चरों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन करता है।

2.6 शब्दावली

- **मनोवैज्ञानिक शोध का स्वरूप**: जिस प्रकार से अन्य विज्ञानों में समस्याओं के अध्याय में वैज्ञानिक विधियों का उपयोग किया जाता है उसी प्रकार मनोविज्ञान में भी विभिन्न समस्याओं के अध्ययन में वैज्ञानिक विधियों का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार जो वैज्ञानिक शोध का स्वरूप होता है वही मनोवैज्ञानिक शोध का स्वरूप है।
- **मनोवैज्ञानिक शोध का क्षेत्र**:मनोवैज्ञानिक शोध का क्षेत्र व्यापक है। प्राणी के समस्त व्यवहारों का अध्ययन इसमें होता है। शोधकर्त्ता विशेष रूप से उद्दीपक-प्राणी-अनुक्रिया इन तीन चरों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक शोधों में करता है।

2.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1) मनोविज्ञान के अंतर्गत ------- के व्यवहारों एवं मानसिक प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

2) वैज्ञानिक शोध का ------- हमारे जगत के तथ्य हैं।

3) समस्त प्रकार के गोचरों का ------- शोध है।

4) अनुक्रिया चर का सम्बन्ध ------- किसी भी क्रिया या व्यवहार से होता है।

5) उद्दीपक चर एवं जैविक चर के सम्मिलित प्रभाव से प्रयोज्य की अनुक्रिया प्रभावित होती है। सत्य/असत्य

उत्तर: 1. जीवित प्राणियों 2. केन्द्रबिन्दु 3. इन्द्रियानुभविक अध्ययन 4. जीव की 5.सत्य

2.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- कपिल, डा0 एच0 के0 (2010): अनुसंधान विधियाँ- व्यवहारपरक विज्ञानों में, हर प्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशक, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- त्रिपाठी, जयगोपाल (2007): मनोविज्ञान एवं शिक्षा में शोध पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- त्रिपाठी, प्रो0 लाल बचन एवं अन्य (2008): मनोवैज्ञानिक अनुसंधान पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- सिंह, अरूण कुमार (2009): मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल- बनारसी दास, पटना एवं वाराणसी।
- Goode, W.J. & Hatt, P. K. (1981): Methods in Scoial Research.
- Festinger and Katz : Research method in Behavioural Sciences.
- Kerlinger, F.N. (1986): Foundations of Behavioural Research.
- Mc Guin, F.J. (1990) : Experimental Psychology.

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मनोवैज्ञानिक शोध के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
2. मनोवैज्ञानिक शोध के क्षेत्र का वर्णन कीजिए।

इकाई-3 मनोवैज्ञानिक शोध का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

(Historical Perspective of Psychological Research)

इकाई संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 मनोवैज्ञानिक शोध का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

वास्तव में वैज्ञानिक ज्ञान का इतिहास विज्ञान के विकास के साथ जुड़ा हुआ है, जबकि प्रायः शोध का इतिहास लगभग उतना ही पुराना है जितना कि मानव सभ्यता का इतिहास। साधारण शोध से लेकर वैज्ञानिक शोध तक का इतिहास एक बहुत लम्बा इतिहास है। अतः वैज्ञानिक शोध या मनोवैज्ञानिक शोध के विकास के इतिहास को ठीक प्रकार से समझने के लिए सम्पूर्ण शोध के इतिहास का एक संक्षिप्त सर्वेक्षण अत्यन्त तर्कसंगत व आवश्यक है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप समझ सकेंगे कि -

- शोध का उद्गम कब हुआ।
- शोध के विकास से सम्बन्धित विभिन्न ऐतिहासिक काल।
- सामाजिक विज्ञानों में वैज्ञानिक शोध की स्थिति।

3.3 मनोवैज्ञानिक शोध का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

शोध का उद्गम एक ऐसे शब्द से हुआ है जिसका अर्थ सब दिशाओं में जाना या खोज करना होता है। वैसे भी Research शब्द स्वयं ही दो शब्दों Re तथा Search(Re+Search) से मिलकर बना है। अतः सम्पूर्ण शब्द 'Research' से एक ऐसे सम्मिलित अर्थ का बोध होता है जिसका उद्देश्य खोज की पुनरावृत्ति होता है।

आदिकाल में आश्चर्य जनक घटनाओं की व्याख्या मानव ने सम्भवतः पहले जादू के आधार पर की। इसके पश्चात फिर उनकी व्याख्या सम्भवतः दैविक इच्छा के आधार पर की गई और धीरे-धीरे इन नई कल्पनाओं व धारणाओं से मानव ज्ञान अर्जन की विधि को दार्शनिक विचार धाराएँ मिलीं और चिन्तन में निगमनात्मक तर्क का उदय हुआ। कुछ समय तक इस प्रकार की विचारधारा प्रभावशाली रही । परन्तु इस विचारधारा में भी आगे चलकर परिवर्तन आया और संशयवाद जागृत हुआ, जिससे परम्परागत धार्मिकशास्त्र पद्धति तथा ईश्वरपरक हठ मतों को धक्का लगा और इसका परिणाम हुआ कि मानव चिन्तन में इन्द्रियनुभव वाद का युग आया । यह एक पुनर्जागरण का काल था इससे मानव के चिन्तन में एक नई बौद्धिक चेतना जागृत हुई । इससे प्रकृतिवादी उपागम का उद्गम हुआ ।

आगे चलकर शोध पर विकासवाद के सिद्धान्त का प्रभाव पड़ा। यह युग विज्ञान के प्रगति का युग था । इसमें डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त ने मानव चिन्तन और अन्वेषण को एक नई दिशा प्रदान की और परिकल्पना आधारित निगमनात्मक विधि का विकास हुआ। इस विचारधारा से प्रभावित होकर अगस्त काम्टे ने समाज विज्ञान के अध्ययन में प्रत्यक्षवाद को अपनाया । इमाइल दुर्खीम ने समाज विज्ञान में विषयपरक अध्ययन पद्धति को प्रधानता प्रदान की । मनोविज्ञान के क्षेत्र में व्यवहारवादी विचारधारा का प्रवेश हुआ। मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्त में मानव व्यवहार के विश्लेषण में नियत तत्ववाद के नियम को प्रतिपादित किया । यह सभी नई तथा प्रबल पद्धतियाँ मनुष्य के चिन्तन, अध्ययन व शोध के जगत में वैज्ञानिक विचारधारा की प्रतीक थी। अनुसंधान के क्षेत्र में इस चिन्तन पद्धति का यह प्रभाव पड़ा कि शोध के प्रक्रिया में वैज्ञानिक उपागम तथा वैज्ञानिक पद्धति को बल दिया जाने लगा । इसके कारण सामाजिक एवं मनोवैज्ञानक घटनाओं का अध्ययन मात्रात्मक विधि के आधार पर होने लगा । आगे चलकर मानव के व्यवहार के विश्लेषण में गणितीय नियमों का प्रतिपादन ब्राउन के क्षेत्र सैद्धान्तिक नियम, ऐश एवं शेरिफ के घटना क्रम के उपागम इसी विचार धारा की देन है। शोध के क्षेत्र में फिशर आदि ने प्रायोगिक प्रारूपों का प्रयोग करना प्रारम्भ किया। इसी प्रकार सामाजिक विज्ञानों में शोधों में सांख्यिकीय विधियों का उपयोग जहोदा, यंग, गुडे एवं हाट ने करना शुरू किया । डैमिन्ग, हन्सेन आदि ने शोध के क्षेत्र में वैज्ञानिक प्रतिचयन विधियों का प्रयोग करना प्रारम्भ किया। इतना ही नहीं इन लोगों ने शोध पद्धति को वैज्ञानिक तथा प्रायोगिक विधि के व्यापक उपयोग को विशेष स्तर प्रदान किया। शोध के क्षेत्र में प्रायोगिक विधि के उपयोग से ही वैज्ञानिक शोध की उत्पत्ति हुई है।

आज सामाजिक विज्ञानों में भी वैज्ञानिक अनुसंधान अन्य विज्ञानों की भॉंति होने लगा है। मनोविज्ञान में तो विशेषतः समस्याओं के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक उपागमों का अधिकाधिक रूप से उपयोग हो रहा है। प्रायोगिक पद्धति जो एक वैज्ञानिक पद्धति है, इसका अधिकाधिक उपयोग मनोवैज्ञानिक शोधों में हो रहा है।

3.4 सारांश

मनोवैज्ञानिक शोध में फिशर आदि ने प्रायोगिक प्रारूपों का प्रयोग करना प्रारम्भ किया। जहोदा, यंग, गुडे एवं हाट आदि ने सामाजिक विज्ञानों में सांख्यिकीय विधियों का उपयोग कर शोध को वैज्ञानिक स्वरूप देने का प्रयास किया। इतना ही नहीं इन लोगों ने शोध के क्षेत्र में प्रायोगिक विधि के उपयोग करके वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। आज मनोवैज्ञानिक शोधों में अधिकाधिक रूप से वैज्ञानिक उपागमों और वैज्ञानिक पद्धतियों का उपयोग होने लगा है।

3.5 शब्दावली

- **वैज्ञानिक उपागम:** अनुसंधान की ऐसी पद्धति जिसमें कठोर वैज्ञानिक मापदण्ड अपनाये जाते हैं, उसे वैज्ञानिक पद्धति न कहकर वैज्ञानिक उपागम कहते हैं।
- **वैज्ञानिक पद्धति :** कठोर वैज्ञानिक मापदण्ड पर प्रायोगिक पद्धति को ही वैज्ञानिक पद्धति कहते हैं।

3.6 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. कठोर वैज्ञानिक मापदण्ड ------ को ही वैज्ञानिक पद्धति कहते हैं।
2. मनोवैज्ञानिक शोध में ----- आदि ने प्रायोगिक प्रारूपों का प्रयोग करना प्रारम्भ किया।
3. विकासवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किसने किया?

   1) डार्विन 2) गुडे एवं हाट 3) फिशर 4) जहोदा

उत्तर: 1-प्रायोगिक पद्धति 2-फिशर 3- डार्विन

3.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- **कपिल, डा0 एच0 के0** (2010): अनुसंधान विधियाँ- व्यवहारपरक विज्ञानों में, हर प्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशक, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- **त्रिपाठी, जयगोपाल** (2007): मनोविज्ञान एवं शिक्षा में शोध पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।

- **त्रिपाठी, प्रो0 लाल बचन एवं अन्य** (2008): मनोवैज्ञानिक अनुसंधान पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- **सिंह, अरूण कुमार** (2009): मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल- बनारसी दास, पटना एवं वाराणसी।
- Goode, W.J. & Hatt, P.K. (1981): Methods in Scoial Research.
- Festinger and Katz : Research method in Behavioural Sciences.
- Kerlinger, F.N. (1986): Foundations of Behavioural Research.
- Mc Guin, F. J. (1990) : Experimental Psychology.

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मनोवैज्ञानिक शोध के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का वर्णन कीजिए।
2. टिप्पणी लिखिए: 1- वैज्ञानिक उपागम 2- वैज्ञानिक पद्धति

इकाई-4 मौलिक एवं अनुप्रयुक्त शोध
(Fundamental and Applied Research)

इकाई संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 मौलिक शोध का अर्थ

4.4 अनुप्रयुक्त शोध का अर्थ

4.5 मौलिक एवं अनुप्रयुक्त शोध में अन्तर

4.6 शोध में सन्निहित अवस्थाएँ

4.7 सारांश

4.8 शब्दावली

4.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आपने शोध का अर्थ एवं उसकी विशेषताओं का अध्ययन किया तथा मनोवैज्ञानिक शोध के स्वरूप से अवगत हो सके। प्रस्तुत इकाई में आप मौलिक एवं अनुप्रयुक्त शोध का अन्तर तथा इन शोधों में सन्निहित अवस्थाओं से अवगत हो सकेंगे। इस इकाई के अध्ययन से आपको मौलिक शोध एवं अनुप्रयुक्त शोध के स्वरूप को समझने का अवसर तो मिलेगा ही, साथ ही शोध के व्यावहारिक पहलू को जानने का मौका भी मिलेगा।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप-

- मौलिक शोध का अर्थ एवं सम्प्रत्यय समझ सकें।

- अनुप्रयुक्त शोध के स्वरूप को बता सकें।
- मौलिक एवं अनुप्रयुक्त शोध में अन्तर स्थापित कर सकें तथा
- इन शोधों में सन्निहित चरणों पर प्रकाश डाल सकें।

4.3 मौलिक शोध का अर्थ

शिक्षार्थियों, आप शोध के अर्थ एवं स्वरूप से अवगत हो चुके हैं। आप यह भी जान चुके हैं कि एक वैज्ञानिक शोध की क्या-क्या विशेषताएँ होती हैं एक मनोवैज्ञानिक शोध किस सीमा तक इन विशेषताओं को ग्रहण किये हुए है।

आइए, अब हम शोधकर्ता के उद्देश्य के दृष्टिकोण से शोध के प्रकार की चर्चा करें। दरअसल, कोई भी शोधकर्ता शोध करने के पूर्व ही यह तय कर लेता है कि उसे किस तरह का शोध करना है। उसका उद्देश्य किसी क्षेत्र में एक सिद्धान्त विकसित करना है अथवा शोध द्वारा किसी क्षेत्र की व्यावहारिक समस्या का समाधान करना है। इसी उद्देश्य के आलोक में शोध को दो भागों में बाँटा गया है- मौलिक शोध तथा अनुप्रयुक्त शोध। मौलिक शोध वैसे शोध को कहा जाता है जिसमें शोधकर्ता का मुख्य उद्देश्य किसी क्षेत्र विशेष में एक सिद्धान्त विकसित करना होता है। ऐसे शोध में शोधकर्ता द्वारा प्रायः व्यापक रूप से वैज्ञानिक तथ्यों, नियमों तथा सिद्धान्तों की खोज की जाती है। ऐसे शोध में शोधकर्ता द्वारा सैद्धान्तिक ज्ञान की खोज पर अधिक बल दिया जाता है। इसे शुद्ध शोध भी कहते हैं । इस शोध में शोधकर्ता को इस बात की चिन्ता नहीं होती कि उसके द्वारा प्राप्त निष्कर्ष से किसी क्षेत्र की व्यावहारिक समस्या के समाधान में मदद मिलेगी या नहीं। उदाहरण स्वरूप, यदि कोई शोधकर्ता कुछ व्यक्तियों का चयन कर उसके अवगम व्यवहार का अध्ययन करता है और इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि अवगम की प्रक्रिया व्यक्ति की आवश्यकता, मूल्य एवं मनोवृत्ति द्वारा प्रभावित होती है तो यह एक मौलिक शोध का उदाहरण होगा। यहाँ, शोधकर्ता अपने शोध के निष्कर्ष के आधार पर एक सामान्य नियम बना सकता है कि *''अवगम में व्यक्तित्व कारकों की सार्थक भूमिका होती है।''* अब इस सामान्य नियम द्वारा अवगम के क्षेत्र की किन-किन समस्याओं का समाधान हो सकता है, इससे एक मूल शोधकर्ता को कोई मतलब नहीं रहता है। इसी प्रकार, पहले से स्थापित किसी सिद्धान्त को शोध द्वारा स्वीकृत या अस्वीकृत करना भी मौलिक शोध के अन्तर्गत ही आता है। विभिन्न विषयों में स्थापित नियम व सिद्धान्त सम्भवतः मौलिक शोध की ही देन हैं, क्योंकि मौलिक शोध का उद्देश्य ही सिर्फ उपकल्पना या सिद्धान्त को विकसित करना व उसकी जाँच करना होता है, उसके व्यावहारिक उपयोग से इसका कुछ भी लेना-देना नहीं होता।

4.4 अनुप्रयुक्त शोध का अर्थ

अनुप्रयुक्त शोध वैसे शोध को कहते हैं जिसमें शोधकर्ता का मुख्य उद्देश्य सैद्धान्तिक सम्प्रत्ययों की जाँच वास्तविक समस्या समाधान के द्वारा करना होता है। यानी, अनुप्रयुक्त शोध का सम्बन्ध प्रायः व्यावहारिक समस्याओं के वर्तमान समय के समाधान से रहता है। इस प्रकार के शोध का उद्देश्य उपयोगितावादी होता है तथा इस तरह के शोध से प्राप्त परिणामों को तत्काल ही उपयोग में लाया जा सकता है।

अनुप्रयुक्त शोध में भी शोधकर्ता चयनित प्रतिदर्श से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर उस जनसंख्या के बारे में विशेष अनुमान लगाता है, परन्तु यहाँ उसका विशेष उद्देश्य इस बात पर बल डालना होता है कि शोध द्वारा प्राप्त निष्कर्ष संबंधित क्षेत्र की वास्तविक समस्या का समाधान किस हद तक कर पाता है। क्रियात्मक शोध, अभिप्रेरणात्मक शोध, सामाजिक शोध, औद्योगिक शोध, चिकित्सीय शोध, शैक्षिक शोध आदि अनुप्रयुक्त शोध के अन्तर्गत ही आते हैं।

अनुप्रयुक्त शोध का सम्बन्ध मूलतः वैज्ञानिक ज्ञान एवं तथ्यों पर आधारित उन उपायों की खोज करना होता है जिनके द्वारा व्यावहारिक समस्याओं का हल निकाला जा सके। इसीलिए, अनुप्रयुक्त शोध सामाजिक एवं वास्तविक जीवन की समस्याओं के विश्लेषण एवं समाधान पर बल देता है। अनुप्रयुक्त शोध के आधार पर जो परिणाम प्राप्त होते है वे सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठनों को नीति एवं योजना बनाने में सहायक सिद्ध होते हैं। हॉर्टन एवं हण्ट (1984) ने अनुप्रयुक्त शोध की इसी विशेषता को उजागर करते हुए लिखा है ''यह शोध एक ऐसा अन्वेषण है जो वैज्ञानिक ज्ञान का इस्तेमाल कर व्यावहारिक समस्याओं के समाधान करने का उपाय सुझाता है।''

4.5 मौलिक शोध एवं अनुप्रयुक्त शोध में अन्तर

ऊपर आपने मौलिक शोध एवं अनुप्रयुक्त शोध के बारे में जानकारी प्राप्त की। आइये, अब इन दोनों ही प्रकार के शोध के स्वरूप की तुलना करें कि इनमें क्या समानताएँ हैं एवं क्या भिन्नताएँ हैं।

दरअसल, मौलिक शोध एवं अनुप्रयुक्त शोध दोनों ही में शोधकर्ता एक प्रतिदर्श का चयन करता है अर्थात् शोध के लिए प्रयोज्यों का निष्पक्ष चयन करता है तथा अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर लक्ष्य जीवसंख्या के बारे में विशेष अनुमान लगाता है। इस समानता के रहते हुए भी दोनों में निम्नलिखित अन्तर हैं-

1) मौलिक शोध में मूलतः वैज्ञानिक तथ्यों, नियमों, सिद्धान्तों आदि की खोज की जाती है जबकि अनुप्रयुक्त शोध में इन नियमों व सिद्धान्तों का प्रयोग व्यावहारिक समस्याओं के समाधान में करने के तरीके विकसित किए जाते हैं।

2) मौलिक शोध का सम्बन्ध सैद्धान्तिक ज्ञान से है जबकि अनुप्रयुक्त शोध का सम्बन्ध व्यावहारिक ज्ञान से है। मौलिक शोध को इस बात से कोई मतलब नहीं रहता कि प्राप्त नया ज्ञान किसी वर्तमान समस्या के समाधान में कारगर होगा या नहीं, जबकि अनुप्रयुक्त शोध का सम्बन्ध उस नये ज्ञान से वर्तमान समस्याओं का समाधान करने का तरीका विकसित करने से है।

3) मौलिक शोध सामान्यतः शोधकर्ता अपने खुद के वित्तीय प्रबन्ध से करता है जबकि अनुप्रयुक्त शोध का संचालन प्रायः वित्तीय एजेंसी के समर्थन एवं प्रायोजन से होता है, जैसे- वर्ल्ड बैंक, यूनिसेफ, यू.जी.सी., सी.एस.आई.आर., आई.सी.एस.एस.आर. इत्यादि के द्वारा अनुप्रयुक्त शोध प्रायः प्रायोजित होता है।

4) कोई शोधकर्ता किस उद्देश्य से कोई शोध कर रहा है, इससे पता चलता है कि शोध का स्वरूप मौलिक होगा या अनुप्रयुक्त। जैसे- यदि कोई शोधकर्ता यह शोध करना चाहता है कि एक व्यक्ति अपराध क्यों करता है या कोई व्यक्ति अपराधी कैसे बन जाता है? तो इस तरह का शोध मौलिक शोध कहलायेगा, परन्तु यदि वही शोधकर्ता यह शोध करना चाहता है कि एक अपराधी को कैसे सही रास्ते पर लाया जा सकता है या उसके इस तरह के व्यवहार को कैसे नियंत्रित किया जा सकता है तो इस तरह का शोध अनुप्रयुक्त शोध कहलायेगा। इसी प्रकार, यदि एक मनोवैज्ञानिक यह शोध करना चाहता है कि कितने तापमान पर किसी उद्योग में कर्मचारी अधिकतम काम करता है तो यह मौलिक शोध होगा, परन्तु यदि वह उद्योग जगत में अपने इस शोध के द्वारा विभिन्न उद्योंगों के कर्मचारियों हेतु इस उपयुक्त तापमान की व्यवस्था करवाता है और औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि कराता है, तो यह अनुप्रयुक्त शोध होगा।

5) स्पष्ट है कि मौलिक शोध एवं अनुप्रयुक्त शोध में उद्देश्य की भिन्नता को लेकर अन्तर है, वरना दोनों एक ही हैं। आइए, अब जरा इन दोनों ही शोधों में सन्निहित अवस्थाओं पर ध्यान दें।

4.6 शोध में सन्निहित अवस्थाएँ

मौलिक शोध हो या अनुप्रयुक्त, इन दोनों ही तरह के मनोवैज्ञानिक शोधों में एक शोधकर्ता को एक निश्चित क्रम या अवस्थाओं का अनुसरण करना पड़ता है। ये अवस्थाएँ निम्नलिखित हैं-

1) **किसी शोध विषय का चयन-** मौलिक एवं अनुप्रयुक्त दोनों ही प्रकार के शोधों में शोधकर्ता को सबसे पहले शोध विषय का चयन करना पड़ता है। शोध विषय से तात्पर्य शोध समस्या से है जो एक प्रश्नवाचक कथन होता है। इसमें चरों के बीच कोई विशेष प्रकार के सम्बन्ध होने की कल्पना की जाती है। शोधकर्ता के लिए शोध समस्या का निर्धारण करना सामान्यतः एक कठिन कार्य होता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए वह उन स्रोतों की ओर झाँकता है जिससे एक वैज्ञानिक समस्या की उत्पत्ति हो सके। इन स्रोतों के रूप में शोधकर्ता शोध जर्नल, मनोवैज्ञानिक एब्स्ट्रैक्ट्स में दिये शोध-पत्र को पढ़ता है तथा उससे एक अच्छी

समस्या की खोज करता है। इस खोज में वह प्रोफेसर एवं विषय के अन्य विशेषज्ञों से भी राय लेता है। एक अच्छी समस्या की खोज का काम दो चरणों में पूरा किया जाता है। पहले चरण में शोधकर्ता इस बात का निश्चय करता है कि उस शोध का सामान्य उद्देश्य क्या है तथा दूसरे चरण में शोधकर्ता उस विशेष उद्देश्य को परिभाषित करता है जिसका विश्लेषण किया जाना है। उदाहरणार्थ, मान लिया जाय कि शोधकर्ता समस्या-समाधान व्यवहार के क्षेत्र में अध्ययन करना चाहता है। ऐसी अवस्था में वह मनोवैज्ञानिक एब्स्ट्रैक्ट्स में छपे उन शोध अनुसंधानों की समीक्षा करेगा जो समस्या-समाणान व्यवहार के क्षेत्र में किये गये हैं। थोड़ी देर के लिए मान लिया जाय कि इस समीक्षा के बद वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि इस क्षेत्र में अब तक बहुत ही कम शोध किये गये हैं। इस सिलसिले में वह किसी विशेषज्ञ एवं प्रोफेसर से बातचीत भी कर सकता है। थोड़ी देर के लिए मान लिया जाय कि मनोवैज्ञानिक एब्स्ट्रैक्ट्स एवं विशेषज्ञ से बातचीत कर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि समस्या-समाधान व्यवहार में अभिप्रेरणात्मक कारकों के महत्व का अध्ययन किया जाय। अतः शोधकर्ता अपने शोध की समस्या का उल्लेख स्पष्ट शब्दों में इस तरह करेगा-''व्यक्तियों द्वारा किसी समस्या-समाधान में अभिप्रेरणात्मक कारकों के महत्व का निर्धारण करना।'' समस्या का निर्धारण कर लेने पर शोध अध्ययन का विशेष उद्देश्य भी निश्चित कर लिया जाता है ताकि शोधकर्ता यह तय कर पाये कि उसकी समस्या का विश्लेषण कैसे किया जायेगा। ऐसा करने के लिए वह उपकल्पना बनाता है। अतः शोधकर्ता यहाँ इस तरह की उपकल्पना विकसित कर सकता है- ''समस्या-समाधान व्यवहार में प्रशंसा से वृद्धि होती है परन्तु निन्दा से कमी आती है।''

2) **चरों का वर्गीकरण-** उपकल्पना का स्पष्टीकरण कर लेने के बाद शोध के दूसरे चरण में शोधकर्ता उन चरों पर ध्यान देता है तथा उनका वर्गीकरण करता है जो उसके शोध अध्ययन में सम्मिलित हैं। सबसे पहले वह स्वतंत्र चर का पता लगाता है क्योंकि इसी चर के प्रभाव के अध्ययन में शोधकर्ता की रूचि होती हैं। उपर्युक्त उदाहरण में प्रशंसा तथा निन्दा को स्वतंन्त्र चर हैं। इसके बाद यह निश्चित किया जाता है कि वह कौन-सा चर है जिसका मापन स्वतंत्र चरों के प्रभाव देखने के लिये वह करेगा। दूसरे शब्दों में, वह कौन-सा चर है जिसके बारे में प्रयोग या शोध करके वह पूर्वकथन करना चाहता है। ऐसे चर को आश्रित चर कहा जाता है। उपर्युक्त उदाहरण में समस्या-समाधान व्यवहार आश्रित चर का उदाहरण है। इसके अलावा शोधकर्ता उन सभी चरों की सूची तैयार करता है जिनके प्रभाव से आश्रित चर में परिवर्तन हो सकता है परन्तु इसके प्रभाव के अध्ययन में यहाँ उसकी रूचि नहीं होती है। अतः वह इन चरों को विशेष विधियों द्वारा नियंत्रित कर लेता है। ऐसे चरों को संगत चर या बहिरंग चर कहा जाता है। उपर्युक्त उदाहरण में प्रयोज्य की आयु, बुद्धि, स्वास्थ्य, आदि ऐसे ही संगत चर के उदाहरण हैं। अतः प्रयोगकर्ता या शोधकर्ता ऐसे चरों को नियंत्रित करके रखता है

ताकि उनसे आश्रित चर प्रभावित न हो जाय। संगत चरों को नियंत्रित करने की कई विधियाँ जिनमें यादृच्छीकरण, संतुलन, मिलान आदि प्रधान हैं।

3) **उचित डिजाइन का चयन-** मनोवैज्ञानिक शोध की तीसरी महत्वपूर्ण अवस्था शोध के लिए उचित डिजाइन का चयन किया जाना है। मनोवैज्ञानिक शोध, चाहे मौलिक हो या अनुपयुक्त को सामान्यतः दो भागों में बाँटा जाता है- प्रयोगात्मक शोध तथा अप्रयोगात्मक शोध। प्रयोगात्मक शोध वैसे शोध को कहा जाता है जिसमें शोधकर्ता का स्वतंत्र चरों पर सीधा नियंत्रण रहता है तथा जिसमें वह इन चरों में जोड़-तोड़ भी आसानी से कर पाता है। प्रयोगशाला प्रयोग शोध तथा क्षेत्र प्रयोग शोध दो प्रमुख प्रयोगात्मक शोध हैं जिनका उपयोग मनोविज्ञान में काफी होता है। अप्रयोगात्मक शोध, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट होता है, प्रयोगात्मक शोध के विपरीत होता है। इसमें शोधकर्ता को स्वतंत्र चरों पर सीधा नियन्त्रण नहीं रहता है तथा उसमें जोड़-तोड़ भी वह नहीं कर पाता है। क्षेत्र अध्ययन, सर्वे शोध आदि अप्रयोगात्मक शोध के कुछ प्रमुख उदाहरण हैं। प्रयोगात्मक शोध तथा अप्रयोगात्मक शोध में प्रयोगात्मक शोध को तुलनात्मक रूप से अधिक श्रेष्ठ समझा जाता है क्योंकि इसमें सही-सही निष्कर्ष पर अधिक विश्वास के साथ इस कारण पहुँचा जाना संभव हो पाता है कि इसमें कारण तथा प्रभाव को एक-दूसरे से सीधे जोड़ने का प्रयास हो पाता है। इस पर हम लोग आगे की इकाई में चर्चा करेंगे।

जब शोधकर्ता ये निर्णय कर लेता है कि वह प्रयोगात्मक शोध या अप्रयोगात्मक शोध में से किस तरह का शोध करेगा तो उसके बाद वह शोध के डिजाइन का चयन करता है। मनोवैज्ञानिक शोध में कई तरह के डिजाइन उपलब्ध हैं जिन्हें दो प्रमुख श्रेणियों में बाँटा गया है- प्रयोगात्मक डिजाइन तथा अप्रयोगात्मक डिजाइन।

उपर्युक्त उदाहरण में मान लिया जाय कि शोधकर्ता एक प्रयोगात्मक शोध करना चाहता है। ऐसी परिस्थिति में तब वह एक प्रयोगात्मक डिजाइन का चयन करेगा। थोड़ी देर के लिए मान लिया जाय कि वह मध्य-प्रयोज्य डिजाइन का प्रयोग करना चाहता है। ऐसी परिस्थिति में शोधकर्ता स्वतंत्र चर के प्रत्येक स्तर के लिए एक अलग-अलग समूह का चयन यादृच्छिक रूप से करेगा। यहाँ स्वतंत्र चर प्रशंसा तथा निन्दा है। इस में जोड़-तोड़ तीन स्तरों या अवस्थाओं में बाँट कर किया जा सकता है- प्रशंसा की अवस्था, निन्दा की अवस्था तथा उपेक्षा की अवस्था। मान लिया जाय कि शोधकर्ता के पास करीब-करीब एक ही उम्र तथा बुद्धि के 15 छात्र उपलब्ध हैं। वह इन सभी छात्रों को यादृच्छिक रूप से तीन समूहों में बाँट देगा और फिर इन तीनों समूहों को यादृच्छिक रूप से तीनों अवस्थाओं में बाँट देगा। इस तरह से एक समूह प्रशंसा की अवस्था में किसी समस्या का समाधान करेगा, दूसरा समूह निन्दा की अवस्था में समरूप समस्या का समाधान करेगा तथा तीसरा समूह उपेक्षा की अवस्था में समरूप समस्या का समाधान करेगा। इस तरह से शोधकर्ता द्वारा मध्य-प्रयोज्य डिजाइन की शर्ते पूरी हो पायेंगी।

4) **उपयुक्त विधियाँ-** जब शोधकर्ता उपयुक्त डिजाइन का चयन कर लेता है, तो वह एक वैज्ञानिक विधि अपनाता है जिसमें उन सभी चरणों की व्याख्या होती है जिनसे होकर शोध की समस्या का समाधान करने का प्रयास किया गया है। सामान्यतः इस अवस्था के तीन चरण होते हैं- प्रयोज्य, उपकरण तथा अन्य वस्तुएँ तथा क्रियाविधि। प्रयोज्य वाले अनुच्छेद में शोधकर्ता प्रयोज्य जो उनके अध्ययन में भाग ले रहे हैं, की उम्र, यौन, बुद्धिलब्धि संगत सूचनाओं की सूची तैयार करता है। जैसे, इस अध्ययन में सभी छात्रों की उम्र 9-10 साल के बीच की है, तथा करीब-करीब उन सबों की बुद्धिलब्धि एक समान है एवं वे सभी एक ही यौन के अर्थात् पुरूष है। उपकरण तथा अन्य वस्तुएँ वाले अनुच्छेद में शोधकर्ता उन उपकरणों जैसे स्टॉपवाच, स्मृति पटह, स्पर्शानुभावक, तथा अन्य वस्तुएँ जैसे कोई मनोवैज्ञानिक परीक्षण, पर्दा, स्केल आदि को दर्शाता है।

इस अवस्था का सबसे प्रमुख भाग क्रियाविधि होती है। इस भाग में शोधकर्ता उन सभी प्रक्रियाओं का वर्णन करता है जिनसे होकर शोध या प्रयोग किये गये हैं। जैसे, शोधकर्ता यहाँ यह दर्शाता है कि किस तरह से प्रयोज्यों को विभिन्न समूहों में बाँटा गया, किस समूह को कौन-सा कार्य दिया गया, किसे नही दिया गया, प्रयोज्यों को क्या निर्देश दिये गये, यदि कोई मनोवैज्ञानिक परीक्षण दिये गये तो वह सभी किस क्रम में दिये गये, आदि, आदि।

क्रियाविधि के अन्तर्गत ही उपर्युक्त उदाहरण में प्रशंसा समूह, निन्दा समूह एवं उपेक्षित समूह से कराये गए कार्यों का क्रमबद्ध अवलोकन किया जायेगा।

5) **प्रदत्त विश्लेषण एवं परिणाम-** मनोवैज्ञानिक शोध की एक महत्वपूर्ण अवस्था परिणाम विश्लेषण की है। जब शोधकर्ता अपने प्रयोग या रिसर्च के आधार पर एक परिणाम तैयार कर लेता है तो उसके बाद वह उस परिणाम का विश्लेषण शुरू कर देता है। परिणाम का विश्लेषण करने के लिए शोधकर्ता कुछ सांख्यिकीय प्रविधियों का सहारा लेता है। इन प्रविधियों में माध्य, मानक विचलन टी-अनुपात, एफ-अनुपात तथा काई-वर्ग तुलनात्मक रूप से अधिक प्रचलित हैं। इन प्रविधियों द्वारा विश्लेषण करने का मुख्य उद्देश्य यह पता लगाना होता है कि स्वतंत्र चर का प्रभाव आश्रित चर पर कितना पड़ा है तथा किस दिशा में पड़ा है। उपर्युक्त शोध के उदाहरण में तीन समूह थे- प्रशंसित समूह, निन्दित समूह, तथा उपेक्षित समूह। तीनों समूहों द्वारा संख्यात्मक क्षमता परीक्षण पर अर्जित प्राप्तांक के आधार पर मान लिया जाय, कि माध्य, मानक विचलन तथा टी अनुपात ज्ञात किया गया। यहाँ प्राप्तांक का अर्थ प्रयोज्यों द्वारा सही उत्तर देने पर मिलने वाले अंकों के जोड़ से है। यदि प्रशंसित समूह का माध्य सबसे अधिक, निन्दित समूह का माध्य उससे कम तथा उपेक्षित समूह का माध्य सबसे कम आता है तथा माध्यों का यह अंतर सार्थक साबित होता है। (अर्थात् टी-अनुपात सार्थक साबित होता है) तो इससे स्पष्ट रूप से शोधकर्ता यह समझ जाएगा कि उसके अध्ययन में स्वतन्त्र चर का प्रभाव आश्रित चर पर स्पष्ट रूप से पड़ा है।

6) **विवेचन एवं निष्कर्ष-** मनोवैज्ञानिक शोध का अन्तिम चरण परिणाम विश्लेषण करके एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचना होता है। सचमुच में इसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए ही शोधकर्ता ने शोध करना प्रारम्भ किया था। इस निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचकर शोधकर्ता शोध की समस्या के बारे में विशेष कथन तैयार करता है। उपर्युक्त उदाहरण में चूँकि प्रशंसित समूह का माध्य निन्दित समूह के माध्य से ऊँचा पाया गया और साथ-ही-साथ माध्य का यह अन्तर सार्थक भी होता पाया गया क्योंकि टी-अनुपात सार्थक बतलाया गया है), तो शोधकर्ता इस अन्तिम निष्कर्ष पर पहुँचता है कि प्रशंसा से समस्या समाधान की क्षमता बढ़ती है तथा निन्दा से घटती है।

यहां यह भी बता दें कि शोधकर्ता निष्कर्ष का उल्लेख करने के पूर्व प्राप्त परिणाम की तुलना पहले के शोधों से करता है। वह इस बात का उल्लेख करता है कि प्रस्तुत शोध का परिणाम पूर्व में किए गये इस विषय के शोधों के समान है, या भिन्न है। विवेचना के अन्तर्गत वह प्राप्त परिणाम के संभावित कारणों का भी उल्लेख करता है और अन्त में शोध के मुख्य निष्कर्षों का उल्लेख क्रमबद्ध रूप से करता है।

4.7 सारांश

शोधकर्ता के उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए शोध के दो प्रकार बताये गए हैं- मौलिक शोध एवं अनुप्रयुक्त शोध।

मौलिक शोध का उद्देश्य किसी क्षेत्र विशेष में नियमों एवं सिद्धान्तों की स्थापना करना होता है जबकि अनुप्रयुक्त शोध किसी व्यावहारिक समस्या के समाधान को केन्द्र में रखकर किया जाता है।

शोध मौलिक हो या अनुप्रयुक्त दोनों ही का संचालन निम्नलिखित अवस्थाओं से गुजरते हुए किया जाता है- शोध विषय का चयन, चरों का वर्गीकरण, उचित डिजाइन का चयन, उपयुक्त विधियां, प्रदत्त विश्लेषण एवं परिणाम, विवेचन एवं निष्कर्ष।

4.8 शब्दावली

- **मौलिक शोध:** वह शोध जिसका संचालन किसी सिद्धान्त या नियम की स्थापना के उद्देश्य से किया जाता है।
- **अनुप्रयुक्त शोध:** वह शोध जिसका उद्देश्य किसी व्यावहारिक समस्या का समाधान उस क्षेत्र के सैद्धान्तिक ज्ञान को उपयोग में लाकर करना होता है।

4.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

➢ रिक्त स्थानों को भरें -

1) ..... शोध का मूल उद्देश्य किसी सिद्धान्त या नियम की स्थापना करना होता है।

2) वह शोध जिसका उद्देश्य व्यावहारिक समस्या का समाधान करना होता है ..... शोध कहलाता है।

➢ निम्नलिखित में कौन-सा कथन सही है और कौन-सा गलत -

3) मौलिक शोध मे सैद्धान्तिक ज्ञान की खोज करने पर अधिक बल दिया जाता है।

4) अनुप्रयुक्त शोध में सैद्धान्ति ज्ञान का उपयोग व्यावहारिक समस्या के समाधान में किया जाता है।

5) क्रियात्मक शोध मौलिक शोध का एक प्रकार है।

6) किसी भी शोध में शोधकर्ता स्वतंत्र एवं आश्रित चरों के बीच के सम्बन्धों की खोज करता है।

उत्तर: 1) मौलिक 2) अनुप्रयुक्त 3) सही 4) सही 5) गलत 6) सही

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- अरूण कुमार सिंह (1998) मनोविज्ञान,समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल-बनारसीदास, दिल्ली।
- एच.के. कपिल (2001) अनुसंधान विधियां (व्यवहारपरक विज्ञानों में), एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।
- एफ.एन. करलिंगर (1964) फाउण्डेशन्स ऑफ विहैवियरल रिसर्च, हॉल्ट, रिनेहार्ट एवं विंसटन, इंक, न्यूयार्क।
- राम आहूजा - ''रिसर्च मेथड्स'', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. मौलिक शोध से आप क्या समझते हैं?
2. अनुप्रयुक्त शोध को उदाहरण देकर समझाएँ।
3. मौलिक शोध एवं अनुप्रयुक्त शोध में अन्तर स्पष्ट करें।
4. शोध में सन्निहित अवस्थाओं का उल्लेख करें।

इकाई-5 प्रयोगात्मक एवं सहसम्बन्धात्मक शोध
(Experimental and Correlation Research)

इकाई संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 प्रयोगात्मक शोध का अर्थ

5.3.1 चर या परिवर्त्य

5.3.2 चरों के प्रकार

5.3.3 प्रयोगात्मक शोध के प्रकार

5.3.4 एक प्रयोगात्मक शोध की रूपरेखा

5.4 सह-सम्बन्धात्मक शोध का अर्थ

5.5 प्रयोगात्मक तथा सहसम्बन्धात्मक शोध में अन्तर

5.6 सारांश

5.7 शब्दावली

5.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.10 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

पूर्व की इकाइयों में आपने पढ़ा कि शोध उत्तर तलाशने की एक प्रक्रिया है। विभिन्न प्रकार के शोध प्रश्नों का उत्तर शोध की भिन्न-भिन्न विधियों को अपनाकर प्राप्त किया जाता है। इतना ही नहीं, शोध में चरों के बीच सम्बन्धों की तलाश भी की जाती है, खासकर स्वतंत्र चर और आश्रित चर के बीच के सम्बन्धों की। विभिन्न अनुसंधान विधियां इस दिशा में सही निष्कर्ष तक पहुँचने में शोधकर्ता की सहायता करती हैं।

प्रस्तुत इकाई में आप प्रयोगात्मक शोध एवं सहसम्बन्धात्मक शोध के स्वरूप एवं विशेषताओं का अध्ययन करेंगे तथा इन दोनों ही प्रकार के शोध में अन्तर जान पायेंगे। हमें उम्मीद है कि इन दोनों ही प्रकार के शोधों का अध्ययन कर आप आनुभविक शोध के सम्बन्ध में कुछ ज्यादा, कुछ नया एवं कुछ उपयोगी ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि-

- आप प्रयोगात्मक शोध की विशेषताओं एवं खामियों से परिचित हो सकें।
- प्रयोगशाला प्रयोग शोध एवं क्षेत्र प्रयोग शोध में अन्तर बता सकें।
- सहसम्बन्धात्मक शोध विधि की विशेषताओं एवं सीमाओं को रेखांकित कर सकेंगे।
- प्रयोगात्मक एवं सहसम्बन्धात्मक शोध में भेद कर सकें तथा
- विभिन्न प्रकार के चरों में अन्तर कर सकें।

5.3 प्रयोगात्मक शोध का अर्थ

प्रयोगात्मक शोध वैसे शोध को कहा जाता है जिसमें प्रयोगकर्ता या शोधकर्ता नियंत्रित परिस्थिति में विशेष चर या चरों में जोड़-तोड़ करता है और उसके प्रभाव को एक-दूसरे चर पर अध्ययन करता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रयोगकर्ता विश्वास के साथ यह कहा जा जाता है कि अमुक जोड़-तोड़ से अमुक प्रभाव पड़ा है। शायद यही कारण है कि प्रयोगात्मक शोध के स्वतंत्र चर तथा आश्रित चर के बीच कारण तथा परिणामस्वरूप प्रयोगकर्ता एक विश्वास के साथ स्थापित कर पाता है। प्रयोगकर्ता प्रयोगशाला में पूर्वनिश्चित एवं पूर्वनिर्धारित अवस्था में किसी स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ करता है और उसका प्रयोज्य की अनुभूतियों एवं व्यवहारों पर पड़ने वाले प्रभावों का निरीक्षण वस्तुनिष्ठ एवं निष्पक्ष ढंग से करता है। निरीक्षण हेतु प्रयोगकर्ता आवश्यकतानुसार विशिष्ट प्रकार के यंत्रों एवं सामग्रियों का भी उपयोग करता है और इस तरह से प्राप्त तथ्यों का सांख्यिकीय विश्लेषण कर ठोस एवं प्रामाणिक परिणाम प्राप्त करता है जिसके आधार पर वह प्राणी के व्यवहारों से संबंधित नियमों एवं सिद्धांतों की स्थापना एवं व्याख्या करता है। प्रयोग कैसे किया जाता है, यह जानने के पहले यह जान लेना आवश्यक है कि चर या चर क्या है?

5.3.1 चर या परिवर्त्य-

चर या चर उन परिस्थितियों या घटनाओं को कहते हैं, जो सदा एक जैसी स्थिति में नहीं रहते। अर्थात, वे प्रतिक्षण बदलते रहते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि चर वे हैं, जो बदलते रहते हैं। यह बदलाव या परिवर्तन घटनाओं के प्रकार या उसके परिमाण अथवा सत्ताकाल में होता हैं, जैसे- प्रकाश, ताप, समय, मौसम, शोर-गुल, श्वास लेने की क्रिया इत्यादि में परिवर्तन का होना। उदाहरण के लिए शोरगुल को लें। शोर-गुल की अवस्था में उत्पन्न आवाज निरंतर रूक-रूककर, थोड़े समय के लिए या अधिक समय के लिए हो सकती है। इसी तरह श्वास की क्रिया भी एक चर है, क्योंकि यह नियमित या अनियमित, धीमी या जल्दी-जल्दी गति की हो सकती है। अतः चर से हमारा तात्पर्य प्राणी या उसके वातावरण की उन परिस्थितियों व घटनाओं से है, जिनके प्रकार एवं परिमाण सदा एक जैसे नहीं रहते, वे बदलते रहते हैं अथवा वे विभिन्न रूपों या प्रकारों के होते हैं। प्रयोग में प्रयोगकर्ता किन्हीं दो या दो से अधिक चरों के बीच के आपसी संबंधों की खोज करता है अथवा किन्हीं दो चरों के बीच के खोजे हुए संबंधों को पुनः जाँच कर संपुष्ट करता है। इस प्रकार प्रयोग दो प्रकार के होते हैं-अन्वेषणात्मक एवं संपुष्टात्मक। जैसे, प्रयोगकर्ता यदि यह जानने की कोशिश करता है कि प्रकाश की तीव्रता और रंगों के प्रत्यक्षीकरण में क्या संबंध है, तापक्रम में वृद्धि होने पर गर्मी की संवेदना में क्या अंतर पड़ता है; सफलता या विफलता की अनुभूति अथवा प्रेरणा का किसी कार्य-संपादन की कुशलता पर क्या प्रभाव पड़ता है आदि; तो इस प्रकार के प्रयोगों को 'अन्वेषणात्मक' प्रयोग कहते हैं। लेकिन, जब प्रयोगकर्ता इस तथ्य की जाँच करता है कि अभ्यास के फलस्वरूप कार्य-संपादन की कुशलता में वृद्धि होती है या लगातार प्रयास करने के फलस्वरूप थकान होती है तब इस प्रकार के प्रयोग को संपुष्टात्मक प्रयोग कहते हैं। संपुष्टात्मक प्रयोग में पहले से स्थापित तथ्य की पुनः जाँच की जाती है।

5.3.2 चरों के प्रकार-

विभिन्न चरों के बीच परस्पर निर्भरता का संबंध रहता है। अर्थात एक चर दूसरे चर पर आश्रित रहता है। अतः, किसी एक चर की स्थिति में किसी प्रकार का हेर-फेर या बदलाव होता है तो इसका प्रभाव 'आश्रित या निर्भर करने वाले चर' पर भी पड़ता है। जैसे- शिक्षण-विषय की लंबाई या अभ्यास की मात्रा में वृद्धि या कमी होने का असर सीखने की क्रिया पर पड़ता है। अतएव, सीखने की क्रिया विषय की लंबाई या शिक्षण-प्रयास की मात्रा पर निर्भर करता है और इस प्रकार इन दोनों प्रकार के चरों के बीच परस्पर निर्भरता का संबंध पाया जाता है। इस दृष्टिकोण से चरों को तीन वर्गों में बाँटा जाता हैं-

(क) आश्रित चर (ख) स्वतंत्र चर (ग) संगत चर

1) **आश्रित चर -** जो चर किसी दूसरे चर पर आश्रित होते हैं, उन्हें आश्रित चर कहते हैं। ऐसे चर दूसरे चरों (खासकर स्वतंत्र चरों) में परिवर्तन या बदलाव लाये जाने पर अपनी आश्रितता के कारण स्वतः परिवर्तित हो

जाते हैं। यानी, ऐसे चरों के प्रकार या परिमाण में किसी प्रकार का बदलाव या परिवर्तन इससे संबद्ध दूसरे चर (स्वतंत्र चर) में परिवर्तन होने पर निर्भर करेगा। इसी निर्भरता के गुण के कारण इसे आश्रित चर कहते हैं। उदाहरण के लिए, औद्योगिक निष्पादन एक आश्रित चर है, क्योंकि यह औद्योगिक वातावरण, कर्मचारी की योग्यता, अभिप्रेरणा आदि चरों पर निर्भर करता है। प्रयोगों में प्रायः आश्रित चरों के संबंध में प्रयोगकर्ता पूर्व कथन करने की कोशिश करता है। जैसे- यदि कोई प्रयोगकर्ता प्रयोग द्वारा निष्पादन पर तापमान के प्रभाव का अध्ययन करता है तो वह निष्पादन पर तापमान के पड़ने वाले प्रभाव की भविष्यवाणी करता है तथा इसी भविष्यवाणी की सत्यता को वह प्रयोग करके सिद्ध करता है। इसी प्रकार, परिणाम के ज्ञान का व्यक्ति के निष्पादन पर प्रभाव यदि कोई मनोवैज्ञानिक देखना चाहता है तो यहाँ परिणाम का ज्ञान स्वतंत्र चर के रूप में कार्य करेगा तथा निष्पादन आश्रित चर के रूप में।

2) **स्वतंत्र चर-** जो चर किसी दूसरे चर (आश्रित चर) पर स्वतंत्र रूप से अपना प्रभाव डालते हैं, उन्हें स्वतंत्र चर कहते हैं। इन्हें स्वतंत्र चर इसलिए कहा जाता है क्योंकि ये स्वतंत्र रूप से किसी आश्रित चर पर अपना प्रभाव डालते हैं। प्रयोग की अवधि में इनकी स्थिति में परिवर्तन लाने या हेर-फेर अथवा जोड़-तोड़ करने हेतु प्रयोगकर्ता स्वतंत्र रहता है और जोड़-'तोड़ करके आश्रित चर पर पड़ने वाले प्रभावों का निरीक्षण या अध्ययन करता है। इस प्रकार, प्रयोग हेतु चुने गए स्वतंत्र चर को नियंत्रित नहीं किया जाता, परन्तु किसी आश्रित चर को प्रभावित करने वाले अन्य स्वतंत्र चरों को नियंत्रित रखा जाता है। उदाहरण के लिए, निष्पादन पर तापमान के प्रभाव को लें। चूँकि यहाँ तापमान का प्रभाव निष्पादन पर पड़ता है तथा प्रयोगकर्ता इसकी स्थिति में परिवर्तन लाकर या हेर-फेर करके (जैसे, एक अवस्था में कम तापमान रखकर और दूसरी अवस्था में अधिक तापमान रखकर) इसके प्रभाव का अध्ययन करता है, इसलिए यहाँ तापमान एक स्वतंत्र चर है।

किसी प्रयोग में स्वतंत्र चर को जिस स्थिति में रखा जाता है उसके अनुसार इसके दो रूप होते हैं- 1. प्रयोगात्मक चर एवं 2. नियंत्रित चर। प्रयोगात्मक चर से तात्पर्य वैसे स्वतंत्र चरों से है जिनके प्रभाव का अध्ययन किया जाता है तथा जिनमें प्रयोगकर्ता जोड़-तोड़ या हेर-फेर करता है। अर्थात, जिस चर के प्रभाव का अध्ययन प्रयोगकर्ता किसी आश्रित चर पर करता है, उसे प्रयोगात्मक चर कहते हैं। किसी एक प्रयोग में आश्रित चर पर प्रायः एक या दो चरों के प्रभावों का ही अध्ययन किया जाता है जबकि उक्त आश्रित चर पर कई स्वतंत्र चरों का प्रभाव पड़ सकता है। प्रयोग की अवधि में ऐसे स्वतंत्र चरों को (जिनके प्रभाव का अध्ययन नहीं करना है) नियंत्रित या स्थिर रखा जाता है। इसलिए इन्हें नियंत्रित चर कहते हैं। ऐसे चरों को 'संगत या बहिरंग' चर की संज्ञा भी दी जाती है, क्योंकि आश्रित चर पर इनके प्रभाव संगत होते है। परंतु, चूँकि प्रयोगकर्ता का उद्देश्य इन संगत

चरों के प्रभावों का अध्ययन करना नहीं होता, इसलिए ऐसे संगत चरों को बहिरंग चर के नाम से पुकारा जाता है। प्रयोग की अवधि में ऐसे चरों को नियंत्रित रखा जाता है, ताकि आश्रित चर पर इनका कोई असर न पड़े।

3) **संगत या बहिरंग चर-** बहिरंग चर वैसे चर हैं जिन्हें यदि प्रयोगकर्ता द्वारा नियंत्रित नहीं किया जाय तो वह प्रयोगात्मक परिस्थिति में स्वतंत्र चर के साथ मिलाकर आश्रित चर को प्रभावित कर सकते है। जैसे- निष्पादन पर तापमान के प्रभाव का अध्ययन करने के क्रम में तापमान प्रयोगात्मक चर के रूप में प्रयुक्त किया जाएगा, और प्रयोगकर्ता एक अवस्था में कम तापमान पर निष्पादन का अवलोकन करेगा जबकि दूसरी अवस्था में अधिक तापमान पर। परंतु, निष्पादन पर कुछ अन्य स्वतंत्र चरों के भी प्रभाव पड़ेगे, जैसे- शोरगुल, आद्रता, पुरस्कार, आयु इत्यादि। आश्रित चर पर इन स्वतंत्र चरों के प्रभावों को पड़ने से प्रयोगकर्ता रोकेगा अथवा उन्हें नियंत्रित करेगा। इस प्रकार, ये नियंत्रित चर ही संगत या बहिरंग चर कहे जाएंगे।

बहिरंग चर भी तीन तरह के होते हैं-

i) प्राणी या प्रयोज्य से संबंधित

ii) वातावरण या परिस्थिति से संबंधित

iii) प्रयोग की विभिन्न अवस्थाओं के क्रम से संबंधित।

स्पष्ट है प्रयोग नियंत्रित अवस्था में पूर्वनिश्चित एवं पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार किया जाता है। अर्थात, प्रयोग प्रारंभ से पूर्व प्रयोगकर्ता प्रयोग-संबंधी पूर्ण विवरण पहले से ही तैयार कर लेता है। प्रयोग की योजना बनाते समय प्रयोगकर्ता निम्नलिखित दो बातों पर विशेष ध्यान देता है- (क) प्रयोग की समस्या का चुनाव एवं (ख) प्रयोग की योजना का चुनाव।

प्रयोगात्मक समस्या सुनिश्चित कर लेने के बाद प्रयोगकर्ता प्रयोग की एक पूरी योजना बना लेता है। इस योजना में वह प्रयोग की संपूर्ण प्रतिक्रियाओं का विवरण तैयार करता है, जैसे- स्वतंत्र चर की स्थिति में परिवर्तन लाने या हेर-फेर करने की क्रमबद्ध योजना, आश्रित चर को प्रभावित करने वाले अन्य स्वतंत्र चरों को किस प्रकार नियंत्रित किया जाएगा, आश्रित चर को किस प्रकार मापा जाएगा आदि। इसे उदाहरण द्वारा समझें-

मान लें, कोई मनोवैज्ञानिक, अभ्यास का प्रभाव मनुष्य के सीखने की क्रिया पर क्या पड़ता है, जानना चाहता है। यह 'प्रयोग' किस प्रकार किया जाएगा। सबसे पहले प्रयोगकर्ता को यह विचार कर लेना होगा कि सीखने की क्रिया पर 'अभ्यास' के अतिरिक्त किन-किन बातों का प्रभाव पड़ता है। ध्यान देने पर मालूम होगा कि अभ्यास के अतिरिक्त थकान, स्वास्थ्य, शिक्षण-विधि, शिक्षण-विषय, किए हुए कार्य के परिणाम का ज्ञान, पुरस्कार अथवा दंड, इत्यादि का भी प्रभाव सीखने की क्रिया पर पड़ता है। इस प्रयोग में प्रयोगकर्ता को केवल

अभ्यास का प्रभाव मालूम करना है। अतः अभ्यास के अतिरिक्त अन्य सभी प्रभावक तत्वों को वह नियंत्रित रखेगा। यह नियंत्रण इन चरों को समानावस्था में स्थिर रखकर किया जाएगा। इसीलिए इन्हें नियंत्रित चर अथवा स्थिर चर कहते हैं। इसके बाद प्रयोज्य को एक शिक्षण-कार्य दिया जाएगा, जो नवीनतम होगा। अभ्यास हेतु प्रयोज्य को उसी काम को बार-बार करने को दिया जाएगा-मान लें 20 बार। सभी प्रयासों में प्रयोज्य से उसी काम को एक ही तरह से कराया जाएगा। इस प्रकार, प्रयोग की पूरी अवधि में शिक्षण-कार्य और सीखने की विधि समान रखते हुए नियंत्रित किया जाएगा। थकान के प्रभाव को दूर करने के लिए ठीक आधे प्रयास के बाद (अर्थात 10 प्रयासों के बाद) थोड़ी देर के लिए विराम दिया जाएगा। प्रत्येक प्रयास में प्रयोज्य द्वारा उक्त कार्य को करने में लगे समय और कार्य-संपादन में होने वाली त्रुटियों या अशुद्धियों एवं प्रयोज्य के व्यवहारों को प्रयोगकर्ता वस्तुनिष्ठ निरीक्षण करके, नोट करता जाएगा। निश्चित प्रयास के बाद प्रयोज्य का अंतर्निरीक्षण प्रतिवेदन भी लिया जाएगा।

इस प्रकार, प्रयोगकर्ता को दो प्रकार के 'प्रदत्त' प्राप्त होंगे- (क) वस्तुनिष्ठ प्रदत्त एवं (ख) आत्मनिष्ठ प्रदत्त। वस्तुनिष्ठ प्रदत्त बाह्य रूप से निरीक्षण के फलस्वरूप प्राप्त सामग्री होती है, जैसे विभिन्न प्रयासों में लगा समय, अशुद्धियाँ एवं प्रयोज्य का व्यवहार। आत्मनिष्ठ प्रदत्त प्रयोज्य के आत्मनिरीक्षण अर्थात 'अंतर्निरीक्षण प्रतिवेदन' पर आधारित होता है। इस तरह के प्रदत्त से प्रयोज्य की मानसिक अवस्था का पता चलता है।

इस प्रकार, प्राप्त सामग्री की सहायता से सीखने की क्रिया पर पड़ने वाले प्रभाव को जानने हेतु आवश्यक है कि प्राप्त सामग्री का निरूपण अथवा विश्लेषण किया जाए। यह निरूपण दो प्रकार से होगा- सांख्यिकीय या परिमाण-संबंधी निरूपण एवं गुण-संबंधी निरूपण। गुण-संबंधी निरूपण अंतर्निरीक्षण प्रतिवेदन पर आधारित होगा, जबकि परिमाण संबंधी निरूपण के लिए सांख्यिकीय विधि का उपयोग किया जाएगा। इन दोनों प्रकार के निरूपणों के बाद ही सीखने की क्रिया पर अभ्यास का क्या प्रभाव पड़ता है, इस संबंध में किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है। साथ ही, सही तथा विश्वसनीय निष्कर्ष के लिए केवल एक व्यक्ति पर किया प्रयोग पर्याप्त नहीं होगा। इसके लिए आवश्यक है कि इसी प्रयोग को अनेक व्यक्तियों पर (जो हर दृष्टि से समान हों) किया जाए और यदि सभी में करीब-करीब एक ही तरह का परिणाम प्राप्त हो तो इस प्रयोग से जो निष्कर्ष निकलेगा, उसकी सत्यता एवं विश्वसनीयता पर भरोसा किया जा सकता है। निष्पादन पर तापमान का प्रभाव देखने हेतु या निष्पादन पर प्रकाश का प्रभाव देखने हेतु इस तरह का प्रायोगिक अध्ययन किया जा सकता है।

5.3.3 प्रयोगात्मक शोध के प्रकार -

ऊपर आपने प्रयोग के स्वरूप तथा चरों के प्रकार को सोदाहरण समझने का प्रयास किया। आपने देखा कि प्रयोग के क्रम में एक प्रयोगकर्ता स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ करता है और उस जोड़-तोड़ के प्रभाव का अध्ययन आश्रित चर पर करने का प्रयास करता है। अतः सवाल उठता है कि प्रयोगकर्ता इस तरह का अध्ययन प्रयोगशाला की

परिस्थिति में करता है अथवा क्षेत्र में जाकर वहां की स्वाभाविक परिस्थिति में? इस प्रकार शोधकर्ता अथवा प्रयोगकर्ता कोई प्रयोग कहां करेगा। इस आधार पर प्रयोगत्मक शोध के दो प्रकार बताये गये हैं - प्रयोगशाला प्रयोग शोध तथा क्षेत्र प्रयोग शोध।

(क) **प्रयोगशाला प्रयोग शोध-** मनोविज्ञान में प्रयोगशाला प्रयोग शोध को काफी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया हे। प्रयोगशाला प्रयोग शोध से तात्पर्य वैसे प्रयोगात्मक शोध से होता है जो एक प्रयोगशाला में प्रायः यादृच्छिक रूप से चुने गये प्रयोज्यों पर किया जाता है। फेसटिंगर एवं काज (1953) ने प्रयोगशाला प्रयोग शोध को कुछ ऐसे ही शब्दों में परिभाषित करते हुए कहा है, ''प्रयोगशाला प्रयोग शोध वह है जिसमें शोधकर्ता वैसी परिस्थिति उत्पन्न करता है जैसा कि अध्ययन करना चाहता है एवं जिसमें वह कुछ चरों को नियंत्रित करता है तथा कुछ अन्य चरों में जोड़-तोड़ करता है।'' इस परिभाषा में दो बातें हैं-

i. प्रयोगशाला प्रयोग शोध में शोधकर्ता एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करता है जिसमें सभी बहिरंग चर नियंत्रित हो जाते हैं। जब सभी बहिरंग चरों का नियंत्रण हो जाता है, तो अपने आप ही उससे उत्पन्न प्रसरण नियत्रित हो जाता है तथा प्रयोगशाला प्रयोग शोध में शुद्धता बढ़ जाती है।

ii. प्रयोगशाला प्रयोग शोध में कुछ चरों में प्रयोगकर्ता जोड़-तोड़ करता है। ऐसे चरों को स्वतंत्र चर कहा जाता है, जिस चर पर जोड़-तोड़ का प्रभाव देखा जाता है, उसे आश्रित चर कहा जाता है।

करलिंगर (1986) के अनुसार प्रयोगशाला प्रयोग शोध के निम्नांकित मुख्य तीन उद्देश्य होते हैं-

i. प्रयोगशाला प्रयोग शोध में शोधकर्ता स्वतंत्र चर तथा आश्रित चर के बीच प्रस्तावित संबंध को एक शुद्ध एवं असम्मिश्रित परिस्थिति में अध्ययन करने का प्रयास करता है। एक शुद्ध एवं असम्मिश्रित परिस्थिति को कहा जाता है जिसमें परिस्थिति इस ढंग से पूर्णतः नियंत्रित कर ली जाती है कि उसमें आश्रित चर पर मात्र स्वतंत्र चर में किये गये जोड़-तोड़ का ही प्रभाव पड़ सके, अन्य किसी दूसरे चर का नहीं।

ii. प्रयोगशाला प्रयोग शोध द्वारा विभिन्न सिद्धांतों तथा अन्य लोगों द्वारा किये गये शोधों से प्राप्त पूर्वकथनों या पूर्वानुमानों की जाँच सफलतापूर्वक की जाती है।

iii. प्रयोगशाला प्रयोग शोध का उद्देश्य विभिन्न प्रकार के सिद्धांतों एवं उपकल्पनाओं को परिमार्जित कर एक वस्तुनिष्ठ सैद्धांतिक तंत्र का निर्माण करना होता है।

इन उद्देश्यों से स्पष्ट होता है कि प्रयोगशाला प्रयोग शोध में सिर्फ किसी विशेष उपकल्पना (जो स्वतंत्र चर तथा आश्रित चर के संबंध के रूप में व्यक्त की जाती है) की जाँच ही नहीं की जाती बल्कि उसका उद्देश्य पुराने

सिद्धांतों एवं उपकल्नाओं को परिमार्जित कर उन्हें एक वस्तुनिष्ठ सिद्धांत का रूप देना तथा साथ-ही-साथ उनसे किये गये पूर्वकथनों की जाँच करना भी होता है।

एक उदाहरण- मान लिया जाय कि कोई शोधकर्ता या प्रयोगकर्ता प्रयोगशाला प्रयोग शोध करके इस विशेष शोध समस्या का समाधान चाहता है-दण्ड देने से सीखने की प्रक्रिया किस ढंग से प्रभावित है? ऐसे तो इस शोध समस्या का समाधान करने के लिए कई तरह के शोध डिजाइन हो सकते हैं, परन्तु सबसे सरल डिजाइन द्वि-समूह डिजाइन होगा जिसमें शोधकर्ता बच्चों का दो समूह तैयार करेगा। इस प्रयोग में दण्ड (स्वतंत्र चर है तथा सीखने की प्रक्रिया आश्रित चर है। सीखने की प्रक्रिया अन्य कारकों जैसे बुद्धि), उम्र, यौन, पाठ की सार्थकता आदि से भी प्रभावित हो सकती है। अतः इन बहिरंग चरों को नियंत्रित करने के लिए वह दोनों समूहों को बुद्धि, उम्र तथा यौन के रूप में समेलित कर लेगा, फलतः दोनों समूहों में समान बुद्धि, उम्र एक ही यौन के बच्चे होंगे। पाठ की सार्थकता को नियंत्रित करने के लिए दोनों समूहों को एक ही पाठ या समरूप पाठ सीखने के लिए दिया जायेगा। इस अध्ययन में उपकल्पना होगी-'दण्ड से सीखने की प्रक्रिया धीमी पड़ जाती है अब एक समूह को सीखते समय उसे विभिन्न तरीकों से दण्डित तथा हतोत्साहित किया जायेगा तथा दूसरे समूह को सीखते समय किसी प्रकार की कोई टीका-टिप्पणी नहीं की जायेगी और ना ही उसे दण्डित ही किया जायेगा। पाठ को सीखने में दोनों समूहों द्वारा लिये गये औसत समय तथा औसत त्रुटि का निर्धारण किया जायेगा। यदि दण्डित समूह द्वारा पाठ को सीखने में दूसरे समूह की अपेक्षा औसत रूप से अधिक समय लिया जाता है तथा अधिक त्रुटि की जाती है और यदि यह अन्तर सांख्यिकीय रूप से सार्थक होता है यानि कम से कम .05 स्तर पर सार्थक आता है, तो शोधकर्ता स्पष्टतः इस निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि दण्ड देने से सीखने की प्रक्रिया धीमी हो जाती है। इस तरह से वहाँ प्रयोगशाला प्रयोग शोध के परिणाम द्वारा उपकल्पना की संपुष्टि हो जाती है।

- प्रयोगशाला प्रयोग शोध के कुछ लाभ तथा कुछ परिसीमाएँ हैं। इसके प्रमुख लाभ निम्नांकित हैं-

1) प्रयोगशाला प्रयोग शोध चूँकि नियंत्रित एवं असम्मिश्रित परिस्थिति में की जाती है, इसलिए इसके निष्कर्ष पर अधिक भरोसा किया जाता है। इस तरह के शोध में सभी बहिरंग चरों को पूर्णतः नियंत्रित कर लिया जाता है। फलस्वरूप स्वतंत्र चर तथा आश्रित चर में प्रस्तावित संबंध (यानि उपकल्पना) की जाँच यथार्थ ढंग से हो पाती है।

2) प्रयोगशाला प्रयोग शोध में शोधकर्ता या प्रयोगकर्ता को स्वतंत्र चर के जोड़-तोड़ पर भी पूर्ण नियंत्रण होता है। इसके अलावा प्रयोगकर्ता शोध के लिए तैयार किए गए प्रयोज्यों का यादृच्छिक आबंटन भी करता है। इससे प्रयोगकर्ता संबद्ध पक्षपात भी नियंत्रित हो जाता है और प्रयोग का परिणाम अधिक शुद्ध एवं वैध हो जाता है।

3) तीसरा लाभ प्रथम दो लाभों से ही संबंधित है। चूँकि प्रयोगशाला प्रयोग शोध में बहिरंग चर पूर्णतः नियंत्रित रहता है, इसलिए स्वतंत्र चर का जोड़-तोड़ अधिकतम होता है तथा प्रयोज्यों का यादृच्छिक आबंटन भी संभव हो पाता है। इसलिए कहा जाता है कि प्रयोगशाला प्रयोग शोध में आन्तरिक वैधता अधिक होती है।

4) प्रयोगशाला प्रयोग शोध में यथार्थता अधिक होती है क्योंकि इसमें आश्रित चर में उत्पन्न परिवर्तन को मापने के लिए यथार्थ उपकरण का प्रयोग होता है।

5) प्रयोगशाला प्रयोग शोध में प्रतिकृति का लाभ होता है। इसके शोध डिजाइन तथा विधि इतने वस्तुनिष्ठ होते हैं कि कोई शोधकर्ता या प्रयोगकर्ता जरूरत पड़ने पर उसे प्रतिकृत करके अपने आप को संतुष्ट कर सकता है तथा परिणाम की सत्यता की जाँच भी कर सकता है।

- इन लाभों के बावजूद भी प्रयोगशाला प्रयोग शोध की कुछ परिसीमाएँ हैं जो इस प्रकार हैं-

1) प्रयोगशाला प्रयोग शोध में बाह्य वैधता की कुछ कमी होती है। बाह्य वैधता से तात्पर्य प्राप्त परिणाम को बड़े जीव संख्या के लिए सामान्यीकरण करने से होता है। अपने इस तरह के शोध के आधार पर जब प्रयोगकर्ता एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचता है, तो वह निष्कर्ष को जीव संख्या के अधिक से अधिक व्यक्तियों के लिए उसे ही सिद्ध करना चाहता है। परन्तु अक्सर यह देखा गया है कि ऐसा करने में एक प्रयोगकर्ता को पूर्णरूपेण सफलता नहीं मिलती है क्योंकि इस तरह के शोध में सामान्यीकरण की क्षमता नहीं होती है। इस तरह से प्रयोगशाला प्रयोग शोध में पाँच-दस व्यक्तियों या पशुओं (या इसी तरह की अन्य छोटी संख्या में लिए गए व्यक्तियों या पशुओं) के अध्ययन के फलस्वरूप प्राप्त निष्कर्ष को प्राणियों की एक बड़ी संख्या के लिए विश्वास के साथ सही नहीं ठहराया जा सकता है।

2) प्रयोगशाला प्रयोग शोध की प्रायोगिक परिस्थिति कृत्रिम होती है न कि स्वाभाविक। इसलिए कुछ लोगों का कहना है कि ऐसी परिस्थिति में अध्ययन के फलस्वरूप प्राप्त तथ्यों पर पूर्ण विश्वास नहीं किया जा सकता है। परन्तु इस आलोचना पर यदि ध्यानपूर्वक गौर किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि यह बहुत ही उचित आलोचना नहीं है। सचमुच में इस तरह के शोध में सिर्फ एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न की जाती है जिसमें कुछ चरों को नियंत्रित करना संभव हो सके तथा कुछ चरों में जोड़-तोड़ करना आसान हो सके। ऐसी परिस्थिति को एक कृत्रिम परिस्थिति कहना उचित न होगा। इसे प्रयोगशाला प्रयोग शोध की एक खास विशेषता कहना अधिक उचित होगा न कि इस तरह के शोध की एक परिसीमा कहना।

3) चूँकि प्रयोगशाला प्रयोग शोध में प्रायः कई स्वतंत्र चरों में एक साथ जोड़-तोड़ किया जाता है, इसलिए इस ढंग के प्रयोगात्मक जोड़-तोड़ का प्रभाव प्रायः दुर्बल एवं अस्पष्ट होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रयोगशाला प्रयोग शोध में स्वतंत्र चरों में पर्याप्त शक्ति की कमी पायी जाती है।

4) रॉबिन्सन (1976) के अनुसार प्रयोगशाला प्रयोग शोध द्वारा कुछ विशेष परिस्थिति जैसे विशाल दंगा, भूकम्प आदि में व्यक्तियों के व्यवहारों में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन नहीं किया जा सकता है क्योंकि इस ढंग की परिस्थिति प्रयोगशाला में उत्पन्न नहीं की जा सकती है।

5) सामाजिक अनुमति न होने के कारण भी कुछ खास परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यवहारों का अध्ययन प्रयोगशाला प्रयोग शोध द्वारा नहीं किया जा सकता है। जैसे, समाज इसकी अनुमति नहीं देता कि किसी मानव शिशु को जन्म से ही एक वंचित वातावरण में रखकर पाला-पोसा जाय और फिर शिशु पर वैसे वातावरण के पड़ने वाले प्रभावों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जाय। फलस्वरूप, प्रयोगशाला प्रयोग शोध का कार्यक्षेत्र कुछ सीमित हो जाता है।

6) रॉबिन्सन (1976) के अनुसार ही प्रयोगशाला प्रयोग शोध चूँकि एक खर्चीला तथा अधिक समय लेने वाला शोध है, इसलिए भी इसका उपयोग शोधकर्ताओं या प्रयोगकर्ताओं द्वारा अधिक नहीं किया जाता है। कुछ प्रयोग तो ऐसे हैं जिनका उपकरण इतना अधिक कीमती है कि उसे खरीदकर प्रयोग करना एक सामान्य प्रयोगकर्ता या शोधकर्ता के बस की बात नहीं है।

7) इन परिसीमाओं के रहते हुए भी प्रयोगशाला प्रयोग शोध मनोवैज्ञानिक तथा शैक्षणिक शोध के विभिन्न प्रकारों में प्राथमिक माना गया है। आज भी जिन मनोवैज्ञानिक तथा शैक्षित सिद्धांतों एवं नियमों को प्रयोगात्मक समर्थन नहीं प्राप्त है, उस पर अधिक भरोसा नहीं किया जाता है।

(ख) क्षेत्र प्रयोग शोध- मनोवैज्ञानिकों विशेषकर समाज मनोवैज्ञानिकों शिक्षा मनोवैज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों द्वारा क्षेत्र प्रयोग शोध का उपयोग अधिक किया जाता है। क्षेत्र प्रयोग शोध एक ऐसा शोध है जिसमें प्रयोगकर्ता एक या एक से अधिक स्वतंत्र चरों में जोड़-तोड़ एक ऐसी क्षेत्र परिस्थिति या वास्तविक परिस्थिति में करता है जिसमें बहिरंग चरों का अधिकतम नियंत्रण होता है। उदाहरणार्थ, यदि कोई प्रयोगकर्ता यह अध्ययन करना चाहता है कि कक्षा में बच्चे एक दूसरे के प्रति किस तरह से आक्रामक व्यवहार दिखलाते हैं और ऐसे व्यवहार की बारंबारता किस तरह के बच्चों के प्रति अधिक होती है, तो यह एक क्षेत्र प्रयोग शोध का उदाहरण होगा बशर्ते कि यह अध्ययन एक ऐसी परिस्थिति में किया गया हो जहाँ सभी बहिरंग चर अधिक-से-अधिक नियंत्रित हों तथा स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ सफलतापूर्वक किया गया हो।

करलिंगर (1986) ने क्षेत्र प्रयोग शोध को परिभाषित करते हुए कहा है, *''क्षेत्र प्रयोग एक ऐसा शोध अध्ययन है जो वास्तविक परिस्थिति में किया जाता है, तथा जिसमें एक या एक से अधिक स्वतंत्र चरों में जोड़-तोड़ उतना सावधानीपूर्वक नियंत्रित अवस्था में किया जाता है जितना की परिस्थिति अनुमति देती है।''*

रॉबिन्सन (1976) के अनुसार, *''क्षेत्र प्रयोग को क्षेत्र में किया गया एक ऐसा वैज्ञानिक अनुसंधान के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें कुछ स्वतंत्र चरों में सीधा जोड़-तोड़ किया जाता है।''*

- इन परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर हमें क्षेत्र प्रयोग शोध की निम्नांकित विशेषताओं के बारे में पता चलता है-

i. क्षेत्र प्रयोग शोध एक क्षेत्र में अर्थात् एक वास्तविक परिस्थिति में किया जाता है। स्कूल, दफ्तर, फैक्ट्री, कोर्ट आदि वास्तविक परिस्थिति के कुछ उदाहरण हैं जिनमें क्षेत्र प्रयोग शोध अक्सर किया जाता है।

ii. क्षेत्र प्रयोग शोध में स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ किया जाता है।

iii. क्षेत्र प्रयोग शोध में स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ एक ऐसी अवस्था में किया जाता है जो उस सीमा तक नियंत्रित होती है जिस सीमा तक उस विशेष क्षेत्र या परिस्थिति में नियंत्रण संभव है।

- क्षेत्र प्रयोग के कुछ लाभ तथा परिसीमाएँ हैं। इसके प्रमुख लाभ निम्नांकित हैं-

i. क्षेत्र प्रयोग शोध एक वास्तविक परिस्थिति में किया जाता है। अतः इस ढंग का शोध समाज मनोवैज्ञानिकों, समाजशास्त्रियों, शिक्षा मनोवैज्ञानिकों तथा नैदानिक मनोवैज्ञानिक जिनकी शोध समस्याएँ वास्तविक परिस्थिति में अध्ययन किये जाने के अनुकूल होती है, के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

ii. क्षेत्र प्रयोग शोध के चरों का प्रभाव अधिक तीक्ष्ण होता है। शोध का मूल नियम यह है कि परिस्थिति जितनी ही वास्तविक होती है, अध्ययन किये जाने वाले चरों का प्रभाव उतना ही अधिक तीक्ष्ण एवं स्पष्ट होता है। इस नियम का पूर्ण समर्थन एवं संतुष्टि क्षेत्र प्रयोग शोध में होता है।

iii. क्षेत्र प्रयोग शोध में बाह्य वैधता का लाभ होता है। दूसरे शब्दों में, क्षेत्र प्रयोग शोध से प्राप्त निष्कर्षो को आसानी से उन सभी प्राणियों या जीवों के लिए सामान्यीकरण कर देते हैं जिनके सदस्यों को प्रतिनिधि के रूप में अध्ययन में शामिल किया गया था। जैसे, किसी फैक्ट्री में कर्मचारियों का अध्ययन कर यदि क्षेत्र प्रयोगकर्ता इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि कर्मचारियों में अनुपस्थिति का मूल कारण कम वेतन है, तो वह इस निष्कर्ष को अन्य सभी तरह की फैक्ट्री के सभी कर्मचारियों पर विश्वास के साथ लागू कर सकता है क्योंकि अध्ययन वास्तविक परिस्थिति में की गयी थीं। अगर इस ढंग का निष्कर्ष किसी कृत्रिम परिस्थिति में अध्ययन कर पहुँचा गया होता, तो उसक कहाँ तक सभी कर्मचारियों पर लागू किया जाना संभव होता, कहना मुश्किल था।

- इन लाभों के बावजूद भी क्षेत्र प्रयोग शोध की कुछ परिसीमाएँ हैं जो निम्नांकित हैं-

i. चूँकि क्षेत्र प्रयोग शोध एक वास्तविक परिस्थिति में किया जाता है, अतः परिस्थिति पर पूर्ण नियंत्रण प्रयोगकर्ता का नहीं रह जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रयोग के आश्रित चर को कुछ बहिरंग चरों जैसे अवांछित आवाज या शोरगुल आदि द्वारा प्रभावित होने की संभावना बढ़ जाती है। ऐसी अवस्था में प्रयोगकर्ता के लिए एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचना संभव नहीं हो पाता है और जिस निष्कर्ष पर यदि वह पहुंच भी जाता है, वह भरोसेमन्द नहीं हो पाता है। इन्हीं कारणों से ऐसा कहा जाता है कि क्षेत्र प्रयोग शोध में आन्तरिक वैधता काफी कम होती है।

ii. कुछ विशेष कारणों से कभी-कभी क्षेत्र प्रयोग शोध में स्वतंत्र चरों में जोड़-तोड़ तथा प्रयोज्यों का यादृच्छीकरण करना कठिन हो जाता है। उदाहरणस्वरूप, स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ तथा प्रयोज्यों का यादृच्छीकरण उस समय दुर्लभ हो सकता है जब बच्चे (यदि प्रयोग बच्चों के समूह पर किया जा रहा हो) को माता-पिता द्वारा ऐसी प्रयोगात्मक अवस्था में काम करने से रोका जा रहा हो जो बच्चों के मानसिक संतुलन पर बुरा बसर डाल सकते हैं। जैसे, यदि प्रयोग ऐसा है जिसमें बच्चों के समस्या समाधान क्षमता पर कुण्ठा के पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जाना है और एक समूह को ऐसी अवस्था में रखा जाना हैं जहाँ उसमें तीव्र कुण्ठा उत्पन्न किया जायेगा तो ऐसा संभव है कि माता-पिता अपने-अपने बच्चों की ऐसी परिस्थिति में काम करने की अनुमति न दें और तब ऐसी अवस्था में स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ तथा प्रयोज्यों का यादृच्छीकरण किया जाना संभव नहीं हो पायेगा।

iii. क्षेत्र प्रयोग शोध में परिशुद्धता की कमी होती है। परिशुद्धता की कमी का मूल कारण यह होता है कि इस तरह के शोध में बहुत तरह के पर्यावरणीय कारक अनियंत्रित रह जाते हैं जो आश्रित चर को प्रभावित कर परिणाम को दूषित कर देते हैं।

इन आलोचनाओं के बावजूद क्षेत्र प्रयोग शोध का उपयोग जटिल सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं, प्रभावों तथा परिवर्तनों के अध्ययन में काफी किया जाता है क्योंकि ऐसी समस्याओं का अध्ययन प्रयोगशाला प्रयोग शोध द्वारा करने में काफी कठिनाइयाँ होती हैं।

(ग) प्रयोगशाला प्रयोग शोध तथा क्षेत्र प्रयोग शोध में अन्तर-

- प्रयोगशाला प्रयोग शोध तथा क्षेत्र प्रयोग शोध दोनों ही प्रयोगात्मक शोध हैं।
- दोनों ही तरह वे शोधों में स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ किया जाता है।
- दोनों ही तरह के शोधों में बहिरंग चर को नियंत्रित किया जाता है।

- दोनों तरह के शोधों में स्वतंत्र चर तथा आश्रित चर में कारण परिणाम संबंध स्थापित करने का भरसक प्रयत्न किया जाता है।

इन समानताओं के बावजूद इन दोनों तरह के शोध में कुछ अन्तर है जो निम्नांकित हैं-

i. प्रयोगशाला प्रयोग शोध किसी प्रयोगशाला की परिस्थिति में की जाती है जो जिन्दगी की वास्तविक परिस्थिति के अनुरूप हो भी सकती है या नहीं भी हो सकती है। परंतु क्षेत्र प्रयोग शोध हमेशा एक वास्तविक परिस्थिति में ही किया जाता है।

ii. प्रयोगशाला प्रयोग शोध में आन्तरिक वैधता अधिक होती है तथा बाह्य वैधता कम होती है। परन्तु क्षेत्र प्रयोग शोध में ठीक इसके विपरीत बाह्य वैधता की मात्रा आन्तरिक वैधता की मात्रा से अधिक होती है।

iii. प्रयोगशाला प्रयोग शोध में स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ तथा प्रयोज्यों का यादृच्छीकरण पूर्णरूपेण संभव है परन्तु क्षेत्र प्रयोग शोध में शोधकर्ता द्वारा ये दोनों कार्य एक सीमा तक ही संभव है।

iv. प्रयोगशाला की परिस्थिति नियंत्रित होने के कारण प्रयोगशाला प्रयोग शोध में परिशुद्धता अधिक होती है, परन्तु क्षेत्र प्रयोग शोध में वास्तविक परिस्थिति होने के कारण ऐसी परिशुद्धता की मात्रा काफी कम होती है।

5.3.4 एक प्रयोगात्मक शोध की रूपरेखा-

प्रयोगात्मक शोध काफी क्रमबद्ध होता है। प्रयोग का प्रकार चाहे कोई भी क्यों न हो, इसे करने में कुछ निहित सोपान होते हैं जिन्हें एक क्रम में अनुसरण करना होता है। अतः यह आवश्यक है कि विद्यार्थी उन सोपानों एवं उसके क्रम से भली-भाँति अवगत हों। उन सोपानों एवं उनके क्रम की व्याख्या अग्रांकित है-

i) **प्रयोग का शीर्षक-** प्रयोग का शीर्षक स्पष्ट शब्दों में लिखा जाना चाहिए। शीर्षक का उल्लेख करते समय प्रयोगकर्ता को दो बातों पर ध्यान देना चाहिए। पहली बात यह है कि शीर्षक में किसी आडम्बरी शब्दों का उपयोग न हो तथा दूसरी बात यह है कि शीर्षक बहुत लम्बा न होकर छोटा, सुसम्बन्ध तथा अध्ययन किये जाने वाले क्षेत्र से सीधे सम्बन्धित हो। इसके साथ-ही-साथ प्रयोग का स्थान अर्थात् प्रयोग कहाँ होगा तथा समय अर्थात् कब होगा का भी स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए ताकि इससे न प्रयोगकर्ता को और ना ही प्रयोज्यों को किसी तरह की संभ्रान्ति हो सके।

ii) **साहित्य का सर्वे-** प्रयोग से संबंधित पहले जो शोध किये जा चुके हैं, उसका सर्वे या समीक्षा करना प्रयोगकर्ता के लिए अति आवश्यक होता है। प्रयोगात्मक शोध के लिए संबंधित शोधों एवं प्रयोगों की समीक्षा कई कारणों से महत्वपूर्ण बतलायी गयी है जिसमें तीन कारण प्रमुख हैं- पहला, इस ढंग की समीक्षा से प्रयोगकर्ता को शोध की समस्या के बारे में कुछ अस्पष्ट धारणाएँ बनी होती है जो इस ढंग की

समीक्षा के फलस्वरूप स्पष्ट हो जाती है। दूसरा, ऐसी समीक्षा से यह भी पता चल जाता है कि क्या सचमुच में इस प्रयोग को करने की जरूरत है या नहीं। यदि पहले ही मनोवैज्ञानिक इस प्रयोग को कर चुके हैं, तो फिर उसी प्रयोग को दोहराने की कोई आवश्यकता नहीं है। हाँ, जब प्रयोग पहले दिये गये प्रयोग के परिणाम की संपुष्टि के लिए किया जा रहा है, तब तो उसे दोहराया जा सकता है। तीसरा, वर्तमान प्रयोग से संबंधित पहले किये गये प्रयोगों की समीक्षा करने से यह भी पता चल जाता है कि कौन-कौन बहिरंग चर हैं तथा उन सबों को कैसे नियंत्रित किया जा सकता है। सौभाग्यवश, मनोविज्ञान के क्षेत्र में किये जाने वाले शोधों से सम्बन्धित पूर्व अध्ययनों की समीक्षा साइकोलोजिकल एब्स्ट्रैक्ट के कारण काफी आसान हो गया है।

iii) **समस्या को निश्चित करना-** प्रयोग इसलिए किया जाता है क्योंकि किसी चीज के बारे में प्रयोगकर्ता कुछ जानना चाहता है और उन्हें उस चीज के बारे में उपयुक्त ज्ञान की कमी है। समस्या का उल्लेख इस तरह के प्रश्नात्मक वाक्य में होना चाहिए जिससे यह स्पष्ट पता चल सके कि प्रयोगकर्ता में संबंधित ज्ञान की कमी है। जैसे, क्या थकान से कार्यक्षमता में कमी होती है? क्या कर्मचारियों में अनुपस्थिति वित्तीय प्रेरणा की कमी द्वारा होती है? कुछ ऐसे उदाहरण हैं जिनसे शोध समस्या का उल्लेख किस प्रकार करना चाहिए, का अंदाज मिलता है। अतः शोध समस्या का उल्लेख इस ढंग से किया जाना चाहिए कि उसका उत्तर 'हाँ' या 'नहीं' में प्रयोग के बाद किया जा सके। यदि ऐसा संभव नहीं है, तो सामान्य रूप से यही कहा जाता है कि प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

iv) **उपकल्पना तैयार करना-** समस्या जब उल्लेख किया जाता है, तब उसमें चर भी सम्मिलित हो जाते हैं और उन चरों के आधार पर शोध समस्या का एक अंतरिम समाधान की अभिव्यक्ति की जाती है। इस अंतरिम समाधान को उपकल्पना कहा जाता है। जैसे, उपर्युक्त शोध समस्या को ध्यान में रखते हुए यह उपकल्पना विकसित की जा सकती है- 'थकान से कार्यक्षमता में गिरावट आती है।'

v) **चरों को परिभाषित करना-** शोध समस्या तथा उपकल्पना में स्वतंत्र चर तथा आश्रित चर का उल्लेख होता है। प्रयोगकर्ता को अब इस चरण में उन चरों की संक्रियात्मक रूप से परिभाषित करना आवश्यक हो जाता है ताकि उनका अर्थ बिल्कुल ही स्पष्ट हो जाय। इस चरण का महत्व इसलिए बढ़ जाता है क्योंकि अगर स्वतंत्र चर तथा आश्रित चर को संक्रियात्मक रूप से परिभाषित नहीं किया गया, तो उपकल्पना अजाँचनीय रह जाएगी।

vi) **उपकरण-** शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रयोगों में विभिन्न तरह के उपकरणों की जरूरत पड़ती है। उन उपकरणों द्वारा स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ करने में तथा आश्रित चर के मान में उत्पन्न परिवर्तनों को रिकार्ड करने में सुविधा होती है। स्मृति पटह, मूलर-लायर भ्रम बोर्ड, स्पर्शानुभावक, श्वसनलेखी, काइमोग्राफ,

टेचिस्टोकोप, स्टाप वाच, आदि शैक्षिक तथा मनोवैज्ञानिक प्रयोगों में होने वाले कुछ प्रमुख उपकरण हैं। मनोवैज्ञानिक प्रयोगों में उपकरणों द्वारा दो कार्य किये जाते हैं-

- उपकरण के माध्यम से प्रयोगात्मक विवेचन करने में मदद मिलती है, तथा
- प्रयोगात्मक विवेचन से प्रयोज्यों के व्यवहारों में उत्पन्न अन्तरों को रिकार्ड करने में मदद मिलती है।

इन दोनों कार्यों के सम्पन्न हो जाने पर प्रयोग में परिशुद्धता बढ़ जाती है। परंतु कभी-कभी देखा गया है उपकरण सही नहीं होते हैं या काफी पुराना या ठीक ढंग से अशांकित नहीं होते हैं। ऐसे उपकरणों का प्रयोग निश्चित रूप से नहीं किया जाना चाहिए अन्यथा प्रयोग की परिशुद्धता जाती रहेगी।

vii) **चरों का नियंत्रण करना-** प्रयोग के इस चरण में प्रयोगकर्ता उन सभी चरों का पता लगाता है तथा नियंत्रित करने की कोशिश करता है जो आश्रित चर को प्रभावित कर सकते हैं। ऐसे चरों को बहिरंग चर कहा जाता है। संक्षेप में यहाँ यही कहा जा सकता है कि प्रयोगकर्ता को यह सावधानीपूर्वक देख लेना चाहिए, कि कोई भी बहिरंग चर प्रयोज्यों के विभिन्न समूहों को आश्रित चर पर भिन्न-भिन्न ढंग से प्रभावित नहीं करें। अगर किसी बहिरंग चर का प्रभाव सभी समूहों पर समान ढंग से पड़ता है, तो उसका प्रभाव अपने आप ही नियंत्रित होता समझा जाता है तथा इसे एक आदर्श अवस्था कहा जाता है।

viii) **डिजाइन का चयन करना-** प्रयोग के इस चरण में प्रयोगकर्ता को अपने प्रयोग के लिए एक डिजाइन का चयन करना होता है। डिजाइन से तात्पर्य अध्ययन की एक ऐसी योजना से होती है जिसके द्वारा शोध समस्या का उत्तर ढूँढ़ा जाता है। मनोवैज्ञानिक प्रयोगों में अनेकों तरह के डिजाइन का प्रयोग किया जाता है जिनमें द्वि-समूह डिजाइन, बहुसमूह डिजाइन तथा क्रमगुणित डिजाइन अन्य डिजाइनों की तुलना में अधिक लोकप्रिय है। (डिजाइन के विभिन्न प्रकार की व्याख्या अध्याय-16 में की गयी है।) प्रयोगकर्ता को इन विभिन्न डिजाइन में से सबसे उपयुक्त डिजाइन का चयन अपने शोध समस्या तथा उपकल्पना को ध्यान में रखकर करना होता हैं। डिजाइन ऐसा होना चाहिए जिसमें बहिरंग चरों का नियंत्रण अधिकतम हो, प्रयोगात्मक प्रसरण का सृजन अधिक-से-अधिक हो तथा त्रुटि प्रसरण की उत्पत्ति कम-से-कम हो।

a. **प्रयोज्यों का चयन करना तथा समूहों में आबंटित करना-** प्रयोगकर्ता अपने प्रयोग में सम्मिलित करने के लिए कुछ व्यक्तियों का चयन करता है जिसे प्रतिदर्श कहा जाता है। प्रतिदर्श का चयन एक जीवसंख्या से यादृच्छिक रूप से किया जाता है ताकि उस प्रतिदर्श को जीवसंख्या का प्रतिनिधि माना जा सके। प्रतिदर्श का यादृच्छिक चयन वैसे चयन को कहा जाता है जिसमें जीव संख्या के प्रत्येक सदस्य को प्रतिदर्श में शामिल किये जाने की संभावना बराबर-बराबर होती है तथा किसी भी एक सदस्य का चयन किया जाना दूसरे सदस्य पर निर्भर नहीं करता है।

प्रतिदर्श का चयन कर लेने के बाद तथा डिजाइन के प्रकार को निश्चित कर लेने के बाद प्रयोगकर्ता प्रतिदर्श को विभिन्न समूहों में यादृच्छीकरण की प्रक्रिया द्वारा आबंटित करता है। उदाहरणस्वरूप, मान लिया जाय कि प्रयोगकर्ता ने 40 प्रयोज्यों का एक प्रतिदर्श चुना है जिसे वह दो समूहों में यादृच्छिक ढंग से आबंटित करना चाहता है। इस प्रक्रिया को वह सिक्का उछाल कर सम्पन्न कर सकता है। जैसे वह यह निर्णय कर सकता है कि यदि सिक्का उछालने पर चित्त आयेगा तो प्रयोज्य संख्या 1 समूह 'अ' में रखा जायेगा परन्तु यदि पट आयेगा तो उस प्रयोज्य को समूह 'ब' में रखा जायेगा। इसी प्रक्रिया को फिर अन्य सभी प्रयोज्यों पर तब तक दुहराया जायेगा जब तक कि समूह 'अ' में प्रयोज्यों की संख्या 20 न हो जाय। इस तरह से यादृच्छिक आबंटन की प्रक्रिया द्वारा प्रयोज्यों को दो समूह में बाँट दिया जाता है। डिजाइन के अनुसार प्रयोज्यों को निर्धारित समूहों जैसे तीन समूह, चार समूह आदि में इसी तरह से आबंटित कर दिया जाता है। समूह 'अ' तथा समूह 'ब' के तैयार हो जाने पर प्रयोगकर्ता को यह निर्णय करना होता है कि इसमें कौन समूह नियंत्रित समूह की भूमिका निभायेगा तथा कौन समूह प्रयोगात्मक समूह की भूमिका में रहेगा। इसका निर्णय भी वह सिक्का उछाल कर अर्थात यादृच्छिक रूप से कर लेता है। चित आने पर समूह 'अ' को प्रयोगात्मक समूह की भूमिका या पट आने पर समूह 'ब' को प्रयोगात्मक समूह की भूमिका (जैसा प्रयोगकर्ता सिक्का उछालने पहले निर्णय कर चुका होता है) में रखा जा सकता है।

किसी भी प्रयोग में प्रयोज्यों के कितने समूह होंगे, यह इस बात पर निर्भर करता है कि प्रयोग में स्वतंत्र चर की संख्या कितनी है। प्रत्येक स्वतंत्र चर में कितने स्तर हैं तथा बहिरंग चरों का स्वरूप क्या है। अगर किसी प्रयोग में एक ही स्वतंत्र चर है जिसके दो स्तर हैं तो इसमें समूह की संख्या मात्र दो होगी- एक प्रयोगात्मक समूह तथा दूसरा नियंत्रित समूह। जैसे, अगर पुरस्कार का प्रभाव सीखने की प्रक्रिया पर अध्ययन किया जाना है तो हम इसके लिए दो समूह तैयार कर सकते हैं-एक समूह में पुरस्कार दिया जायेगा (प्रयोगात्मक समूह) तथा दूसरे में पुरस्कार नहीं दिया जायेगा (नियंत्रित समूह)। परन्तु यदि हम इस स्वतंत्र चर (यानी पुरस्कार) के तीन स्तर कर देते हैं जैसे, श्रेष्ठ पुरस्कार, मध्यम पुरस्कार तथा निम्न पुरस्कार। तो इसमें प्रयोज्यों के समूह की संख्या तीन हो जायेगी। एक समूह निम्न पुरस्कार की अवस्था के लिए। दूसरा समूह मध्यम पुरस्कार की अवस्था के लिए तथा तीसरा समूह निम्न पुरस्कार की अवस्था के लिए। प्रायः प्रत्येक समूह में प्रयोज्यों की संख्या बराबर-बराबर रखी जाती है हालांकि यह कोई आवश्यक नहीं है। परन्तु ऐसा होने से सांख्यिकीय विश्लेषण में कुछ सुविधा होती है।

ix) प्रयोगात्मक कार्यविधि का उल्लेख करना- प्रयोग के इस चरण में आँकड़ों का संग्रहण किया जाता है। अतः प्रयोगकर्ता आँकड़ों के संग्रहण की विस्तृत कार्यविधि की एक रूपरेखा तैयार करता है जिसमें यह स्पष्टतः उल्लेखित होता है कि प्रयोज्यों के साथ किस ढंग का विवेक किया जायेगा, किस ढंग से उद्धीपनों को प्रयोज्यों के सामने रखा जायेगा तथा प्रयोज्यों द्वारा किये गये अनुक्रियाओं को कैसे

निरीक्षण किया जायेगा तथा उसे कैसे रिकार्ड किया जायेगा। अगर प्रयोज्य मानव हैं, तो उन्हें दिया जाने वाला नियम की रूपरेखा प्रयोगकर्ता द्वारा तैयार कर ली जाती है। प्रयोगकर्ता शोध या प्रयोग सभी पहलुओं को उनके सामने इस ढंग से उपस्थित करता है कि प्रयोज्यों की रूचि प्रयोग में बढ़ जाती है अगर प्रयोग का स्वरूप काफी जटिल है, तो प्रयोगकर्ता प्रयोज्यों की एक छोटी संख्या लेकर अग्रगामी प्रयोग भी कर लेता है ताकि उसे इस बात का अंदाज हो कि कहीं मुख्य प्रयोग की कार्य-विधि में परिवर्तन करने की जरूरत है या नहीं।

x) **साक्ष्य रिपोर्ट तैयार करना-** प्रयोग के आँकडों सांख्यिकीय मूल्यांकन कर लेने के बाद एक साक्ष्य रिपोर्ट तैयार किया जाता है। साक्ष्य रिपोर्ट वह रिपोर्ट होता है जिसमें इस बात का उल्लेख हो कि उपकल्पना में स्वतंत्र चर तथा आश्रित चर में व्यक्त प्रयोगात्मक संबंध हो सके इसमें सांख्यिकीय मूल्यांकन के बाद पाये गये या नहीं। यदि संबंध पाया गया तो साक्ष्य रिपोर्ट को स्वीकारात्मक माना जाता है परन्तु यदि संबंध नहीं पाया, या उसके किसी से संबंध पाया गया, तो साक्ष्य रिपोर्ट नकारात्मक माना जाता है। उदाहरणस्वरूप, मान लिया जाय। उपकल्पना- 'पुरस्कार सीखने की प्रक्रिया को तीव्र करती है'। इसकी जाँच को मान लिया जाय के दो समूह लिया गया-एक प्रयोगात्मक समूह जिसे सीखने के लिए पुरस्कार दिया गया तथा दूसरा नियंत्रित समूह जिसे सीखने के लिए पुरस्कार नहीं दिया गया। यदि प्रयोगात्मक समूह द्वारा पाठ को सीखने में लिया गया माध्य समय तथा त्रुटि नियंत्रित समूह द्वारा सीखने में लिये गये माध्य समय तथा त्रुटि से कम है तो इसका मतलब यह हुआ कि उपकल्पना स्वतंत्र चर तथा आश्रित चर में व्यक्त संबंध सही है। अतः यहाँ साक्ष्य रिपोर्ट को स्वीकारात्मक माना जायेगा।

xi) **साक्ष्य रिपोर्ट के आधार पर उपकल्पना के बारे में अनुमान लगाना-** प्रयोग के इस चरण में प्रयोगकर्ता साक्ष्य रिपोर्ट के आधार पर उपकल्पना के बारे में यह अंदाज लगाता है कि वह सत्य है या असत्य है। यदि साक्ष्य रिपोर्ट स्वीकारात्मक है तो उपकल्पना को सत्य मान लिया जाता है। और उसकी संपुष्टि हुई समझी जाती है। परन्तु यदि साक्ष्य रिपोर्ट नकारात्मक है तो उपकल्पना को असत्य मान लिया जाता है और इस तरह उसकी संपुष्टि नहीं हो पाती है।

xii) **परिणाम का सामान्यीकरण करना-** प्रयोग के इस अन्तिम चरण में प्रयोगकर्ता एक प्रतिदर्श पर किये अध्ययन से प्राप्त परिणाम को उस पूरे जीवसंख्या के लिए सही ठहराना चाहता है जिससे प्रयोज्यों का अर्थात् प्रतिदर्श का चयन किया गया था। प्रयोग का परिणाम कहाँ तक जीव संख्या के लिए सामान्यीकृत किया जा सकता है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि जीवसंख्या को प्रयोगकर्ता ने कहाँ तक स्पष्टतः परिभाषित किया तथा साथ-ही-साथ उससे प्रतिदर्श का चयन यादृच्छिक ढंग से किया था या नहीं। यदि जीवसंख्या स्पष्टतः परिभाषित किया गया होता है तथा उससे प्रतिदर्श का चयन यादृच्छिक ढंग से किया गया होता है तब तो परिणाम

का सामान्यीकरण पूरे विश्वास के साथ किया जा सकता है अन्यथा परिणाम मात्र प्रतिदर्श के लिए सही हो सकता है, जीवसंख्या के लिए नहीं।

इस तरह से हम देखते है कि मनोवैज्ञानिक तथा शैक्षिक प्रयोग में कुल 13 चरण हैं जो एक क्रम में प्रयोगकर्ता द्वारा अनुसरण किये जाते हैं। प्रयोग की विश्वसनीयता इस बात पर निर्भर करती है कि प्रयोगकर्ता कहाँ तक प्रत्येक चरण की जरूरतों को सफलतापूर्वक पूरा कर पाया है।

5.4 सह-सम्बन्धात्मक शोध का अर्थ

सह सम्बन्धात्मक शोध भी आनुभविक शोध का एक प्रकार है। इस शोध का स्वरूप भी प्रयोगात्मक होता है तथा इसमें भी समस्या का तथ्यपूर्ण मूल्यांकन किया जाता है। परन्तु सामान्य अवलोकन की तुलना में सह-सम्बन्धात्मक शोध में शोधकर्ता द्वारा स्वतंत्र चर में अपेक्षित हस्तचालन करके फिर उसके प्रभाव का आश्रित चर पर अवलोकन किया जाता है। हस्तचालन या जोड़-तोड़ का कार्य शोधकर्ता सीधे न करके चयन प्रक्रिया द्वारा करता है तथा फिर एक स्वाभाविक परिस्थिति में इनके विभिन्न स्तरों के प्रभाव का अध्ययन करता है कि कहाँ तक स्वतंत्र चर के विभिन्न स्तरों का प्रभाव आश्रित चर पर पड़ रहा है या किस सीमा तक आश्रित चर की निर्भरता स्वतंत्र चर पर है। दूसरे शब्दों में, सह सम्बन्धात्मक शोध में शोधकर्ता यह देखना चाहता है कि स्वतंत्र चर में चयन प्रक्रिया द्वारा किया गया जोड़-तोड़ आश्रित चर से किस प्रकार सम्बन्धित है। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। मान लीजिए कि कोई शोधकर्ता समस्या समाधान योग्यता और बुद्धि के बीच सम्बन्ध का अध्ययन करना चाहता है। इसके लिए एक ही आयु-समूह के विभिन्न बुद्धि-स्तर वाले बच्चों का वह चयन करेगा और फिर प्रत्येक बुद्धि-स्तर वाले बच्चों की समस्या समाधान क्षमता का मापन करेगा। शोधकर्ता द्वारा यहाँ बुद्धि के विभिन्न स्तरों का निर्धारण सीधे न करके चयन द्वारा किया जायेगा क्योंकि बुद्धि की उपज नहीं हो सकती, उसे जब चाहें बढ़ा दें और जब चाहें घटा दें- ऐसा नहीं हो सकता। अतः यहाँ बुद्धि एक ऐसा चर है जो यदि स्वतंत्र चर के रूप में कार्यरत है तो शोधकर्ता उसका हस्तचालन यानी, उसमें जोड़-तोड़ चयन प्रक्रिया के द्वारा ही कर सकता है। जैसे यहाँ शोधकर्ता यदि बुद्धि स्तर के आधार पर बच्चों का तीन समूह बनाता है तो वह एक समूह में 90 से 110 बुद्धि-लब्धि वाले बच्चे को रख सकता है, दूसरे समूह में 70 से 90 के मध्य बुद्धि-लब्धि वाले बच्चे को रख सकता है तथा तीसरे समूह में 110 से ऊपर के बुद्धि-लब्धि वाले बच्चे को रख सकता है। इन तीनों ही समूह में जो भी प्रयोज्य (बच्चे) रखे जायेंगे उनमें बुद्धि-लब्धि की मात्रा पहले से उपलब्ध है। शोधकर्ता का काम तो उनकी बुद्धि को मापना, बुद्धि-लब्धि को निर्धारित करना और फिर बुद्धि-लब्धि के आधार पर सम्बन्धित समूह में डाल देना है। यह कार्य शोधकर्ता चयन प्रक्रिया के द्वारा करता है। फिर इन तीनों ही समूह के बच्चों को किसी समस्या का समाधान करने को देता है और यह निरीक्षण करता है कि कौन-सा समूह समस्या समाधान की योग्यता में बेहतर है तथा कौन-सा मध्य स्तर या निम्न स्तर का है। शोधकर्ता तीनों ही समूह की औसत समस्या-समाधान

क्षमता का निर्धारण कर इस निष्कर्ष पर पहुँच सकता है कि जिन बच्चों में अधिक बुद्धि होती है उनमें समस्याओं के समाधान की योग्यता भी अधिक होती है।

स्पष्ट है कि प्रस्तुत उदाहरण में बुद्धि एक ऐसा स्वतंत्र चर है जिसमें चयन द्वारा जोड़-तोड़ ही संभव है। ऐसा नहीं हो सकता कि शोधकर्ता जब चाहे किसी बच्चे की बुद्धि में वृद्धि कर दे और जब चाहे कमी कर दें। इस तरह के स्वतंत्र चर को जिसमें हस्तचालन चयन द्वारा ही संभव है, 'टाइप-एस' स्वतंत्र चर कहते हैं। व्यक्ति की आयु, उसका यौन, उसकी संवेगात्मकता आदि ऐसे चर हैं जिनका हस्तचालन चयन द्वारा ही संभव है। इन्हें सीधे हस्तचालित नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार हम देखते है कि सह-सम्बन्धात्मक शोध में स्वतंत्र चर का आश्रित चर पर प्रभाव तो देखा जाता है, परन्तु स्वतंत्र चर का हस्तचालन सीधे न करके चयन द्वारा किया जाता है। चूँकि शिक्षा, मनोविज्ञान, योग आदि के क्षेत्र में स्वतंत्र चर प्रायः इस प्रकार के होते हैं कि उनका हस्तचालन चयन द्वारा ही संभव होता है, अतः इन क्षेत्रों में सह-सम्बन्धात्मक शोध का प्रचलन काफी अधिक है। मनोविज्ञान एवं योग में सह-सम्बन्धात्मक शोध का प्रयोग ज्यादातर मनोवैज्ञानिक परीक्षण के निर्माण तथा उपयोग में किया जाता है। इसके अतिरिक्त, विकासात्मक मनोविज्ञान, पशु, मनोविज्ञान आदि क्षेत्रों में भी सह-सम्बन्धात्मक शोध किए जाते हैं।

सह सम्बन्धात्मक शोध की विशेषताएँ -

सह-सम्बन्धात्मक शोध का अपना खास महत्व है। इस शोध विधि की सबसे बड़ी खासियत यह है कि इसके द्वारा अध्ययन किए जाने वाले चर प्राकृतिक परिवेश में विराजमान होते हैं और उन्हें उसी रूप में उपयुक्त मापनी द्वारा माप लिया जाता है। प्रयोगात्मक शोध में स्वतंत्र चर में सीधे हस्तचालन के कारण यह गुण नहीं पाया जाता।

सह-सम्बन्धात्मक शोध की दूसरी विशेषता होती है-चरों के बीच कार्यात्मक सम्बन्ध का सममित होना। सह-सम्बन्धात्मक शोध एक ऐसा शोध है जिसमें यदि दो चरों (क और ख) के बीच उच्च सह-सम्बन्ध पाया जाता है तो हम जिस दावे के साथ कह सकते हैं कि चर 'क' ने चर 'ख' को प्रभावित किया, ठीक उतने ही दावे के साथ यह भी कह सकते हैं कि चर 'ख' ने चर 'क' को प्रभावित किया। यानी, सह-सम्बन्धात्मक शोध में जिस प्रकार स्वतंत्र चर के आधार पर आश्रित चर का पूर्वकथन कर सकते हैं, उसी प्रकार आश्रित चर के आधार पर स्वतंत्र चर का पूर्व कथन भी कर सकते हैं।

यानी, 'क' जितना प्रभावित 'ख' को कर रहा है, 'ख' भी उतना ही प्रभावित 'क' को भी कर रहा है। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। मान लीजिए, एक शोधकर्ता निर्भरता उन्मुखता का किशोरों की उपलब्धि-अभिप्रेरणा पर प्रभाव देखना चाहता है। समान उम्र और लिंग के 10 प्रयोज्यों पर वह निर्भरता उन्मुखता और उपलब्धि-अभिप्रेरणा मापनी का प्रयोग कर प्रदत्त संग्रहित करता है। फिर प्रयोज्यों की निर्भरता-उन्मुखता एवं

उपर्लिब्ध-अभिप्रेरणा के बीच सह-सम्बन्ध निकालता है जो उच्च ऋणात्मक प्राप्त होता है। यानी, जिन प्रयोज्यों में निर्भरता उन्मुखता ज्यादा पायी जाती है उनमें उपलब्धि अभिप्रेरणा कम पाई जाती है। यहाँ प्राप्त परिणाम न सिर्फ यह बतलाता है कि निर्भरता-उन्मुखता उपलब्धि-अभिप्रेरणा का निर्धारक है बल्कि ठीक विपरीत यह भी कहा जा सकता है कि उपलब्धि अभिप्रेरणा निर्भरता-उन्मुखता का निर्धारक है क्योंकि हो सकता है कि जिन किशोरों में उपलब्धि-अभिप्रेरणा निम्न स्तर की हो उनमें निर्भरता-उन्मुखता अधिक पाई जाती हो। इस प्रकार, सह-सम्बन्धात्मक शोध द्वारा प्राप्त परिणाम स्वतंत्र चर और आश्रित चर में सममित कार्यात्मक सम्बन्ध के सूचक होते हैं न कि असममित- जैसा कि प्रयोगात्मक शोध में होता है।

1) सह सम्बन्धात्मक शोध की सीमाएँ-

सह-सम्बन्धात्मक शोध की सीमाओं में एक है चरों का ढीला नियंत्रण। चूँकि सह-सम्बन्धात्मक शोध में कुछ ऐसे चर होते हैं जिनका सही-सही नियंत्रण करना शोधकर्ता के लिए कठिन होता है, अतः इसका कुप्रभाव आश्रित चर पर पड़ने से रोका नहीं जा सकता। जैसे- ऊपर दिए गए उदाहरण में शोधकर्ता यदि समस्या समाधान योग्यता और बुद्धि के बीच के सम्बन्ध का अध्ययन करना चाहता है तो शोध में शामिल किए गये सभी प्रयोज्यों की आयु का एक समान होना आवश्यक है अन्यथा, आयु के साथ मिलकर समस्या समाधान योग्यता को प्रभावित कर सकता है। परन्तु, चूँकि आयु का नियंत्रण चयन प्रक्रिया द्वारा किया जाता है, अतः यह नियंत्रण प्रयोगात्मक शोध की तरह सख्त न होकर ढीले किस्म का होता है।

सह-सम्बन्धात्मक शोध की दूसरी सीमा है स्वतंत्र चर और आश्रित चर के बीच कार्य-कारण सम्बन्ध या कारण एवं परिणाम सम्बन्ध का निश्चित न होना। इस शोध के आधार पर जो परिणाम प्राप्त होते हैं उससे यह पता नहीं चलता कि प्राप्त परिणाम का कारण क्या है? उदाहरण स्वरूप, यदि अधिक बुद्धि वाले बच्चे में समस्या समाधान की योग्यता अधिक हो तो इससे यह पता नहीं चलता कि समस्या समाधान योग्यता का अधिक होना अधिक बुद्धि का परिणाम है। यानी, बुद्धि कारण है और समस्या समाधान फल है। समस्या समाधान योग्यता का बेहतर होना आयु अधिक होने, अनुभव अधिक होने के कारण भी होता है। इस प्रकार, सह-सम्बन्धात्मक शोध चरों के बीच कारण एवं परिणाम सम्बन्ध के निश्चितता की मात्रा कम कर देता हैं।

5.5 प्रयोगात्मक तथा सहसम्बन्धात्मक शोध में अन्तर

प्रयोगात्मक तथा सहसम्बन्धात्मक शोधों के अर्थ एवं विशेषताओं पर प्रकाश डालने के क्रम में हम चर्चा कर चुके हैं कि इन दोनों ही शोधों में स्वतंत्र एवं आश्रित चर उपस्थित होते हैं तथा दोनों ही शोधों का स्वरूप आनुभविक होता है। फिर भी इन दोनों शोधों में निम्नलिखित भिन्नताऐं हैं -

i. प्रयोगात्मक शोध में जहां स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ प्रयोगात्मक रूप से यानी, सीधे किया जाता है, वहीं सहसम्बन्धात्मक शोध में स्वतंत्र चर में चयन के द्वारा जोड़-तोड़ या हस्तचालन का कार्य किया जाता है।

ii. प्रयोगात्मक शोध में शोधकर्ता स्वतंत्र चर एवं आश्रित चर के बीच कार्य-तथा-प्रभाव सम्बन्ध बड़े विश्वास के साथ स्थापित कर पाता है वहीं सहसम्बन्धात्मक शोध में स्वतंत्र चर तथा आश्रित के बीच कार्य-तथा-कारण सम्बन्ध स्थापित करना कठिन है।

5.6 सारांश

प्रयोगात्मक शोध में अध्ययन नियंत्रित परिस्थिति में किया जाता है। यह किसी भी वैज्ञानिक अध्ययन की सर्वश्रेष्ठ विधि है। मनोविज्ञान एवं अन्य के क्षेत्र में किए जाने वाले प्रयोग में दो व्यक्तियों का होना प्रायः आवश्यक होता है- एक प्रयोगकर्ता और दूसरा प्रयोज्य। प्रयोगात्मक शोध में नियंत्रित परिस्थिति में किसी स्वतंत्र चर में हस्तचालन कर उसके प्रभाव का निरीक्षण आश्रित चर पर किया जाता है। प्रयोगात्मक शोध के दो प्रकार हैं-प्रयोगशाला प्रयोग शोध तथा क्षेत्र प्रयोग विधि।

सहसम्बन्धात्मक शोध भी आनुभविक शोध का एक प्रकार है। इसमें शोधकर्ता आश्रित चर पर स्वतंत्र चर के प्रभाव का अध्ययन करता है। वह स्वतंत्र चर का हस्तचालन सीधे न करके चयन प्रक्रिया द्वारा करता है। सहसम्बन्धात्मक शोध में कार्यरत स्वतंत्र चर 'टाइप-एस' प्रकार का होता है।

5.7 शब्दावली

- **प्रयोग:** नियंत्रित परिस्थिति में किया गया क्रमबद्ध निरीक्षण ही प्रयोग कहलाता है।
- **'टाइप-एस' स्वतंत्र चर:** जिस स्वतंत्र चर में हस्तचालन सीधे न करके चयन प्रक्रिया के द्वारा किया जाता है उसे 'टाइप-एस' स्वतंत्र चर कहते हैं।
- **'टाइप-ई' स्वतंत्र चर:** जिस स्वतंत्र चर में हस्तचालन सीधे यानी, संक्रियात्मक रूप से किया जाता है, उसे 'टाइप-ई' स्वतंत्र चर कहते हैं।

5.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1) जिस चर को प्रयोगकर्ता द्वारा हस्तचालित किया जाता है उसे ..... चर कहते हैं।

2) प्रयोग में जिस चर को नियंत्रित किया जाता है उसे कहते है ..... ।

3) जब कोई प्रयोग किसी बंद कमरे की नियंत्रित परिस्थिति में किया जाता हैं तो उसे ..... शोध कहते हैं।

4) जब शोधकर्ता किसी क्षेत्र परिस्थिति में या वास्तविक परिस्थिति में स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ कर उसके प्रभाव का अध्ययन करना चाहता है तो इसे ..... शोध कहते हैं।

5) सहसम्बन्धात्मक शोध में स्वतंत्र चर का स्वरूप ..... प्रकार का होता है। (टाईप-ई/टाईप-एस)

6) सहसम्बन्धात्मक शोध में स्वतंत्र चर एवं आश्रित चर के बीच 'कारण एवं परिणाम' सम्बन्ध ..... होता है? (निश्चित/अनिश्चित)

उत्तर:1) स्वतंत्र चर 2) बहिरंग चर 3) प्रयोगशाला प्रयोग 4) क्षेत्र प्रयोग 5) टाइप-एस 6) अनिश्चित

5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- अरूण कुमार सिंह (1998) मनोविज्ञान,समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल-बनारसीदास, दिल्ली।
- एच.के. कपिल (2001) अनुसंधान विधियां (व्यवहारपरक विज्ञानों में), एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।
- एफ.एन. करलिंगर (1964) फाउण्डेशन्स ऑफ विहैवियरल रिसर्च, हॉल्ट, रिनेहार्ट एवं विंसटन, इंक, न्यूयार्क।

5.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रयोगात्मक शोध से आप क्या समझते हें? इसकी विशेषताओं एवं सीमाओं का उल्लेख करें।
2. सहसम्बन्धात्मक शोध के गुण-दोषों का वर्णन करें।
3. एक प्रयोगात्मक शोध की रूपरेखा प्रस्तुत करें।
4. प्रयोगात्मक प्रयोग शोध प्रयोग एवं क्षेत्र प्रयोग शोध प्रयोग में अन्तर स्थापित करें।
5. संक्षिप्त टिप्पणी लिखें-

   i) प्रयोगशाला प्रयोग शोध ii) 'टाइप-एस' स्वतंत्र चर

   iii) चर iv) क्षेत्र प्रयोग शोध

इकाई-6 एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध

(Ex-post facto Research)

इकाई संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध का अर्थ

6.3.1 एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध का महत्व

6.3.2 एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध के लाभ

6.3.3 एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध की सीमाएँ

6.3.4 एक्स-पोस्ट फैक्टो के दोषों का निराकरण

6.4 एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध एवं प्रयोगात्मक शोध में अन्तर

6.5 सारांश

6.6 शब्दावली

6.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.9 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

पूर्व की इकाई में आपने प्रयोगात्मक शोध के स्वरूप व विशेषताओं का अध्ययन किया, इसके विभिन्न प्रकारों की जानकारी हासिल की तथा प्रयोगात्मक एवं सह-सम्बन्धात्मक शोध में अन्तर करना सीखा।

प्रस्तुत इकाई में आप एक ऐसे शोध के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे जिसे एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध या घटनोत्तर शोध के रूप में जाना जाता है। यह एक ऐसा शोध है जिसका बड़े पैमाने पर इस्तेमाल समाजशास्त्रीय एवं शैक्षिक शोधों में होता है।

इस इकाई के अध्ययन से आपको फायदा यह होगा कि आप शोध की कुछ नई विमाओं को जान सकेंगे, साथ-ही दैनिक जीवन में घटित होने वाली घटनाओं के अध्ययन में इस शोध विधि की उपयोगिता पर विचार कर सकेंगे।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप

- एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध के संप्रत्यय को समझ सकें।
- एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध के लाभ-हानि पर प्रकाश डाल सकें।
- एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध तथा प्रयोगात्मक शोध में अन्तर कर सकें तथा
- एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध की सीमाओं के निवारण के तरीके बता सकें।

6.3 एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध का अर्थ

अभी तक आपने प्रयोगात्मक शोध और उसके विभिन्न रूपों का अध्ययन किया। इसमें आपने देखा कि किस प्रकार एक शोधकर्ता स्वतंत्र चर में हस्त चालन कर उसके विभिन्न स्तरों का प्रभाव आश्रित चर पर अवलोकित करता है।

आइए, अब एक ऐसे शोध की चर्चा करें जिसका स्वरूप तो अप्रयोगात्मक होता है परन्तु वह भी आनुभविक शोध ही है। इसे एक्स-पोस्ट फैक्टो या कारणात्मक-तुलनात्मक शोध के नाम से भी जानते हैं। यह एक अप्रयोगात्मक शोध इसलिए है क्योंकि इसमें शोधकर्ता का स्वतंत्र चरों पर कोई सीधा नियंत्रण नहीं होता है क्योंकि उनकी अभिव्यक्ति प्रयोग प्रारंभ होने के पहले ही हो चुकी होती है या फिर उनका स्वरूप ही कुछ ऐसा होता है जिनमें जोड़-तोड़ या हस्तचालन किया ही नहीं जा सकता। दरअसल, अप्रयोगात्मक शोध में स्वतंत्र चर और आश्रित चर के विशेष सम्बन्धों के बारे में इन दोनों तरह के चरों में हुए सहवर्ती परिवर्तनों के आधार पर मात्र एक अंदाज लगाया जाता है। मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा के क्षेत्र में बहुत सारे ऐसे चर हैं जिनमें जोड़-तोड़ करना सम्भव नहीं है। व्यक्ति की बुद्धि, उसकी उपलब्धि, अभिक्षमता, सामाजिक वर्ग, घरेलू पृष्ठभूमि आदि ऐसे चर हैं जिनका नियंत्रित अन्वेषण तो संभव है, परन्तु इनमें जोड़-तोड़ करके प्रयोग करना कठिन है।

एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध के साथ भी इसी तरह की स्थिति बनती है। इसमें भी शोधकर्ता किसी स्वतंत्र चर का हस्त चालन कर उसके प्रभाव का सीधे अध्ययन करने की स्थिति में नहीं होता, बल्कि वह किसी 'प्रभाव' के आधार पर उसके संभावित कारणों का पता लगाने की कोशिश करता है। यहाँ 'प्रभाव' आश्रित चर होता है तथा

पहले बीत चुकी घटनाएँ, जिन्हें 'कारण' कहा जाता है। स्वतंत्र चर होते हैं। इस प्रकार, एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध में स्वतंत्र चर की अभिव्यक्ति आश्रित चर के सामने आने के बहुत पहले ही हो चुकी होती है। यही कारण है कि इस तरह के शोध में शोधकर्ता चाहकर भी स्वतंत्र चर में किसी तरह का कोई जोड़-तोड़ नहीं कर सकता है। इस तरह से एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध का मुख्य उद्देश्य इस मौलिक प्रश्न का उत्तर देना होता है कि कोई विशेष घटना, परिणाम, अवस्था या अन्य प्रकार के व्यवहार के साथ कौन-कौन से कारक सम्बन्धित होते हैं।

उपर्युक्त विवेचना पर यदि हम ध्यान दें तो एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध को निम्न प्रकार परिभाषित कर सकते हैं- ''एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध एक ऐसा आनुभविक शोध है जिसमें शोधकर्ता चरों के बीच के सम्बन्ध के बारे में ऐसे स्वतंत्र चरों के आधार पर अनुमान लगाता है जिसकी अभिव्यक्ति पहले हो चुकी होती है। इस तरह के शोध में शोधकर्ता को स्वतंत्र चरों की अभिव्यक्ति पर कोई नियंत्रण नहीं रहता है क्योंकि वे प्रभाव दिखाने के बहुत पहले घटित हो चुके होते हैं।''

उपरोक्त परिभाषा से यह स्पष्ट है कि एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध में शोधकर्ता स्वतंत्र चर की स्वयं नियन्त्रित नहीं करता है, बल्कि आश्रित चर के आधार पर उसकी खोज करता है। स्पष्टतः यह स्थिति वास्तविक प्रायोगिक स्थिति से विचलित व भिन्न होती है। अतः मर्टन एवं मैक्सवैबर ने इस प्रकार की शोध विधि की आलोचना करते हुए इसे 'काल्पनिक प्रयोग' की संज्ञा दी है। चैपिंन और ग्रीनवुड ने भी एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध को एक ऐसा अर्द्ध प्रयोग बताया है, जिसमें स्वतन्त्र चरों को अनुरूपण तथा सांकेतिक साधनों के द्वारा नियन्त्रण में लाने का प्रयास किया जाता है।

6.3.1 एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध का महत्व-

इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि सामाजिक तथा शैक्षिक क्षेत्रों में होने वाले अधिकांश शोधों का स्वरूप घटनोत्तर अथवा एक्स-पोस्ट फैक्टो ही होता है। इसका एक मुख्य कारण यह है कि इन क्षेत्रों की विषय-सामग्री का स्वरूप ही ऐसा है, जिसका अध्ययन प्रायः एक्स-पोस्ट फैक्टो विधि के माध्यम से ही अधिक उपयुक्त रहता है। उदाहरणार्थ कुछ सामाजिक घटनाएँ ऐसी होती हैं, जिसका प्रयोगात्मक अध्ययन प्रायः सम्भव नहीं होता, जैसे भीड़ का व्यवहार। यह ऐसा व्यवहार है, जिसका वस्तुतः प्रयोगशाला में अध्ययन उपयुक्त नहीं होता, क्योंकि भीड़ का व्यवहार कृत्रिम रूप से प्रयोगशाला में पुनरावृत्ति नहीं की जा सकती, और अगर की भी जाती है, वह कृत्रिम भीड़ की होगी-प्राकृतिक व स्वाभाविक भीड़ नहीं। दंगा का अध्ययन भी देगा होने के उपरान्त ही संभव है। इसे प्रयोगशाला में उत्पन्न कराकर फिर इसका प्रायोगिक अध्ययन करना संभव नहीं। इसी प्रकार, सामाजिक संस्थायें, संरचनायें, नेतृत्व, संस्कृति, अभिवृत्ति, निष्पत्ति, शैक्षिक उपलब्धि व बालक की मानसिक ग्रन्थि आदि ऐसे अनेक विषय है, जिनसे एक्स-पोस्ट फैक्टो अध्ययन ही अधिकतर उपयुक्त रहता है।

इन क्षेत्रों में एक्स-पोस्ट फैक्टो विधि द्वारा अध्ययन का एक दूसरा आधार यह भी है कि विज्ञान का उद्देश्य केवल दो चरों के अन्तर्सम्बन्धों के विषय में केवल भविष्य कथन की ही क्षमता को प्राप्त करना नहीं है, बल्कि उनके अन्तर्सम्बन्धों को समझना भी एक आवश्यक तथा महत्वपूर्ण तत्व है। उदाहरणार्थ यदि एक अध्ययनकर्ता नगरीकरण के प्रभाव का अध्ययन मानसिक स्वास्थ्य पर करना चाहता है, तब वह यहाँ भले ही एक वास्तविक प्रायोगिक अध्ययन करने में सफल न हो, परन्तु यदि यहाँ अध्ययनकर्ता अपने प्रतिदर्श का स्वरूप यादृच्छिक रखता है, और नगरीकरण व मानसिक स्वास्थ्य का एक वस्तुपरक मापदण्ड प्रस्तुत है, और फिर निष्पक्ष आँकड़ों के आधार पर निष्कर्ष निकालता है, तब इस प्रकार प्राप्त निष्कर्ष भले ही उच्च वैज्ञानिक मापदण्ड पर वैध न हों, फिर भी, ऐसे एक्स-पोस्ट फैक्टो अध्ययनों से व्यावहारिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण तथा वैज्ञानिक स्तर की व्यापक जानकारी उपलब्ध होती है।

इसके अतिरिक्त सामाजिक व शैक्षिक शोधों में अत्यधिक प्रचलित विधियाँ- जैसे, व्यक्ति इतिहास, अनुदैर्ध्य अध्ययन तथा नैदानिक अध्ययन भी एक्स-पोस्ट फैक्टो अध्ययन के ही अंश है। अतः सामाजिक व शैक्षिक शोधों में एक्स-पोस्ट फैक्टो विधि का उपयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण है, तथा एक प्रकार से अनिवार्य भी है।

6.3.2 एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध के लाभ-

एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध के निम्नलिखित लाभ हैं-

1) इस शोध का संचालन प्रयोगात्मक शोध की तुलना में सरल है क्योंकि यहां स्वतंत्र चरों में जोड़-तोड़ करने का झंझट नहीं रहता है।

2) इससे दो या दो से अधिक चरों में साहचर्यात्मक सम्बन्ध ज्ञात करने में महत्वपूर्ण सहायता मिली है तथा इससे एक घटना से सम्बन्धित विभिन्न तत्वों के सूक्ष्म विश्लेषण में पर्याप्त सहायता मिलती है।

3) ऐसे अनुसन्धान द्वारा प्राप्त साहचर्यात्मक सम्बन्धों की जानकारी के आधार पर विभिन्न चरों में अधिकांशतः प्रायोगिक अध्ययनों के लिए उपयोगी परिकल्पनाओं की रचना में तर्क संगत व महत्वपूर्ण सहायता मिलती है।

4) एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध द्वारा दो चरों में व्याप्त सहसम्बन्ध गुणांक के आधार पर उनके घटित होने के विषय में साधारणतः सफल भविष्य कथन भी किये जा सकते हैं।

5) कुछ सामाजिक तथा शैक्षिक क्षेत्रों में, मुख्यतः उन स्थितियों में इस विधि का विशेष योगदान है जिसमें प्रायः प्रयोगिक विधि का उपयोग नहीं हो सकता क्योंकि वहां स्वतंत्र चरों में जोड़-तोड़ संभव नहीं होता।

6) नैदानिक शोधों में भी इस शोध विधि का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि निदान के अध्ययन का स्वरूप घटनोत्तर ही रहता है। अतः निदान की स्थिति में घटनोत्तर अध्ययन की उपयुक्तता अपेक्षाकृत अधिक रहती है और इस स्थिति में प्रायोगिक पद्धति की अनुप्रयुक्ति साध्य ही नहीं होती है।

7) जहां 'प्रभाव' के आधार पर 'कारणों' का अध्ययन करना हो वहां एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध ही बेहतर है।

6.3.3 एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध की सीमाएँ-

एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध की उपस्वर्णित लाभों के बावजूद यह शोध बहुत लोकप्रिय नहीं है क्योंकि इसकी निम्नलिखित सीमाएँ हैं -

1) चूंकि शोधकर्ता स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ नहीं कर पाता, अतः स्वतंत्र चर तथा आश्रित चर के सम्बन्ध के बारे में यथार्थ ढंग से किसी प्रकार का कोई पूर्व कथन करना कठिन होता है।

2) इस शोध में दो चरों के बीच साहचर्यात्मक स्म्बन्ध की जानकारी मिलती है, परन्तु कारणात्मक सम्बन्ध की जानकारी नहीं मिल पाती है।

3) शोधकर्ता का चूंकि सम्बन्धित चरों पर नियंत्रण नहीं होता, अतः वह आश्रित चर से सम्बन्धित स्वतंत्र चर का अन्य स्वतंत्र चर में खोज करता है। इस प्रकार ऐसे अध्ययन में अध्ययनकर्ता का सम्बन्धित चरों पर प्रायोगिक पद्वति की स्थिति जैसा नियंत्रण नहीं रहता।

4) चरों पर नियंत्रण के अभाव में एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध से प्राप्त निष्कर्षो के विषय में केवल अनुमान ही लगाये जा सकते हैं, इससे निश्चित व विश्वसनीय निष्कर्ष उपलब्ध नहीं होते।

5) प्रयोगात्मक शोध की अपेक्षा एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध की प्रक्रिया अधिक विषम होती है, क्योंकि इसका प्रक्रम स्वतंत्र चर तथा आश्रित चर के प्रतिमान पर आधारित नहीं होता बिल्क इसमें आश्रित चर के आधार पर प्रतिगामी रूप में स्वतंत्र चर को अन्य अनेक स्वतंत्र चरों में खोज की जाती है।

6) इसमें प्रयोज्यों का आवंटन यादृच्छिकृत आधार पर सम्भव नहीं होता। अतः ऐसे अनुसंधान द्वारा प्राप्त निष्कर्षा में असंगत चरों के प्रभाव की भरमार रहती है। इस कारण इसके द्वारा प्राप्त निष्कर्षों में विश्वसनीयता का स्तर प्रायः निम्न श्रेणी का ही रहता है।

7) एक्स पोस्ट फैक्टो द्वारा शोध में एक परिकल्पना के परीक्षण से दो चरों के सम्बन्ध में सह सम्बन्धात्मक अध्ययनों के आधार पर केवल अनुमान ही लगाये जा सकते हैं। ऐसे अध्ययनों से विभिन्न चरों में निश्चित प्रक्रार्यात्मक सम्बन्धों के अभाव में आवश्यक भविष्यकथन की शक्ति उपलब्ध नहीं होती।

6.3.4 एक्स पोस्ट फैक्टो शोध के दोषों का निराकरण-

एक्स पोस्ट फैक्टो शोध के प्रति सबसे बड़ी आपत्ति यह उठाई जाती है कि इसके द्वारा दो या दो से अधिक चरों में कारणता के सम्बन्ध को स्थापित नहीं किया जा सकता। इस कारण ऐसे शोध से प्राप्त निष्कर्ष उच्च वैज्ञानिक स्तर के नहीं होते। परन्तु इस सम्बन्ध में लैथ्रोप का कहना है यदि एकल पोस्ट फैक्टो अध्ययन द्वारा कारणता के तथ्य के विषय में अनुमान नहीं लगाया जा सकता, तब इसका अर्थ यह नहीं है कि इस शोध विधि तंत्र का परित्याग ही कर दिया जाय। इस शोध विधि के दोषों को दूर करने की विधि तथा इसकी उपादेयता पर प्रकाश डालते हुए लैथ्रोप ने आगे चल कर लिखा है, सौभाग्य से, एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा विभिन्न एक्स पोस्ट फैक्टो अध्ययनों के माध्यम से कारणता के अनुमान के लक्ष्य की ओर अग्रसर हुआ जा सकता है। यह विधि संकेन्द्रित प्रमाण की है।

लैथ्रोप ने इस सम्बन्ध में एक परम्परागत उदाहरण फेफड़े के कैंसर से सम्बन्धित सिगरेट धूम्रपान का दिया है। उसके अनुसार इस विषय पर पहले कुछ अध्ययनों का स्वरूप एक्स पोस्ट फैक्टो ही था। चूंकि इस प्रकार का अध्ययन प्रायोगिक विधि द्वारा उपयुक्त नहीं था, अतः एक्स पोस्ट अध्ययनों के आधार पर सिगरेट धूम्रपान से कैंसर के रोग के होने को निर्णायक रूप से सिद्ध नहीं किया जा सकता था। अतः शोध के इस प्रक्रम में अनेक वैकल्पिक व्याख्याओं को प्रस्तुत किया गया। कैंसर के रोग के लिए एक व्याख्या यह दी गयी कि किसी एक विचलित गुणसूत्र के कारण व्यक्ति में फेफड़े के कैंसर की ग्रहणशीलता, तथा साथ ही साथ, सिगरेट धूम्रपान की तीव्र इच्छा प्रेरित होती है, जिससे फेफड़े के कैंसर तथा सिगरेट-धूम्रपान में अत्यधिक सहचारिता देखने में आती है। इस रोग के सम्बन्ध में एक व्याख्या संवेगात्मक तनाव की दी गयी और बताया गया कि संवेगात्मकता की तीव्र इच्छा भी उदेलित होती है, और यही कारण है कि धूम्रपान तथा लंग कैंसर में अत्यधिक सह सम्बन्ध पाया जाता है। संक्षेप में इस प्रकार की व्याख्याओं पर आधारित अनेक सूक्ष्म एक्स पोस्ट फैक्टो अभिकल्पों के अध्ययपनों के आधार पर अब ऐसे प्रमाण संचित हो पाये हैं कि उनके आधार पर अब सिगरेट धूम्रपान व कैंसर में कारणता के सम्बन्ध की अधिकांशतः निर्णायक रूप से स्थापित कर दिया गया है। इस सम्बन्ध में ऐसे बहु-पक्षीय एक्स फैक्टो अध्ययनों के आधार पर यू.एस.ए. के सर्जन जनरल का कहना है कि इस समय तक जो प्रमाण संचित हो सके हैं, उसके आधार पर अब यह स्पष्टतः पता लगता है लंग कैंसर की बढ़ती हुई संख्या में एक मुख्य प्रेरणात्मक कारण धूम्रपान है।

संक्षेप में एक्स पोस्ट फैक्टो अनुसंधान के अन्तर्गत आश्रित चर से सम्बन्धित विभिन्न स्वतंत्र चरों को विभिन्न वैकल्पिक परिकल्पनाओं में विभाजित किया जाता है और फिर उनके परीक्षणों से जो प्रमाण संचित होते हैं, उनके सापेक्षिक भार के आधार पर सम्बन्धित चरों के विषय में कारणता के सम्बन्ध की उपयुक्तता का विशिष्ट

सांख्यिकीय विधियों द्वारा विश्लेषण तथा आंकन किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में अध्ययनकर्ता को तत्व विश्लेषण व आंशिक सहसम्बन्ध जैसी विधियों के उपयोग से महत्पूर्ण सहायता मिल सकती है।

6.4 एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध तथा प्रयोगात्मक शोध में अन्तर

मनोवैज्ञानिक शोधों में प्रयोगात्मक शोध तथा एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध का उपयोग ज्यादा होता है। इन दोनों ही शोधों में शोधकर्ता अपने अध्ययन के आधार पर आश्रित चर के बारे में कुछ पूर्वानुमान लगाता है। फिर भी इन दोनों में निम्नलिखित अन्तर है।

1) एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध की प्रक्रिया प्रयोगात्मक शोध प्रक्रिया से पर्याप्त मात्रा में भिन्न होती है। प्रयोगात्मक प्रक्रिया अपेक्षाकृत सरल तथा तर्क-संगत होती है। इसमें परिकल्पना की रचना का स्वरूप भी बोधगम्य तर्क पर आधारित रहता है। तथा इसका प्रतिमान भी वैज्ञानिक विचारधारा के अनुकूल रहता है, जैसे- यदि ग है, तब ल है। इसके विपरीत, एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध का प्रक्रम विषम होता है। इसमें यदि ल परतन्त्र चर है, तब इसमें स्वतन्त्र चर x_1, x_2, x_3, x_4 कुछ भी हो सकते हैं। यहाँ शोधकर्ता को यह स्थापित करना पड़ता है कि इन स्वतन्त्र चरों में से परतन्त्र चर का किस विशेष स्वतन्त्र चर से सम्बन्ध है। इस प्रकार, प्रयोगात्मक शोध में जहाँ स्वतन्त्र चर के आश्रित चर पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन प्रत्यक्षतः किया जाता है, वहाँ एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध में अप्रत्यक्षतः तथा प्रतिगामी रूप से आश्रित चर पर पड़ने वाले स्वतंन्त्र चर के प्रभाव को अन्य अनेक संयुक्त स्वतन्त्र चरों में से एक दूसरे से विलग करना पड़ता है।

2) एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध का स्वतन्त्र चर पर नियन्त्रण नहीं होता, और न ही वह उसमें इच्छानुसार कुछ हेर-फेर ही कर सकता है। परन्तु प्रयोगात्मक शोध में कम से कम ऐसा स्वतन्त्र चर अवश्य होता है जिस पर शोधकर्ता का पूर्ण नियन्त्रण रहता है, और जिसमें वह सामान्यतः इच्छानुसार हेरफेर कर सकता है।

3) प्रायोगिक अनुसन्धान में साधारणतः उपलब्ध प्रयोज्यों को दो समूहों में यादृच्छिक अथवा संयोगिक रूप से आवंटित किया जा सकता है, और इस प्रकार अध्ययन से सम्बन्धित दोनों समूहों को एक दूसरे के अनुरूप किया जा सकता है। क्योंकि जब दो समूचों में प्रयोज्यों का वितरण यादृच्छिकरण प्रक्रम पर आधारित रहता है, तब सैद्धान्तिक रूप से दोनों समूहों के विषय में समतुल्य होने की उपधारणा रहती है। इसी प्रकार, जब इस प्रकार से निर्मित दोनों समूहों में से एक का प्रयोगिक स्थिति व दूसरे का प्रयोग की नियन्त्रित स्थिति के लिए यादृच्छिक आधार पर चयन किया जाता है, तब इस प्रक्रिया से उनके पारस्परिक रूप से सन्तुलित व समतुल्य हो जाने की सैद्धान्तिक प्रसम्भाव्यता में और भी अधिक वृद्धि की जा सकती है। सिद्धान्तः प्रयोज्यों की ऐसी प्रतिचयन पद्धति से उच्च वैज्ञानिक स्तर के निष्कर्ष उपलब्ध होते हैं। परन्तु एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध में प्रयोज्यों का स्वरूप यादृच्छीकरण पर आधारित न होकर स्वयं चयन पर आधारित रहता है। इसका कारण

यह है कि एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध में शोधकर्ता को उन्हीं व्यक्तियों को प्रयोज्यों के रूप में लेना पड़ता है, जिनमें आश्रित चर देखने में आता है। इस स्थिति में उसकी प्रायः प्रतिचयन पद्धति के उपयोग का अवसर ही नहीं मिलता। उदाहरणार्थ, यदि फेफड़े के कैन्सर के रोगियों में सिगरेट धूम्रपान के घटनाक्रम का अध्ययन करना है, तब यहाँ अध्ययनकर्ता को ऐसे रोगियों की खोज करनी पड़ेगी, जो कि फेफड़े के कैन्सर से पीड़ित विधि द्वारा नहीं किया जाता, बल्कि ऐसी स्थिति में, उन सब व्यक्तियों को अध्ययन में सम्मिलित कर किया जाता, फेफड़े के कैन्सर से पीड़ित होते हैं। अतः अध्ययन के लिए उनका चयन ही हो जाता है, और प्रयोज्यों के ऐसे चयन को ही स्वयं-चयन कहते हैं। इस प्रकार एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध में प्रयोज्यों का स्वरूप स्वयं चयनित रहता है।

4) प्रायोगात्मक शोध द्वारा प्राप्त निष्कर्ष अधिक विश्वसनीय व वैज्ञानिक होते हैं, क्योंकि ऐसे अध्ययन में प्रयोज्यों के चयन का आधार प्रसम्भाव्यता सिद्धान्त अथवा यादृच्छिकरण प्रक्रम होता है। इसके विपरीत एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध द्वारा प्राप्त निष्कर्ष इतने विश्वसनीय नहीं होते। इसका कारण यह है कि इसके प्रयोज्यों के चयन की प्रक्रिया स्वयं-चयन पर आधारित होती है, और स्वयं-चयन पर आधारित प्रयोज्यों पर किये गये अध्ययन से वैज्ञानिक परिणाम उपलब्ध नहीं होते। वास्तव में, जब तक प्रयोज्यों के चयन का आधार यादृच्छिक प्रतिचयन नहीं होता, तब तक उनमें असंगत चरों के प्रभाव की भरमार रहती है, और ऐसे प्रतिदर्श पर आधारित निष्कर्ष को प्रायः विश्वसनीय व वैध नहीं माना जाता है।

प्रयोज्यों के प्रतिचयन के तरीकों को लेकर प्रयोगात्मक एवं एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध की विश्वसनीयता का स्तर अलग-अलग होता है तथा एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध की विश्वसनीयता स्तर कम होता है। इस सम्बन्ध में लैथ्रोपैको का कहना है कि एक वास्तविक प्रयोग में प्रसंभाव्यता की मात्रा से यह पता लगता है कि प्राप्त परिणामों में जो प्रसम्भाव्यता देखने में आयी है वह घटित होती, यदि अभिक्रियाओं में वास्तविक अन्तर न हो तो। जहाँ तक एक्स-पोस्ट फैक्टो अध्ययन का सम्बन्ध है, इसमें प्रभव्यता की मात्रा से यह पता लगता है कि परिणामों में जो प्रसम्भाव्यता देखने में आयी है, वह देखने में न आती, यदि अध्ययन के लिए चयन किये गये समूहों में प्रारम्भिक अन्तर न होते।

5) अधिकांश प्रयोगात्मक शोध के आधार पर प्रायः दो चरों में व्याप्त कारणता के सम्बन्ध को स्पष्ट किया जा सकता है, क्योंकि इनके अन्तर्गत स्वतन्त्र चर का प्रत्यक्ष रूप से आश्रित चर पर प्रभाव का गहन अध्ययन किया जाता है। परन्तु एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध के द्वारा ऐसे दो चरों में कारणता का सम्बन्ध वैध रूप से स्थापित करना कठिन होता है, क्योंकि, इसमें अधिकांशतः यह स्थापित करना संशयात्मक रहता है कि आश्रित चर पर विभिन्न चरों में से जिस एक स्वतन्त्र चर के सम्बन्ध का अनुमान लगाया गया है, क्या वह

अनुमान विश्वसनीय तथा वैध है? अतः एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध के माध्यम से प्रायः दो या दो से अधिक चरों में केवल साहचर्यात्मक सम्बन्ध को सिद्ध करना अत्यधिक संदिग्ध रहता है।

6.5 सारांश

एक्स पोस्ट फैक्टो शोध एक ऐसा शोध है जिसमें शोधकर्ता किसी 'प्रभाव' के आधार पर उसके संभावित कारणों का पता लगाने की कोशिश करता है। इस शोध में 'प्रभाव' आश्रित चर होता है तथा 'कारण' स्वतंत्र चर होता है। शोधकर्ता काम 'प्रभाव' उत्पन्न करने वाले कारणों का पता लगाना, यानी स्वतंत्र चरों की जानकारी प्राप्त करना होता है। भीड़, दंगा, सम्बन्ध-विच्छेद आदि जैसे सामाजिक घटनाओं के अध्ययन हेतु एक्स पोस्ट फैक्टो शोध सर्वाधिक लोकप्रिय विधि है।

6.6 शब्दावली

- **कार्य-कारण सम्बन्ध:** इसे प्रभाव-कारण सम्बन्ध भी कहते हैं जो यह बताता है कि कोई कार्य किन कारणों से सम्पन्न हुआ या किसी प्रभाव का मुख्य कारण क्या-क्या है।

6.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1) एक्स पोस्ट फैक्टो शोध है एक -

(अ) प्रयोगात्मक शोध (ब) अप्रयोगात्मक शोध (स) में दोनों (द) इनमें से कोई नहीं

➢ निम्नलिखित में कौन-सा कथन सही है और कौन-सा गलत -

2) एक्स-पोस्ट फैक्टो शोध में शोधकर्ता का स्वतंत्र चरों पर कोई सीधा नियंत्रण नहीं रहता।

3) प्रयोगात्मक शोध की तुलना में एक्स पोस्ट फैक्टो शोध से प्राप्त निष्कर्ष की विश्वसनीयता अधिक होती है।

उत्तर: 1) ब 2) सही 3) गलत

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- अरूण कुमार सिंह (1998) मनोविज्ञान,समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल-बनारसीदास, दिल्ली।
- एच.के. कपिल (2001) अनुसंधान विधियां (व्यवहारपरक विज्ञानों में), एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।

- एफ.एन. करलिंगर (1964) फाउण्डेशन्स ऑफ विहैवियरल रिसर्च, हॉल्ट, रिनेहार्ट एवं विंसटन, इंक, न्यूयार्क।

6.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. एक्स पोस्ट फैक्टो शोध के लाभ एवं सीमाओं का उल्लेख करें।
2. एक्स पोस्ट फैक्टो शोध से आप क्या समझते हैं? प्रयोगात्मक शोध से यह किस प्रकार भिन्न है?
3. एक्स पोस्ट फैक्टो शोध के महत्व पर प्रकाश डालें।
4. एक्स पोस्ट फैक्टो शोध के दोष बतायें तथा दोषों के निराकरण हेतु उपाय सुझायें।

इकाई-7 शोध समस्या की परिभाषा एवं चयन की कसौटियाँ

(Definition and criteria of selecting a Research Problem)

इकाई संरचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 शोध समस्या की परिभाषा

7.3.1 शोध समस्या की विशेषताएँ

7.4 शोध समस्या के स्रोत

7.4.1 समाधान-योग्य बनाम असमाधान-योग्य समस्या

7.5 उपयुक्त समस्या चयन की कसौटियाँ

7.5.1 समस्या का समाधान योग्य होना

7.5.2 समस्या का परीक्षण योग्य होना

7.5.3 समस्या का समाधान आनुभविक प्रदत्त पर आधारित होना

7.5.4 समस्या से सम्बन्धित चरों का स्वरूप स्पष्ट होना

7.5.5 समस्या का नवीन होना

7.5.6 समस्या का सैद्धान्तिक मूल्य होना

7.5.7 समस्या का सामाजिक एवं शैक्षिक महत्व होना

7.6 सारांश

7.7 शब्दावली

7.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

7.9 संदर्भ-ग्रन्थ सूची

7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

किसी भी शोध की शुरूआत समस्या से हाती है। यदि समस्या न हो तो शोध की आवश्यकता नहीं होगी। इसीलिए कहा भी गया है कि समस्या शोध की आधारशिला है। प्रस्तुत इकाई में शोध समस्या को परिभाषित कर उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है, समस्या के स्रोतों की चर्चा की गई है तथा एक उपयुक्त समस्या चयन की कसौटियों को उजागर किया गया है।

इस इकाई का अध्ययन आपको मनोविज्ञान के क्षेत्र में शोध प्रारंभ करने, शोध समस्या का चयन करने एवं सबसे बढ़कर, नये दृष्टिकोण पैदा करने में सहायक होगा।

7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप -

- शोध समस्या को परिभाषित कर उसकी विशेषताएँ बता सकें।
- शोध समस्या के विभिन्न स्रोतों पर चर्चा कर सकें।
- समाधान होने योग्य एवं समाधान नहीं होने योग्य समस्याओं में अन्तर स्थापित कर सकें एवं
- एक उपयुक्त शोध समस्या की कसौटियों को रेखांकित कर सकें।

7.3 शोध समस्या की परिभाषा

किसी भी शोध के लिए सबसे पहले किसी-न-किसी समस्या का होना आवश्यक है क्योंकि किसी समस्या या प्रश्न का समाधान करने का क्रमबद्ध एवं वस्तुनिष्ठ प्रयास ही वैज्ञानिक शोध है। दो या दो से अधिक चरों के बीच सम्बन्ध के बारे में जो प्रश्न पूछा जाता है उसे ही समस्या कहते हैं। इसे स्पष्ट करते हुए करलिंगर (2002) ने कहा है- ''समस्या वह प्रश्नवाचक वाक्य या कथन है, जो यह पूछता है कि दो या अधिक चरों क बीच कैसा सम्बन्ध है?'' इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। मान लीजिए कि एक शोधकर्ता यह जानता है कि व्यक्ति के निष्पादन पर परिमाण के ज्ञान का क्या प्रभाव पड़ता है? यहाँ निष्पादन एक आश्रित चर के रूप में कार्य कर रहा है तथा परिणाम का ज्ञान एक स्वतंत्र चर के रूप में। यदि इसे समस्या का रूप देना चाहें तो स्वतंत्र चर एवं आश्रित चर के सम्बन्ध को दर्शाते हुए इस प्रकार लिखेंगे-'' एक प्रयोग द्वारा व्यक्ति के निष्पादन पर परिणाम के ज्ञान के प्रभाव को दर्शाना''। टाउनसेण्ड ने भी शोध समस्या को परिभाषित करते हुए कहा है ''समस्या एक ऐसा प्रश्नात्मक कथन है जिसमें एक समस्या के समाधान को प्रस्तावित किया जाता है।

7.3.1 शोध समस्या की विशेषताएँ -

स्पष्ट है कि समस्या एक कथन है। इस कथन की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं-

1) समस्या कथन की अभिव्यक्ति प्रश्नवाचक वाक्य द्वारा होती है। ऐसा वाक्य बिल्कुल ही स्पष्ट शब्दों में लिखा जाता है। उदाहरणस्वरूप, क्या व्यक्ति की बुद्धि-लब्धि का सम्बन्ध उसके कक्षा निष्पादन से है? व्यक्ति के जन्म-क्रम का उसकी निर्भरता-उन्मुखता से क्या सम्बन्ध है? क्या आधुनिकता और जीवन तुष्टि एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं? विद्यालय प्रकार से शिक्षकों की कार्य-तुष्टि का क्या सम्बन्ध हैं?

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि शोध समस्या की अभिव्यक्ति एक प्रश्नवाचक कथन के रूप में होती है। यानी, कथन के द्वारा प्रश्न पूछा जा रहा होता है जिसका उत्तर शोध करने के बाद ही दिया जा सकता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि शोध समस्या की अभिव्यक्ति प्रश्नवाचक रूप में न करके साधारण रूप में कर दी जाती है, परन्तु इसका प्रचलन कम है।

2) शोध कथन द्वारा दो या दो से अधिक चरों के बीच के संबंध की अभिव्यक्ति होती है। इसका मतलब यह हुआ कि शोध समस्या के कथन की अभिव्यक्ति करने के पहले शोधकर्ता को चरों के बारे में एक निर्णय लेना पड़ता है। जैसे, उपर्युक्त उदाहरण में पहले कथन में कक्षा निष्पादन तथा बुद्धि लब्धि दो चर हैं। दूसरे कथन में जन्म-क्रम तथा निर्भरता-उन्मुखता दो चर हैं। इसी प्रकार तीसरे कथन में आधुनिकता और जीवन-तुष्टि दो चर हैं। चरों की पहचान कर लेने के बाद दोनों के बीच एक विशेष संबंध की उक्ति की जाती है।
3) शोध समस्या का कथन ऐसा होना चाहिए जिसे आनुभविक विधियों से जाँच किया जाना संभव हो। दूसरे शब्दों में शोध समस्या का कथन ऐसा होना चाहिए कि उसके चरों की माप आँकड़ों का संग्रह करके किया जाना संभव हो सके।

इन प्रमुख विशेषताओं के अलावा कुछ और भी वांछनीय विशेषताएँ बतलाई गयी हैं जिनसे शोध समस्या का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। ऐसी प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित हैं-

1) किसी शोध समस्या को नैतिक मूल्यों से या निर्णयों से संबंधित नहीं होना चाहिए क्योंकि ऐसी शोध समस्याओं का अध्ययन करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य हैं। जैसे, क्या विधवा-विवाह सम्पन्न होना चाहिए? क्या व्यक्ति को सभी परिस्थितियों में झूठ बोलना चाहिए? आदि कुछ ऐसे प्रश्नात्मक कथन हैं जिनका अध्ययन करना काफी कठिन हैं।
2) शोध समस्या को वैज्ञानिक होने के लिए यह भी आवश्यक है कि उसका संबंध महत्वपूर्ण विषयों या घटनाओं से हो न कि तुच्छ विषयों या घटनाओं से। शोध समस्या का स्वरूप ऐसा भी होना चाहिए कि उसे जाँच करने में अत्यधिक समय या धन का व्यय न हो।

3) शोध समस्या को न तो अत्यधिक सामान्य और न ही अत्यधिक विशिष्ट होना चाहिए। उदाहरणस्वरूप, शोध समस्या का कथन जैसे, क्या सर्जनात्मकता व्यक्ति की आत्म-यथार्थता द्वारा प्रभावित होती है, एक अत्यधिक सामान्य समस्या का उदाहरण है। इस ढंग की शोध समस्या की जाँच नहीं की जा सकती है। इसलिए वैज्ञानिक रूप से यह एक अर्थहीन समस्या बन जाती है। इस सम्बन्ध में करलिंगर ने भी हा है कि ''अगर समस्या अत्यधिक सामान्य है तो वह इतनी अस्पष्ट हो जाती है कि उसकी जाँच नहीं की जा सकती है। यानी, वैज्ञानिक रूप से वह अर्थहीन हो जाती है।'' उसी तरह से यदि कोई समस्या अत्यधिक विशिष्ट हो जाती है तो वह भी शोध के दृष्टिकोण से बेकार एवं अर्थहीन हो जाती है क्योंकि ऐसी शोध समस्या के अध्ययन से कोई अर्थपूर्ण सामान्यीकरण नहीं हो पाता है। करलिंगर (1986) ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा है, ''शायद अत्यधिक विशिष्टता अत्यधिक सामान्यता से भी बड़ा खतरा है।''

7.4 शोध समस्या के स्रोत

एक वैज्ञानिक समस्या का प्रतिपादन निश्चित रूप से किसी भी शोधकर्ता के लिए एक कठिन कार्य होता है। फिर भी वह अपने इस कठिन कार्य को आसान बनाने के लिए कुछ ऐसे स्रोतों का सहारा लेता है जिनसे उसे शोध समस्या का प्रतिपादन करना काफी आसान हो जाता है। ऐसे स्रोतों में निम्नांकित स्रोत काफी प्रमुख हैं-

1. शिक्षकों, छात्रों एवं अभिभावकों द्वारा अनुभव की गई प्रमुख समस्याओं का अध्ययन कर शोधकर्ता एक प्रमुख शोध समस्या का प्रतिपादन कर सकता है। उदाहरणस्वरूप, आजकल छात्र उपद्रव एक महत्वपूर्ण समस्या है जिससे स्कूल तथा कॉलेज के शिक्षक और यहाँ तक कि अभिभावकगण भी काफी परेशान हैं। अतः यह विषय शोध का एक महत्वपूर्ण अंग बन सकता है। एक शोधकर्ता इससे कई तरह की शोध समस्या का सूत्रीकरण कर सकता है, जैसे- उपद्रव में किस तरह के छात्र अधिक हिस्सा लेते हैं? उनका प्रमुख व्यक्तित्व शील गुण कौन-कौन सा होता है? किस उम्र-समूह में उपद्रव अधिक होता है? क्या छात्र-उपद्रव का सम्बन्ध सामाजिक आर्थिक स्थिति से भी है, आदि-आदि।
2. सफल शोधकर्ता एक वैज्ञानिक शोध समस्या का प्रतिपादन करने के लिए पाठ्य पुस्तक, शोध जर्नल आदि भी सावधानीपूर्वक पढ़ता है। बहुत से प्रकाशित शोध पत्र ऐसे होते हैं जिनमें लेखक संभावित शोध समस्या की ओर संकेत करता है। इतना ही नहीं, कुछ पाठ्य पुस्तकों एवं शोध जर्नल में कुछ वैसे प्रविधियों एवं कार्यविधियों का भी उल्लेख रहता है जिनसे शोध की नयी समस्या की झलक तो मिलती है, साथ-ही-साथ उनको सुलझाने में शोधकर्ता को विशेष सहायता मिलती है।
3. शोधकर्ता किसी वैज्ञानिक शोध समस्या का प्रतिपादन करने के लिए शोध प्रोफेसर, विशेषज्ञ आदि से भी सलाह करते हैं।

4. समाज में होने वाले नये-नये परिवर्तनों तथा शैक्षिक नवीनता से भी शोधकर्ता को कुछ शोध समस्याएँ मिल जाती हैं। जैसे आधुनिक युग में कम्प्यूटर का प्रयोग अत्यधिक हो रहा है। अतः इससे संबंधित कुछ शोध समस्या शोधकर्ता को आसानी से मिल जाती हैं।
5. कभी-कभी किसी अध्ययन-विषय के कुछ क्षेत्र ऐसे होते हैं जिनके बारे में वैज्ञानिक जानकारी की पूर्णतः कमी होती है! सामान्यतः ऐसे क्षेत्र वे होते हैं जिनके संबंध में अभी तक किसी प्रकार का शोध नहीं किया गया है। जब ऐसे क्षेत्र के विषयों के बारे शोधकर्ता के मन में कुछ जिज्ञासा उठती है तो वह कुछ प्रश्नों को अपने सामने रखता है और इससे शोध समस्या की उत्पत्ति होती है। मनोविज्ञान के क्षेत्र में पारा मनोविज्ञान एक इसी श्रेणी का क्षेत्र है जहाँ शोध कार्य न के बराबर अभी तक हुए हैं। अतीद्रिय प्रत्यक्षण भी मनोविज्ञान का एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें अब तक काफी कम शोध हुए हैं अतः इस क्षेत्र में अनेकों तरह की शोध समस्याएँ मौजूद हैं।
6. शोध समस्या की उत्पत्ति परस्पर विरोधी शोध उपलब्धियों की परिस्थिति से भी होती पायी गयी है। कभी-कभी ऐसा होता है कि एक शोध समस्या पर किये गये दो या दो से अधिक पृथक-पृथक शोधों के परिणाम एक-दूसरे से भिन्न एवं विपरीत हो जाते हैं। शोधकर्ता के लिए ऐसी परिस्थिति में समस्या यह उत्पन्न हो जाती है कि वह किस परिणाम को सही माने। इसके निराकरण के लिए उसे एक नया शोध करना पड़ जाता है। परस्पर विरोधी शोध परिणाम का सबसे अच्छा उदाहरण हमें सीखने के क्षेत्र में मिलता है। उदाहरणस्वरूप, टॉलमैन तथा उनके अनेकों सहयोगियों ने अपने प्रयोगों के आधार पर बतलाया कि सीखने के लिए पुनर्बलन की आवश्यकता नहीं होती है जबकि हल, थॉर्नडाइक, पैवलव, स्किनर आदि मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों के आधार पर बतलाया कि सीखने की प्रक्रिया पुनर्बलन के अभाव में संभव नहीं है। इस परस्पर विरोधी शोध परिणाम के कारण अनेकों मनोवैज्ञानिकों ने सच्चाई जानने के लिए शोध किये हैं जिसका मनोविज्ञान का इतिहास साक्षी है।

बेस्ट एवं काह्न (1992) ने शोध समस्या की उत्पत्ति के साठ स्रोतों का वर्णन किया है जिसमें प्रमुख निम्नांकित हैं-

1. कार्यक्रमित निर्देश
2. टेलीविजन निर्देश
3. टीम प्रशिक्षण
4. घरेलू नीतियाँ एवं अभ्यास
5. पाठ्येतर कार्यक्रम
6. खुला वर्ग
7. पाठ्य पुस्तक

8. स्वतंत्र अध्ययन कार्यक्रम
9. यौन शिक्षा
10. विशेष शिक्षा
11. केस अध्ययन
12. सामाजिक-आर्थिक अध्ययन एवं शैक्षिक उपलब्धि
13. दबाव एवं उपलब्धि
14. प्रशासनिक नेतृत्व
15. आत्म-प्रतिमा
16. छात्रों का व्यावसायिक उद्देश्य

एक शोधकर्ता इन स्रोतों में शोध समस्याओं को ढूँढ़ सकता है।

यंग (1992) ने शोध समस्या की उत्पत्ति के निम्नांकित तीन स्रोतों को महत्वपूर्ण बतलाया है-

1. **प्रलेखी स्रोत-** इस स्रोत में पदीय एवं अपदीय सांख्यिकियों का निरीक्षण एवं विश्लेषण, स्थानीय समाचार-पत्रों तथा जनगणना प्रकाशनों, जहाँ से वर्णनात्मक सामग्रियाँ आसानी से उपलब्ध हो जाती है, को सम्मिलित किया जाता है।
2. **वैयक्तिक स्रोत-** इस स्रोत में उन पेशेवरों से बातचीत कर समस्या ढूँढने की कोशिश की जाती है जिन्हें वांछित आँकड़ों के बारे में सही-सही ज्ञान होता है।
3. **पुस्तकालय स्रोत-** इस स्रोत में विभिन्न तरह के पाठ्य पुस्तकों, जरनलों, मोनाग्राफ एवं समाचार विश्लेषण आदि को रखा जाता है। इन स्रोतों से सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों तरह के ज्ञान संग्रह किये जाते हैं जिनके आधार पर शोध समस्या के बारे में कुछ निर्णय लिये जाते हैं।

स्पष्ट हुआ कि शोध समस्या की उत्पत्ति के एक नहीं बल्कि कई स्रोत हैं जिनके माध्यम से शोधकर्ता एक वैज्ञानिक शोध समस्या का सृजन करता है।

जब कोई शोधकर्ता किसी क्षेत्र में किये गए शोधों की समीक्षा करने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि विभिन्न लोगों द्वारा किए गए शोधों के परिणाम में असंगतता है, तो वह स्पष्टतः इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि कोई शोध समस्या मौजूद है। उदाहरणार्थ- यदि प्रतिक्रिया काल पर किए गए प्रयोगों से यह पता चले कि लड़के और लड़कियों के चयनात्मक प्रतिक्रिया काल में सार्थक अन्तर नहीं है, परन्तु इसी विषय पर हुए दूसरे अध्ययन में लिंग-भेद के कारण चयनात्मक प्रतिक्रिया काल में सार्थक अन्तर देखने को मिले, तो यहाँ परिणाम की असंगतता पुष्टि प्रयोग का रास्ता खोलता है। इसी प्रकार यदि किसी विषय या घटना से सम्बद्ध हमारा वर्तमान ज्ञान-भण्डार

पर्याप्त नहीं होता है, तो भी शोध समस्या की उत्पत्ति होती है। उदाहरणार्थ, यदि यह तथ्य स्थापित हो कि व्यक्ति का चयनात्मक प्रतिक्रिया काल उसके साधारण प्रतिक्रिया काल से अधिक होता है, परन्तु यह नहीं मालूम हो कि लड़के और लड़कियों के चयनात्मक प्रतिक्रिया काल में सार्थक अन्तर होता है या नहीं, तो यहाँ यह समस्या उठ खड़ी होगी कि चयनात्मक प्रतिक्रिया काल पर लिंग-भेद के प्रभाव का अध्ययन किया जाय।

7.4.1 समाधान-योग्य बनाम असमाधान-योग्य समस्या -

परन्तु, शोध समस्या का चयन करते समय इस बात का ख्याल रखना आवश्यक है कि समस्या समाधान-योग्य है या नहीं। समाधान-योग्य समस्या से तात्पर्य उन समस्याओं से होता है जिनमें वैसे प्रश्न उठाये जाते हैं जिनका उत्तर दिया जाना व्यक्ति की सामान्य क्षमताओं के आधार पर संभव है। कला, विज्ञान, मानविकी से सम्बद्ध शोध समस्याएं प्रायः समाधान योग्य होती हैं, जहाँ तक मनोविज्ञान का प्रश्न है इसमें जो शोध समस्याएं होती है वे प्रायः इसी श्रेणी की होती हैं। शोध मनोवैज्ञानिकों ने समाधान-योग्य समस्या की एक खास विशेषता बतलाई है-शोध समस्या को समाधान-योग्य समस्या कहलाने के लिए उसे जाँच के योग्य होना चाहिए। किसी भी शोध समस्या को समाधान-योग्य कहलाने के लिए आवश्यक है कि मनोवैज्ञानिक उस समस्या में उठाये गये प्रश्न को आनुभविक ढंग से हाँ या नहीं के रूप में उत्तर दे सकें। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि एक समाधान-योग्य समस्या वह है जिसके लिए एक उचित एवं जाँचनीय उपकल्पना को एक अंतरिम समाधान के रूप में विकसित किया जा सके। मैकग्यूगन (1990) के शब्दों में, ''एक समस्या को समाधान-योग्य माना जा सकता है अगर इसके अंतरिम समाधान के रूप में एक उपकल्पना बनाया जाना संभव है।'' जैसे, क्या सीखने की प्रक्रिया जीव द्वारा की गयी अनुक्रिया के परिणाम पर निर्भर करती है? यह एक ऐसी शोध समस्या है जिसके लिए तैयार किये गये अंतरिम समाधान के रूप में कहा जा सकता है, ''यदि परिणाम पुरस्कारी होगा, तो जीव उस प्रक्रिया को करना सीख लेगा परन्तु यदि परिणाम दण्डात्मक होगा तो जीव उस प्रक्रिया को नहीं सीख पायेगा।''

एक उपयुक्त उपकल्पना में अन्य बातों के अलावा दो गुणों का होना भी अनिवार्य है। पहला, उसे शोध समस्या के लिए सुसंगत होना चाहिए अर्थात् उस विशेष उपकल्पना द्वारा, यदि शोध समस्या सचमुच में सही है, तो निश्चित रूप से समाधान होना संभव हो, तथा दूसरा उस विशेष उपकल्पना को जाँचनीय होना चाहिए, अर्थात् उस उपकल्पना को निश्चित रूप से सही या गलत ठहराया जाना संभव हो। उपर्युक्त उपकल्पना में ये दोनों गुण हैं अतः यह कहा जा सकता है कि संबंधित शोध समस्या समाधान-योग्य है।

दर्शनशास्त्र, धर्म आदि के क्षेत्र में कुछ-कुछ ऐसी अलौकिक घटनाओं या प्रश्नों का उत्तर ढूँढना होता है जिसका समाधान संभव ही नहीं है। ऐसी शोध समस्या को समाधान योग्य नहीं कहा जाता। उदाहरणस्वरूप, यदि कोई शोधकर्ता कुछ प्रश्न जैसे संसार को किसने बनाया है? आदमी की मूल प्रकृति कैसी होती है? इस संसार का

परम सत्य क्या है? का अध्ययन करना चाहता है तो यह समाधान नहीं होने योग्य का उदाहरण है। मनोविज्ञान का संबंध ऐसी शोध समस्याओं से नहीं होता है।

ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट है कि मनोविज्ञान, जो एक विज्ञान है, में समाधान योग्य समस्याओं का अध्ययन किया जाता है परन्तु दर्शनशास्त्र तथा धर्म आदि में मूल रूप से समाधान नहीं होने योग्य समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि मनोविज्ञान की सभी शोध समस्याएँ समाधान योग्य ही हैं। सच्चाई यह है कि कुछ विशेष कारणों से मनोविज्ञान की कुछ समस्याएँ समाधान योग्य नहीं होती हैं, जिनके कई कारण है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार ऐसे कारक निम्नांकित हैं-

1. **समस्या में असंरचना-** मनोविज्ञान तथा शिक्षा के शोध में कभी-कभी कोई समस्या इसलिए समाधान योग्य नहीं होती है क्योंकि उसमें असंरचना का अवशेष अधिक रह जाता है। यदि समस्या असंचरित है, तो वह निश्चित रूप से समाधान योग्य न होकर असमाधान योग्य हो जाती हैं जैसे, यदि कोई ये प्रश्न करता है-मानव मन कैसे कार्य करता है? तो यह एक समाधान नहीं होने योग्य समस्या का उदाहरण होगा क्योंकि उसमें प्रश्न का उद्देश्य ही बहुत कुछ अस्पष्ट या असंचरित है। हाँ, यदि इस समस्या को कुछ दूसरे ढंग से व्यक्त किया जाय ताकि उसमें असंरचना का गुण कम हो जाय तो वह समाधान योग्य बन जायेगा। जैसे, यदि उक्त प्रश्न की जगह पर यह कहा जाता है कि मानव के मन में कभी चंचलता क्यों बढ़ जाती है और कभी घट जाती है? तो यह एक समाधान योग्य समस्या होगी हालांकि इस समस्या का उत्तर देना भी तुलनात्मक रूप से बहुत आसान नहीं है।
2. **अपर्याप्त परिभाषित पद-** मनोविज्ञान तथा शिक्षा के शोध में कभी-कभी शोध समस्या के प्रश्न अपने अपर्याप्त परिभाषित पदों के कारण भी समाधान योग्य नहीं रह जाते हैं। इन समस्याओं में निहित पदों को चूँकि व्यावहारिक रूप से परिभाषित नहीं किया जा सकता है, अतः वे एक समाधान नहीं होने योग्य समस्या बनी रह जाती हैं। जैसे, क्या बच्चे अनुकरण द्वारा भाषा सीखते हैं? इस शोध समस्या में अनुकरण एक ऐसा पद है जिसके वस्तुनिष्ठ अर्थ में मनोवैज्ञानिकों के बीच विभिन्नता है। अतः इस शोध समस्या को समाधान नहीं होने योग्य समस्या की श्रेणी में रखा जाएगा।
3. **सुसंगत आँकड़ों के संग्रहण में असंभवता-** मनोविज्ञान के शोध में कभी-कभी ऐसा होता है कि समस्या संरचित है तथा उसके पद भी व्यावहारिक रूप से परिभाषेय होते हैं, फिर भी शोधकर्ता यह निश्चित नहीं कर पाता है कि उससे संबंधित सुसंगत आँकड़ों का संग्रहण किस प्रकार किया जाय। इसका परिणाम यह होता है कि समस्या समाधान योग्य रह जाती है। एक उदाहरण लीजिए-मान लिया जाय कि कोई शोधकर्ता एक ऐसे नैदानिक रोगी जो न बोल सकता है, न देख सकता है, और न सुन सकता है, की बुद्धि पर मनोचिकित्सा का क्या प्रभाव पड़ता है, इसका अध्ययन करना चाहता है। यह शोध समस्या संरचित है तथा उसके दोनों पद या

चर 'बुद्धि तथा 'मनोचिकित्सा' ऐसे हैं जिन्हें व्यावहारिक रूप से परिभाषित भी किया जा सकता है। फिर भी इस शोध समस्या के बारे में आँकड़ों को संग्रहण करना संभव नह है। जैसे, क्या मनोचिकित्सा से रोगी की बुद्धि बढ़ जायेगी या घट जायेगी, इसके बारे में आँकड़े संग्रह करना संभव नहीं है, क्योंकि रोगी न सुन सकता है, न बोल सकता है, और न देख सकता है। अतः ऐसी समस्याएं समाधान योग्य नहीं होती है।

7.5 उपयुक्त समस्या चयन की कसौटियाँ

सामान्यतः एक उपयुक्त समस्या का चयन करना कठिन कार्य है तथा एक नये शोधकर्ता के लिए एक उचित समस्या का चयन करना और भी अधिक कठिन कार्य होता है। समस्या उपयुक्त हो इसके लिए समस्या के स्रोतों का ज्ञान तो आवश्यक है ही, इसके अतिरिक्त निम्नलिखित कसौटियों पर उसे खरा उतरना भी आवश्यक होता है-

7.5.1. समस्या का समाधान योग्य होना-

कोई भी शोध समस्या तभी उपयुक्त कही जायेगी जब वह समाधान होने योग्य हो। यदि समस्या का चयन ऐसे विषय-क्षेत्र से है कि उसका समाधान नहीं हो सकता, किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता, तो उसे एक उपयुक्त समस्या की संज्ञा नहीं दी जा सकती है।

7.5.2. समस्या का परीक्षण योग्य होना-

शोध को समस्या समाधान की प्रक्रिया कहा गया है। यह प्रक्रिया दरअसल उपकल्पना परीक्षण की होती है जो किसी समस्या का प्रस्तावित समाधान होती है। अतः किसी समस्या को इस प्रकार का होना चाहिए कि उसके समाधान हेतु उपकल्पना का निर्माण कर उसका परीक्षण किया जा सके।

7.5.3. समस्या का समाधान आनुभविक प्रदन्त पर आधारित होना-

एक उपयुक्त समस्या का उत्तर आनुभविक प्रदत्त पर आधारित होना चाहिए। इसके लिए संगत प्रदत्तों का संकलन आवश्यक होता है साथ ही प्रदत्तों का स्वरूप पारिमाणात्मक होना भी आवश्यक होता है।

7.5.4. समस्या से सम्बन्धित चरों का स्वरूप स्पष्ट होना-

चूँकि समस्या स्वतंत्र एवं आश्रित चरों के बीच सम्बन्धों का उल्लेख करने वाला प्रश्नवाचक कथन होता है, अतः एक उपयुक्त समस्या चयन के लिए यह आवश्यक है कि उसमें कौन-सा चर स्वतंत्र है। कौन-सा आश्रित। इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं होना चाहिए। यानी, चरों का स्वरूप स्पष्ट और निश्चित होना चाहिए।

7.5.5. समस्या का नवीन होना-

यदि समस्या ऐसी है, जिस पर अनुसंधान पहले हो चुका है तो उस पर पुनः शोध करने से शोधकर्ता का समय, धन, श्रम की बर्बादी ही होगी और इसे उपयुक्त समस्या की संज्ञा भी नहीं दी जा सकेगी। अतः समस्या का स्वरूप नवीन एवं मौलिक होना भी एक उपयुक्त समस्या चयन की महत्वपूर्ण कसौटी है।

7.5.6 समस्या का सैद्धान्तिक मूल्य होना-

एक उपयुक्त समस्या ज्ञान-क्षेत्र की रिक्तता भरने योग्य होनी चाहिए। उसके समाधान से किसी सिद्धान्त के विकास में सहायता मिलनी चाहिए।

7.5.7. समस्या का सामाजिक एवं शैक्षिक महत्व का होना-

किसी शोध समस्या को तभी उपयुक्त कहा जायेगा जब उसके अध्ययन की समाज में प्रतिष्ठा हो तथा समस्या के समाधान से न सिर्फ ज्ञान के वर्तमान क्षेत्र में वृद्धि हो बल्कि उसका सामाजिक एवं शैक्षिक महत्व भी उच्च कोटि का हो।

उपर्युक्त कसौटियों के अतिरिक्त एक उपयुक्त समस्या का व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से उपयोगी होना आवश्यक होता है। समय और खर्च के दृष्टिकोण से किफायती होना, शोधकर्ता का प्रशिक्षित होना आदि भी उपयुक्त समस्या की उपयोगी कसौटी है। इतना ही नहीं, समस्या प्रायः ऐसी होनी चाहिए जिससे किसी व्यक्ति या समुदाय के धार्मिक व नैतिक मूल्यों तथा मान्यताओं को आघात न पहुँचे।

7.6 सारांश

- दो या दो से अधिक चरों के बीच सम्बन्ध के बारे में जो प्रश्न पूछा जाता है उसे ही समस्या कहते हैं।
- समस्या की निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं- (क) इसकी अभिव्यक्ति प्रश्नवाचक वाक्य द्वारा होती है। (ख) अभिव्यक्ति दो या अधिक चरों के सम्बन्धों की होती है। (ग) आनुभविक विधियों से कथन की जाँच संभव होता है।
- किसी शोध समस्या के महत्वपूर्ण स्रोत हैं- पाठ्य-पुस्तक, शोध-जर्नल, इन्टरनेट पर उपलब्ध सूचनाएं, शोध प्रोफेसर एवं विषय-विशेषज्ञों की राय व मार्गदर्शन, शोधकर्ता का व्यक्तिगत अनुभव, शिक्षकों, छात्रों व अभिभावकों का अनुभव, पुस्तकालय व संस्था आदि।
- जिन प्रश्नों का उत्तर दिया जाना व्यक्ति की सामान्य क्षमताओं के वश में होता है उसे समाधान-योग्य समस्या कहते हैं तथा जब समस्या का स्वरूप ऐसा हो कि उसका समाधान, उसकी असंरचना, संदिग्धता, पदों को परिभाषित करने की अक्षमता, प्रदत्त संग्रहण की असंभवता आदि के कारण, संभव न हो तो उसे असमाधान योग्य समस्या कहते हैं।

- एक उपयुक्त समस्या चयन की निम्नलिखित कसौटियां होती हैं-
- (क) समस्या का समाधान योग्य होना, (ख) परीक्षण योग्य होना, (ग) समाधान आनुभविक प्रदत्त पर आधारित होना, (घ) समस्या से सम्बन्धित चरों का स्वरूप स्पष्ट होना, (च) समस्या का नवीन होना, (छ) समस्या का सैद्धान्तिक मूल्य होना तथा (ज) समस्या का सामाजिक एवं शैक्षिक महत्व का होना।

7.7 शब्दावली

- **शोध समस्या:** समस्या दो या अधिक चरों के बीच सम्बन्ध की अभिव्यक्ति करने वाला प्रश्नवाचक कथन है।
- **असंरचित समस्या:** ऐसी समस्या जिसमें अस्पष्टता एवं संदिग्धता के कारण उसका समाधान संभव नहीं होता, असंरचित समस्या कहलाती है।

7.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1) ''समस्या वह प्रश्नवाचक वाक्य या कथन है, जो यह पूछता है कि दो या अधिक चरों के बीच कैसा सम्बन्ध है?'' समस्या की यह परिभाषा निम्नलिखित में से किसके द्वारा दी गई है-

1. यंग 2. करलिंगर 3. बेस्ट एवं फाह्न 4. इनमें से कोई नहीं

2) निम्नलिखित कथन सत्य है अथवा असत्य-

(क) शोध समस्या को परीक्षण योग्य होना चाहिए।

(ख) एक उपयुक्त समस्या का समाधान योग्य होना आवश्यक नहीं है।

(ग) समस्या से सम्बन्धित चरों का स्वरूप स्पष्ट होना चाहिए।

उत्तर : 1) करलिंगर 2) क. सत्य ख. असत्य ग. सत्य

7.9 संदर्भ-ग्रन्थ सूची

- अरूण कुमार सिंह (1998) मनोविज्ञान,समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल-बनारसीदास, दिल्ली।
- एच.के. कपिल (2001) अनुसंधान विधियां (व्यवहारपरक विज्ञानों में), एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।
- एफ.एन. करलिंगर (2002) फाउण्डेशन्स ऑफ विहैवियरल रिसर्च, हॉल्ट, रिनेहार्ट एवं विंसटन, इंक, न्यूयार्क।

- राम आहूजा (2009) रिसर्च मेथड्स, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर

7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. शोध समस्या को परिभाषित करें एवं इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालें।
2. एक उत्तम शोध समस्या के चयन की कौन-कौन सी कसौटियां हैं? विवेचन करें।
3. टिप्पणी लिखें-

   (i) समस्या के स्रोत

   (ii) समाधान योग्य समस्या बनाम असमाधान योग्य समस्या

इकाई 8 शोध उपकल्पना: अर्थ एवं प्रकार

(Research Hypothesis:- Meaning and types)

इकाई संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 उपकल्पना का अर्थ

8.3.1 शोध समस्या एवं उपकल्पना में अन्तर

8.3.2 शोध उपकल्पना के कुछ उदाहरण

8.3.3 उपकल्पना निर्माण के उद्देश्य

8.4 शोध उपकल्पना के प्रकार

8.4.1 चरों की संख्या के आधार पर

8.4.1.1 साधारण उपकल्पना

8.4.1.2 जटिल उपकल्पना

8.4.2 चरों में विशेष सम्बन्ध के आधार पर

8.4.2.1 सार्वत्रिक उपकल्पना

8.4.2.2 अस्तित्वात्मक उपकल्पना

8.4.3 विशिष्ट उद्देश्य के आधार पर

8.4.3.1 शोध उपकल्पना

8.4.3.2 नल उपकल्पना

8.4.3.3 सांख्यिकीय उपकल्पना

8.5 सारांश

8.6 शब्दावली

8.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

8.8 संदर्भ-ग्रन्थ सूची

8.9 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने शोध समस्या के सम्बन्ध में जानकारी हासिल की और देखा कि समस्या दो या अधिक चरों के बीच के सम्बन्ध के बारे में एक प्रश्नवाचक कथन है।

प्रस्तुत इकाई में समस्या चयन के पश्चात समाधान की दिशा में हम दूसरा कदम रखेंगे जिसका नाम होगा उपकल्पना। यह समस्या का प्रस्तावित उत्तर होता है। इस इकाई में आप उपकल्पना का अर्थ एवं उसके विभिन्न प्रकारों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।

उपकल्पना का ज्ञान आपको किसी शोध की समस्या के समाधान की दिशा में चिन्तन का विविध आयाम प्रदान करेगा और आपको वैज्ञानिक तरीके से उपकल्पना का निर्माण करने में सहायता करेगा।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप इस योग्य हो जायेंगे कि-

- आप उपकल्पना को परिभाषित कर सकें एवं उसकी विशेषताएँ बता सकें।
- शोध समस्या तथा उपकल्पना में अन्तर स्पष्ट कर सकें।
- उपकल्पना निर्माण के उद्देश्य पर प्रकाश डाल सकें तथा
- विभिन्न प्रकार की उपकल्पनाओं को रेखांकित कर सकें।

8.3 उपकल्पना का अर्थ

जब शोधकर्ता किसी शोध समस्या का चयन कर लेता है तो वह उसका एक अस्थायी समाधान एक जांचनीय प्रस्ताव के रूप में करता है। इसी जांचनीय प्रस्ताव को तकनीकी भाषा में उपकल्पना कहा जाता है। यानी, किसी शोध समस्या का एक प्रस्तावित जांचनीय उत्तर ही उपकल्पना कहलाता है। इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है - मान लिया जाय कि एक शोधकर्ता की शोध समस्या यह है - क्या सीखना या पुनर्बलन का प्रभाव पड़ता है? थोड़ी देर के लिए मान लिया जाय कि इस शोध समस्या का एक प्रस्तावित जांचनीय उत्तर इस प्रकार तैयार किया जाता है - ''पुरस्कार से सीखने की क्रिया तेजी से होगी तथा दण्ड देने से सीखने की क्रिया मन्द पड़ जायेगी।'' यह जांचनीय उत्तर उपकल्पना कहलायेगा। अगर प्रयोग या शोध के निष्कर्ष से उपकल्पना की पुष्टि हो

जाती है, तो उपकल्पना को सही मान लिया जाता है। परन्तु यदि पुष्टि नहीं हो पाती है, तो उपकल्पना में या तो परिमार्जन कर दिया जाता है या उसकी जगह पर कोई दूसरी उपकल्पना विकसित कर ली जाती है।

उपकल्पना को कुछ प्रमुख शोध विशेषज्ञों ने इस प्रकार परिभाषित किया है - एडवर्ड्स (1974) के अनुसार - ''उपकल्पना दो या अधिक चरों के संभावित सम्बन्ध के विषय में कथन है। यह एक प्रश्न का ऐसा अनुमानित उत्तर है, जिससे चरों के सम्बन्ध का पता चलता है।

मैकग्यूगन (1990) के अनुसार ''दो या दो से अधिक चरों के बीच संभावित संबंधों के बारे में बनाये गये जांचनीय कथन को उपकल्पना कहा जाता है।''

करलिंगर (1986) के अनुसार, ''दो या दो से अधिक चरों के बीच संबंधों के अनुमानित कथन को उपकल्पना कहा जाता है। उपकल्पनाओं को हमेशा घोषणात्मक वाक्य के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है और वे चरों से चरों के बीच में सामान्य या विशिष्ट संबंध बतलाते हैं।''

इन परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर हमें कुछ ऐसे तथ्य प्राप्त होते हैं जिनसे उपकल्पना का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। कुछ ऐसे तथ्य निम्नांकित हैं -

- उपकल्पना में दो या दो से अधिक चरों के बीच एक संबंध बतलाया जाता है। जैसे, ''पुरस्कार देने से सीखने की प्रक्रिया तेजी से होती है'', एक ऐसी ही उपकल्पना का उदाहरण है जिसमें पुरस्कार (एक चर) तथा सीखना (दूसरा चर) के बीच एक तरह का सम्बन्ध बतलाया जा रहा है।
- उपकल्पना चरों के बीच एक जांचनीय कथन के रूप में अभिव्यक्त की जाती है। इसका मतलब यह हुआ कि उपकल्पना में दो या दो से अधिक ऐसे चर होते हैं जिन्हें मापा जाना संभव है। जैसे, ऊपर के उदाहरण में पुरस्कार तथा सीखना दोनों ही ऐसे चर हैं जिनका आसानी से मापन किया जा सकता है।
- उपकल्पना द्वारा चरों के बीच एक सामान्य या विशिष्ट संबंधों की अभिव्यक्ति की जाती है।

इन तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपकल्पना एक सम्बन्धित समस्या का ऐसा संभावित एवं परीक्षण योग्य प्रस्ताव होता है जिसके आधार पर सम्बन्धित चरों अथवा घटनाओं का अध्ययन आनुभविक रूप से किया जा सके और समस्या का पर्याप्त, उपयुक्त तथा वैध उत्तर उपलब्ध हो सके।

8.3.1 शोध समस्या तथा उपकल्पना में अन्तर -

शोध समस्या दो या दो से अधिक चरों के बीच एक प्रश्नात्मक वाक्य या कथन होता है। उपकल्पना दो या दो से अधिक चरों के बीच व्यक्त प्रश्नात्मक कथन का एक अस्थायी समाधान होता है। स्पष्ट है कि दोनों में बहुत हद तक समानता है। जैसे दोनों के द्वारा दो या दो से अधिक चरों के बीच एक खास तरह के संबंध की अभिव्यक्ति

होती है। दूसरी समानता यह बतलायी गयी है कि इन दोनों के द्वारा शोध का दिशा निर्देश मिलता है। परन्तु इन समानताओं के बावजूद भी इन दोनों में निम्नांकित अन्तर है -

i) उपकल्पना दो या दो से अधिक चरों के बीच सीधे एक जांचनीय कथन होता है जबकि शोध समस्या अपने आप में जांचनीय कथन नहीं होता है लेकिन इसका अनुप्रयोग आनुभविक विधियों द्वारा अवश्य जांचनीय होता है। उदाहरणस्वरूप, क्या पुनर्बलन का प्रभाव सीखने की प्रक्रिया पर पड़ता है? यह एक शोध समस्या का उदाहरण है जिसकी जांच संभव नहीं है। परन्तु जब इस शोध समस्या के समाधान के लिए एक अस्थायी तौर पर हम एक प्रस्ताव तैयार कर लेते हैं, तो यह उपकल्पना का रूप ले लेता है जिसकी जांच सम्भव है। जैसे, ''पुरस्कार देने से सीखने की प्रक्रिया तेजी से होगी'' एक उपकल्पना है, जिसकी जांच शोधकर्ता प्रयोग करके करता है।

ii) शोध समस्या की अभिव्यक्ति एक प्रश्नात्मक कथन के रूप में की जाती है जबकि उपकल्पना की अभिव्यक्ति एक घोषणात्मक वाक्य या कथन के रूप में की जाती है। जैसे, क्या पुनर्बलन का प्रभाव सीखने की प्रक्रिया पर पड़ता है? एक प्रश्नात्मक कथन है जो शोध समस्या का एक उदाहरण है। परन्तु ''पुरस्कार से सीखने की प्रक्रिया तेजी से होगी'' या ''दण्ड देने से सीखने की प्रक्रिया धीमी गति से होगी'' एक घोषणात्मक कथन है जो उपकल्पना का एक उदाहरण है।

iii) शोध समस्या द्वारा यह पता चलता है कि चरों के बीच के संबंधों की मुख्य समस्या क्या है। इससे उसके समाधान की ओर कोई संकेत नहीं मिलता है। परन्तु उपकल्पना द्वारा चरों के बीच के संबंधों की समस्या के संभावित हल का संकेत मिलता है।

स्पष्ट है कि शोध समस्या तथा उपकल्पना में समानता होते हुए भी कुछ विभिन्नताएं हैं।

8.3.2 शोध उपकल्पना के कुछ उदाहरण -

i) लड़के और लड़कियों के समस्या समाधान व्यवहार में सार्थक अन्तर होता है।
ii) शिक्षकों के कार्य संतोष पर उनकी वैवाहिक स्थिति का सार्थक प्रभाव पड़ता है।
iii) समूह अध्ययन से छात्रों की उपलब्धि का स्तर बढ़ जाता है।
iv) छात्रावास में रहने वाले लड़के छात्रावास में नहीं रहने वाले लड़कों से ज्यादा अल्कोहल लेते हैं।
v) कार्य के घंटे बढ़ जाने से कार्य तुष्टि में कमी आ जाती है।
vi) विखण्डित परिवार के बच्चो में अपराध भावना अधिक पायी जाती है।
vii) वर्ग की तुलना में निम्न वर्ग के लोग ज्यादा बच्चे पैदा करते हैं।
viii) अलगाव बोध छात्र-उपद्रव को बढ़ावा देता है।
ix) जन्म-क्रम व्यक्ति की निर्भरता-उन्मुखता का एक सार्थक निर्धारक होता है।

x) परिवार के सबसे छोटे बच्चे में निर्भरता उन्मुखता सर्वाधिक पायी जाती है।

8.3.3 उपकल्पना निर्माण के उद्देश्य -

उपकल्पना का वैज्ञानिक तथ्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जब कोई शोधकर्ता किसी एक समस्या का अनुभव करता है तो उसे उसके समाधान के लिए एक उपकल्पना की आवश्यकता होती है। पूर्व-स्थापित तथ्यों में शोधकर्ता को प्रायः एक समस्या से सम्बन्धित एक उपयुक्त उपकल्पना की रचना में सहायता मिलती है, जिसके परीक्षण से नये वैज्ञानिक तथ्य उपलब्ध होते हैं।

जिस प्रकार वैज्ञानिक नियमों एवं तथ्यों से उपकल्पना की रचना में सहायता मिलती है, उसी प्रकार पूर्व-स्थापित सिद्धान्तों से भी शोधकर्ता को एक उपकल्पना की रचना में पर्याप्त सहायता मिलती है। उपकल्पना के परीक्षण से जो नये तथ्य प्राप्त होते हैं, उनसे एक नवीन सिद्धान्त की रचना संभव होती है और यदि नवीन तथ्य पूर्व-स्थापित सिद्धान्त से भिन्न होते हैं, तो पूर्व-स्थापित सिद्धान्त में संशोधन की आवश्यकता भी पड़ सकती है।

समाज मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि एक अच्छी उपकल्पना तीन महत्वपूर्ण कार्य करती है-पूर्व-स्थापित सिद्धान्तों की जांच, नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन तथा किसी घटना का वर्णन। इसके अतिरिक्त, उपकल्पनाओं की जांच कर शैक्षणिक विधियों में सुधार किया जा सकता है, विभिन्न तरह की सामाजिक समस्याओं के समाधान के नये तरीकों को ढूंढा जा सकता है, अपराधियों के व्यवहारों में सुधार लाया जा सकता है तथा एक नयी सामाजिक नीति की घोषणा जा सकती है।

8.4 शोध उपकल्पना के प्रकार

मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा के क्षेत्र में शोधकर्ताओं द्वारा बनाये गये उपकल्पनाओं के स्वरूप पर यदि ध्यान दिया जाय तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि उसे कई प्रकारों में बांटा जा सकता है। शोध विशेषज्ञों ने उपकल्पना का वर्गीकरण निम्नांकित तीन आधारों पर किया है -

8.4.1 चरों की संख्या के आधार पर -

मनोवैज्ञानिकों ने प्राक्कल्पना का सबसे सरल वर्गीकरण उपकल्पना में निहित चरों के आधार पर किया है। इस कसौटी पर उपकल्पना के मुख्य दो प्रकार बतलाये गये हैं –

8.4.1.1 साधारण उपकल्पना -

साधारण उपकल्पना वैसी उपकल्पना को कहा जाता है जिसमें चरों की संख्या मात्र दो होती है और सिर्फ इन्हीं दो चरों के संबंध द्वारा शोध समस्या का एक प्रस्तावित उत्तर दिया जाता है। उदाहरणस्वरूप, ‘‘बच्चों की बुद्धि तथा

वर्ग उपलब्धि में धनात्मक सहसंबंध होता है।'' इस उपकल्पना में दो चर हैं-बुद्धि तथा वर्ग उपलब्धि, जिनके बीच एक खास संबंध की चर्चा की गई है। अतः यह एक साधारण उपकल्पना का उदाहरण है।

8.4.1.2 जटिल उपकल्पना -

जटिल उपकल्पना वैसी उपकल्पना को कहा जाता है जिसमें चरों की संख्या दो से अधिक होती है और उनमें एक खास सम्बन्ध बतलाकर शोध समस्या का प्रस्तावित उत्तर तैयार किया जाता है। जैसे - शहर के उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर के लोगों में धूम्रपान करने की प्रवृत्ति देहात के मध्यम सामाजिक-आर्थिक स्तर के लोगों की अपेक्षा अधिक होती है। इस उपकल्पना में तीन चर हैं - सामाजिक-आर्थिक स्तर, धूम्रपान की प्रवत्ति तथा शहरी-ग्रामीण क्षेत्र। इन तीनों चरों में विशेष प्रकार का सम्बन्ध बतलाकर जिस उपकल्पना का उल्लेख किया गया है, वह निश्चित रूप से जटिल उपकल्पना का उदाहरण है।

8.4.2 चरों में विशेष संबंध के आधार पर -

कुछ शोध विशेषज्ञों ने उपकल्पना का वर्गीकरण चरों के विशिष्ट सम्बन्धों के आधार पर किया है। जैसे, मैकग्यूगन (1990) ने इस कसौटी के आधार पर उपकल्पना के मुख्य दो प्रकार बतलाये हैं, जो निम्नांकित हैं -

8.4.2.1 सार्वत्रिक उपकल्पना -

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इस तरह के उपकल्पना का स्वरूप ही कुछ ऐसा होता है जो निहित चरों के सभी तरह के मानों के बीच के सम्बन्ध को हर परिस्थिति में हर समय बनाये रखता है। जैसे मानव की सीखने की प्रक्रिया पुरस्कार तथा प्रशंसा द्वारा तेजी से होती है, एक ऐसी उपकल्पना का उदाहरण है जिसमें बतलाया गया सम्बन्ध हर परिस्थिति में हर समय प्रत्येक मानव पर लागू होता है। परन्तु मनोविज्ञान में चूंकि जीव के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है और चूंकि व्यवहारों में विभिन्नता होने की संभावना अधिक होती है, इसलिए इस तरह की सार्वत्रिक उपकल्पना की सीमा बंधी हुई होती है। जैसे, उपर्युक्त उपकल्पना को ही ले लिया जाय। यह उपकल्पना सामान्य मानव के लिए तो ठीक है परन्तु असामान्य मानव के लिए कहां तक उतना ही उपयुक्त होगा, कहना मुश्किल होगा। अतः व्यवहारों में विभिन्नता के कारण सार्वत्रिक उपकल्पना अपने आप ही एक सीमा में बंध जाती है।

8.4.2.2 अस्त्विात्मक उपकल्पना -

वैसी उपकल्पना को कहा जाता है जो सभी व्यक्तियों या परिस्थितियों के लिए नहीं तो कम-से-कम एक व्यक्ति या परिस्थिति के लिए निश्चित रूप से सही होती है। जैसे, यदि एक उपकल्पना विकसित की जाती है कि वर्ग में कम-से-कम एक छात्र तो ऐसा है जिसमें सीखने की प्रक्रिया दण्ड देने से तेजी से होती है। तो यह एक अस्तिवात्मक

उपकल्पना का उदाहरण होगा। इस ढंग की उपकल्पना के साथ एक दोष यह बतलाया गया है कि यदि वह जांच के बाद सही पाई जाती है तो उसका सामान्यीकरण अन्य व्यक्तियों के लिए नहीं किया जा सकता है और इस तरह से आगे की समस्या शोधकर्ता के लिए बनी ही रह जाती है। ऐसी परिस्थिति में शोधकर्ता एक नहीं बल्कि कई अस्तित्वात्मक उपकल्पनाओं की जांच करता है और तब कहीं जाकर वह सामान्यीकरण करने की अवस्था में पहुंच पाता है।

8.4.3 विशिष्ट उद्देश्य के आधार पर -

शोध के विशिष्ट उद्देश्य के आधार पर शोध मनोवैज्ञानिकों ने उपकल्पना को निम्नांकित तीन भागों में बांटा है।

8.4.3.1 शोध उपकल्पना या कार्यरूप उपकल्पना -

शोध उपकल्पना से तात्पर्य वैसी उपकल्पना से होता है जो किसी घटना या तथ्य के लिए बनाये गये विशिष्ट सिद्धान्त से निकाली गई अनुमति पर आधारित होती है। शोधकर्ता इस विश्वास के साथ इस तरह की उपकल्पना का प्रतिपादन करता है कि वह यथार्थ है क्योंकि वह एक सिद्धान्त पर आधारित होता है। शोधकर्ता की तमन्ना यही रहती है कि शोध के परिणाम द्वारा उसकी शोध उपकल्पना की संपुष्टि हो जाय, हालांकि कभी-कभी उसकी यह तमन्ना पूरी नहीं हो पाती है। शोध उपकल्पना को एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझा जा सकता है - सीखने का एक प्रमुख सिद्धान्त सूझ सिद्धान्त है। यदि इस पर आधारित करके कोई शोधकर्ता यह उपकल्पना बनाता है कि व्यक्ति सूझ द्वारा प्रयत्न तथा भूल की अपेक्षा जल्दी सीखता है तो यह एक शोध उपकल्पना का उदाहरण होगा। शोध उपकल्पना की संक्रियात्मक अभिव्यक्ति को ही वैकल्पिक उपकल्पना कहते हैं।

शोध उपकल्पना की अभिव्यक्ति दो ढंग से की जा सकती है - दिशात्मक अभिव्यक्ति तथा अदिशात्मक अभिव्यक्ति। उदाहरणस्वरूप, मान लिया जाय कि कोई शोधकर्ता व्यक्तियों के दो समूहों में बुद्धि में अन्तर का अध्ययन करना चाहता है जिसके लिए वह शोध उपकल्पना इस तरह बनाता है - समूह 'अ' समूह 'ब' से बुद्धि में श्रेष्ठ है। इस शोध उपकल्पना के लिए वह वैकल्पिक उपकल्पना दो तरह से तैयार कर सकता है समूह 'अ' तथा समूह 'ब' की बुद्धि एक समान हैं या समूह 'ब' बुद्धि में समूह 'अ' से श्रेष्ठ है या समूह 'अ' बुद्धि में समूह 'ब' से श्रेष्ठ है। पहली उपकल्पना अदिशात्मक ढंग से अभिव्यक्त की गई है क्योंकि इसमें समूह 'अ' तथा समूह 'ब' में अन्तर की कोई दिशा का उल्लेख नहीं है। परन्तु दूसरी उपकल्पना दिशात्मक ढंग से अभिव्यक्त की गई है क्योंकि इसमें समूह 'अ' तथा 'ब' के अन्तर में एक दिशा पर बल डाला गया है।

स्पष्ट है कि शोध उपकल्पना दिशात्मक और अदिशात्मक दोनों तरह की हो सकती है। यह शोधकर्ता के तर्क एवं पूर्व-स्थापित सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में निर्धारित होता है।

8.4.3.2 नल उपकल्पना -

नल उपकल्पना शोध उपकल्पना के ठीक विपरीत होती है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट हे, यह एक तरह से उल्लेखित चरों के बीच 'प्रभाव-नहीं' की उपकल्पना होती है। दूसरे शब्दों में नल उपकल्पना वह उपकल्पना है जिसके द्वारा हम चरों के बीच कोई अन्तर नहीं होने के सम्बन्ध का उल्लेख करते हैं। इसे शून्य उपकल्पना भी कहते हैं। शोधकर्ता जब कोई शोध उपकल्पना बनाता है तो साथ-ही-साथ ठीक उसके विपरीत ढंग से नल उपकल्पना भी बना लेता है और उसकी तमन्ना यही रहती है कि शोध परिणाम के द्वारा नल उपकल्पना अस्वीकृत हो जाय ताकि वह विश्वास के साथ शोध उपकल्पना को स्वीकृत करके उस दिशा में एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंच सके। जैसे, उपर्युक्त शोध उपकल्पना के लिए नल उपकल्पना इस प्रकार होगी, 'व्यक्ति सूझ द्वारा प्रयत्न तथा भूल की अपेक्षा जल्दी नहीं सीखता है।' यदि शोध के परिणाम द्वारा यह अस्वीकृत हो जाता है तो स्वतः उसका विपरीत (यानी, शोध उपकल्पना) को यथार्थ मान लिया जाता है। यही कारण है कि नल उपकल्पना को एक काल्पनिक मॉडल माना गया है क्योंकि उसका अस्तित्व वास्तविक रूप से तो होता नहीं है।

8.4.3.3 सांख्यिकीय उपकल्पना -

सांख्यिकीय उपकल्पना से तात्पर्य वैसी उपकल्पना से होता है जिसमें सांख्यिकीय जीवसख्या के बारे में विशेष सम्बन्ध की उत्पत्ति होती है तथा जिसे शोधकर्ता अपने प्राप्त आंकड़ों के आधार पर स्वीकृत या अस्वीकृत करना चाहता ह। ब्लैक तथा चैम्पियन (1976) के शब्दों में 'सांख्यिकीय उपकल्पना सांख्यिकीय जीवसंख्या के बारे में वैसा कथन होता है जिसे प्रेक्षित आंकड़ों से मिलने वाली सूचनाओं के आधार पर समर्थन दिया जाता है या खण्डन किया जाता है।' सांख्यिकीय उपकल्पना का अर्थ समझने के लिए यह आवश्यक है कि सांख्यिकीय जीवसंख्या का तात्पर्य समझा जाए। सांख्यिकीय जीव संख्या एक ऐसी जीवसंख्या है जो व्यक्तियों की भी हो सकती है या कुछ चीजों की भी हो सकती है। सांख्यिकीय जीवसंख्या की विशेषता यह है कि इसमें व्यक्तियों या चीजों के बारे में किये गये प्रेक्षणों को कुछ संख्यात्मक मात्राओं में बल दिया जाता है और तब उसके बारे में कोई निर्णय लिया जाता है। अब एक उदाहरण लें। मान लिया जाय कि शोधकर्ता समूह 'अ' तथा समूह 'ब' में उम्र अन्तरों का अध्ययन करना चाहता है। इसके लिए वह शोध उपकल्पना इस प्रकार विकसित कर सकता है, ''समूह अब समूह 'ब' से प्रौढ़ है।'' इस शोध उपकल्पना को सांख्यिकीय उपकल्पना में बदलने के लिए पहले शोधकर्ता को समूह 'अ' के सभी व्यक्तियों के उम्र का माध्य ज्ञात करना होगा तथा उसी ढंग से समूह 'ब' के सभी व्यक्तियों की उम्र का माध्य ज्ञात करना होगा। इसके बाद इन दोनों माध्यों की तुलना कर इस तथ्य पर पहुंचा जायेगा कि दोनों माध्यों में से कौन बड़ा है और किस समूह को प्रौढ़ माना जायेगा। इस तरह से स्पष्ट है कि सांख्यिकीय उपकल्पना शोध उपकल्पना का ही सांख्यिकीय पदों में एक परिवर्तित रूप को कहा जाता है। सांख्यिकीय उपकल्पना में सिर्फ शोध उपकल्पना को ही नहीं बल्कि नल उपकल्पना को भी सांख्यिकीय पदों में बदल दिया जाता है। जब शोध उपकल्पना तथा नल उपकल्पना को सांख्यिकीय उपकल्पना के रूप में व्यक्त

किया जाता है, तो विशेष संकेत का प्रयोग किया जाता है। शोध उपकल्पना के लिए H_1 तथा नल उपकल्पना के लिए H_0 का संकेत प्रयोग किया जाता है तथा माध्य के लिए μ प्रयोग किया जाता है।

यदि शोध उपकल्पना यह है कि ''समूह 'अ' समूह 'ब' से प्रौढ़ है'' तो इसकी सांख्यिकीय उपकल्पना के रूप में H_0 तथा H_1 की अभिव्यक्ति निम्न प्रकार से की जाती है -

$$H_0 : \mu_1 \leq \mu_2$$

$$H_1 : \mu_1 > \mu_2$$

स्पष्ट हुआ कि H_1 है ''समूह 'अ' का माध्य उम्र समूह 'ब' के माध्य उम्र से अधिक है'' तथा H_0 तथा ''समूह 'अ' का माध्य उम्र समूह 'ब' के माध्य उम्र के बराबर है या कम है''।

परन्तु यदि शोध उपकल्पना यह है कि समूह 'अ' तथा समह 'ब' के उम्र में अन्तर है तो इसे सांख्यिकीय उपकल्पना के रूप में बदलने पर H_0 तथा H_1 की अभिव्यक्ति अलग हो जायेगी। ऐसी परिस्थिति में H_0 तथा H_1 निम्न प्रकार से होगी-

$$H_0 : \mu_1 = \mu_2$$

$$H_1 : \mu_1 \neq \mu_2$$

स्पष्ट है कि H_1 है ''समूह 'अ' का माध्य उम्र समूह 'ब' के माध्य उम्र के बराबर नहीं है'' तथा H_0 है ''समूह 'अ' का माध्य उम्र समूह 'ब' के माध्य उम्र के बराबर है।''

इस तरह से हम देखते हैं कि शोध विशेषज्ञों ने शोध उपकल्पना का वर्गीकरण कई ढंगों से करके उसके स्वरूप की व्याख्या करने की कोशिश की है।

8.5 सारांश

- किसी शोध समस्या का एक प्रस्तावित जाँचने योग्य उत्तर ही उपकल्पना कहलाती है। यह किसी समस्या का एक अस्थायी समाधान है।
- उपकल्पना में चरों के बीच एक सामान्य या विशिष्ट सम्बन्धों की अभिव्यक्ति की जाती है।
- एक अच्छी उपकल्पना तीन महत्वपूर्ण कार्य करती है-पूर्व स्थापित सिद्धान्तों की जाँच, नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन तथा किसी घटना का वर्णन।

- शोध विशेषज्ञों ने उपकल्पना का वर्गीकरण तीन आधारों पर किया है-चरों की संख्या के आधार पर, चरों में विशेष सम्बन्ध के आधार पर तथा विशिष्ट उद्देश्य के आधार पर। चरों की संख्या के आधार पर उपकल्पना के दो प्रकार हैं- साधारण तथा जटिल; चरों में विशेष संबंध के आधार पर उपकल्पना को सार्वत्रिक एवं अस्तित्वात्मक नामक दो वर्गो में विभाजित किया गया है तथा विशिष्ट उद्देश्य के आधार पर उपकल्पना के तीन प्रकार बताये गए हैं- शोध उपकल्पना, नल उपकल्पना तथा सांख्यिकीय उपकल्पना।

8.6 शब्दावली

- **उपकल्पना:** दो या दो से अधिक चरों के बीच संभावित संबन्धों के बारे में बनाये गए जाँचनीय कथन को उपकल्पना कहते हैं।
- **शोध उपकल्पना:** वैसी उपकल्पना जो किसी घटना या तथ्य के लिए बनाये गए विशिष्ट सिद्धान्त से निकाली गई अनुमिति पर आधारित होती है।
- **वैकल्पिक उपकल्पना:** शोध उपकल्पना की संक्रियात्मक अभिव्यक्ति को वैकल्पिक उपकल्पना कहते हैं।
- **नल उपकल्पना:** वह उपकल्पना जिसके द्वारा हम चरों के बीच कोई अन्तर नहीं होने के सम्बन्ध का उल्लेख करते हैं।

8.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. उपकल्पना किसी समस्या का एक ..... उत्तर है। (वास्तविक/प्रस्तावित)
2. जिस उपकल्पना के चरों की संख्या मात्र दो होती है उसे कहते हैं .....उपकल्पना। (साधारण/जटिल)
3. ''लड़कियों में निर्भरता उन्मुखता लड़कों की तुलना में ज्यादा पाई जाती है।'' यह है एक ..... उपकल्पना है। (क्रियात्मक/दिशात्मक)

उत्तर: 1. प्रस्तावित 2. साधारण 3. दिशात्मक

8.8 संदर्भ-ग्रन्थ सूची

- अरूण कुमार सिंह (1998) मनोविज्ञान,समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल-बनारसीदास, दिल्ली।
- एच.के. कपिल (2001) अनुसंधान विधियां (व्यवहारपरक विज्ञानों में), एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।

- एफ.एन. करलिंगर (2002) फाउण्डेशन्स ऑफ विहैवियरल रिसर्च, हॉल्ट, रिनेहार्ट एवं विंसटन, इंक, न्यूयार्क।
- राम आहूजा (2009) रिसर्च मेथड्स, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर

8.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उपकल्पना को परिभाषित करें एवं इसकी विशेषताओं का उल्लेख करें।
2. शोध समस्या एवं शोध उपकल्पना में क्या अन्तर है? उपकल्पना के कुछ उदाहरण प्रस्तुत करें।
3. उपकल्पना से आप क्या समझते हैं? उपकल्पना निर्माण का उद्देश्य बतायें।
4. उपकल्पना के विभिन्न प्रकारों का उदाहरण के साथ विवेचन करें।
5. टिप्पणी लिखें-
    i. सांख्यिकीय उपकल्पना
    ii. शून्य उपकल्पना
    iii. अस्तित्वात्मक उपकल्पना

इकाई-9 उपकल्पना के स्त्रोत एवं एक अच्छी उपकल्पना की विशेषताएँ

(Sources of hypothesis, Characteristics of a Good Research Hypothesis)

इकाई संरचना

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 शोध समस्या की परिभाषा

9.3.1 समाज का सांस्कृतिक मूल्य

9.3.2 पूर्व में किए गए शोध

9.3.3 शोध-पुस्तकें, पत्रिकाएं, जर्नल, शोध-सार आदि

9.3.4 व्यक्तिगत अनुभव

9.3.5 विशेषज्ञों से वार्तालाप एवं विवेचन

9.3.6 सूझ या अचानक मिली प्रेरणा

9.3.7 अध्ययन में अनुरूपता

9.4 एक उत्तम उपकल्पना की विशेषताएँ

9.5 सारांश

9.6 शब्दावली

9.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

9.8 संदर्भ-ग्रन्थ सूची

9.9 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने उपकल्पना का अर्थ, उसकी विशेषता एवं उसके विभिन्न प्रकारों का अध्ययन किया। शोध समस्या एवं शोध उपकल्पना में अन्तर स्पष्ट करना एवं विभिन्न प्रकार की उपकल्पनाओं का निर्माण करना आप जान चुके हैं।

प्रस्तुत इकाई में आप उपकल्पना के विभिन्न स्रोतों का अध्ययन कर पायेंगे, साथ-ही यह भी जान पायेंगे कि एक उत्तम उपकल्पना की कौन-कौन सी विशेषताएँ होती हैं।

इस इकाई के अध्ययन से आपको यह फायदा होगा कि आप किसी शोध समस्या के समाधान हेतु एक उत्तम उपकल्पना का निर्माण करने की दिशा में उपकल्पना के विभिन्न स्रोतों की जांच-पड़ताल करने के लायक हो जायेंगे।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप इस योग्य हो जायेंगे कि आप -

- उपकल्पना के विभिन्न स्रोतों को वर्गीकृत कर सकें।
- समस्या के परिप्रेक्ष्य में उपकल्पना निर्माण हेतु सही स्रोत की तलाश कर सकें।
- उत्तम शोध उपकल्पना का निर्माण करने में सक्षम हो सकें तथा
- एक उत्तम शोध उपकल्पना की विशेषताओं को रेखांकित कर सकें।

9.3 उपकल्पना के स्रोत

विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई विभिन्न परिभाषाओं एवं उसके विश्लेषण से यह तो स्पष्ट है कि उपकल्पना दो या दो से अधिक चरों के बीच. संभावित सबंधों के बारे में बनाया गया जांचनीय कथन है। इसका निर्माण प्रयोगात्मक या अप्रयोगात्मक किसी भी प्रकार के शोध में समस्या के प्रस्तावित उत्तर के रूप में किया जाता है। यह साधारण, जटिल, साव्रत्रिक, अस्तत्वात्मक, वैकल्पिक, निराकरणीय या सांख्यिकीय रूप की हो सकती है। रूप इसका जो भी हो, परन्तु उपकल्पना का उद्देश्य सिद्धान्तों की जांच करना, नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना, चरों के सांख्यिकीय विश्लेषण को बढ़ावा देना, शोध को सही दिशा देना, किसी घटना का वर्णन करना आदि होता है। अब सवाल यह उठता है कि किसी समस्या समाधान हेतु जो उपकल्पना निर्मित की जाती है उसका स्रोत क्या है? यानी, उपकल्पना निर्माण में सहायक तत्व या एजेंन्सी कौन-कौन से हैं, जो एक शोधकर्ता को विभिन्न प्रकार की उपकल्पनाओं का निर्माण करने हेतु सूझ या अन्तर्दृष्टि प्रदान करते हैं। इस सम्बन्ध में विद्वानों, शोधकर्ताओं, विशेषज्ञों आदि ने निम्नलिखित महत्वपूर्ण स्रोतों की चर्चा की है जो किसी उपकल्पना के निर्माण में सहायक होते हैं-

(i) समाज का सांस्कृतिक मूल्य
(ii) पूर्व में किये गये शोध
(iii) शोध-पुस्तकें, पत्रिकाऐं, जर्नल शोधसार आदि

(iv) व्यक्तिगत अनुभव

(v) विशेषज्ञों से वार्तालाप एवं विवेचन

(vi) सूझ या अचानक मिली प्रेरणा

(vii) अध्ययन में अनुरूपता

9.3.1 समाज का सांस्कृतिक मूल्य -

हर समाज का अपना-अपना सांस्कृतिक मूल्य होता है। अमरीकी संस्कृति में जहाँ वैयक्तिकता, गतिशीलता, प्ररतिस्पर्धा एवं समानता पर बल दिया जाता है, वहीं भारतीय संस्कृति में परम्परा, सामूहिकता, कर्म एवं असंलग्नता पर बल दिया जाता है। अतः यदि कोई शोधकर्ता अमरीकी संस्कृति का अध्ययन करना चाहता है तो उसे वहां के मूल्यों के सापेक्ष उपकल्पना का निर्माण करना होगा और यदि भारतीय संस्कृति का अध्ययन करना चाहता है तो यहाँ के सांस्कृतिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में उपकल्पवना का निर्माण करना होगा। भारतीय संस्कृति के अध्ययन से सम्बद्ध उपकल्पना हो सकती है कि ''भारत में मतदान व्यवहार का सम्बन्ध मतदाताओं की जाति से है।

9.3.2 पूर्व में किए गए शोध -

उपकल्पना के निर्माण में पूर्व में किए गए शोधों से प्रेरणा मिलती है। पूर्व के शोधों के परिणामों के गहन अध्ययन से कभी-कभी उनमें परिकल्पना सम्बन्धी, विश्लेषण सम्बन्धी, अनुमान सम्बन्धी तथा सामान्यीकरण से सम्बद्ध कुछ ऐसी कमियां मिलती हैं कि उनके आधार पर नवीन उपकल्पना की रचना कर उसकी जांच की जा सकती है। उदाहरणस्वरूप, यदि एक शोधकर्ता छात्र-उपद्रव का अध्ययन कर रहा है और पूर्व के शोधों में एक रिक्तता मिलती है, तो वह यह उपकल्पना बना सकता है कि ''महाविद्यालय या विश्वविद्यालय में दो या तीन वर्ष से अधिक अवधि से अध्ययनरत छात्र प्रथम वर्ष के छात्रों की तुलना में छात्र-समस्या के प्रति ज्यादा अभिरूचि प्रदर्शित करते हैं।'' इसके अतिरिक्त, वह इस प्रकार की उपकल्पना भी निर्मित कर सकता है। कि ''ऊँची योग्यता एवं ऊँची सामाजिक प्रतिष्ठता वाले छात्र निम्न योग्यता एवं सामाजिक प्रतिष्ठा वाले छात्रों की तुलना में छात्र उपद्रव या विरोध में कम सहभागिता करते हैं।''

9.3.3 शोध पुस्तकें, पत्रिकाएं, जर्नल, शोध-सार आदि -

आजकल ज्ञान के हर क्षेत्र में शोध से सम्बन्धित साहित्य बिखरे पड़े हैं। शोध जर्नल हैं, शोध के विषय में सम्बद्ध पीरिऑडिकल्स हैं, आवस्ट्रैक्ट हैं, इन्टरनेट पर साहित्य उपलब्ध हैं। समस्या से सम्बन्धित सहित्य का अध्ययन करने से शोधकता को नवीन सम्बन्धों एवं तथ्यों की व्यापक जानकारी उपलब्ध होती है और इससे उपकल्पना के निर्माण में सुविधा होती है। मनोविज्ञान में अमेरिकन मनोवैज्ञानिक संघ द्वारा ''अमेरिकन साइकोलॉजिकल

आबस्ट्रैक्ट'' का प्रकाशन होता है। इंडिया में ''इंडियन साइकोलॉजिकल आबस्ट्रैक्ट'' प्रकाशित होता है। देश-विदेश में अलग-अलग ''साइकोलॉजिक आबस्ट्रैक्ट'' एवं विषय से सम्बद्ध जर्नल प्रकाशित होते हैं। इन आबस्ट्रैक्ट एवं जर्नल के अध्ययन से शोधकर्ता को उपकल्पना निर्मित करने में सहायता मिलती है।

9.3.4 व्यक्तिगत अनुभव -

शोधकर्ता प्रायः सामान्य घटनाओं को एक नवीन दृष्टिकोण से देखता है। उसके निरीक्षण में प्रायः एक नवीन रचनात्मक शक्ति, तर्क शक्ति व अन्तर्दृष्टि रहती है। न्यूटन द्वारा फल को गिरते देखकर उत्पन्न सूझ, डार्विन का जीवों के बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों की सूझ आदि शोधकर्ता के व्यक्तिगत अनुभव से सम्बद्ध थे और इस अनुभव के नवीन उपकल्पनाओं को जन्म दिया, नवीन सिद्धान्तों की स्थापना में सहायक हुआ।

9.3.5 विशेषज्ञों से वार्तालाप एवं विवेचन -

कभी-कभी शोधकर्ता को उपकल्पना निर्माण में विषय विशेषज्ञों से भी सहायता लेनी पड़ती है। किसी विषय के जो अधिकृत व्यक्ति होते हैं या विश्वविद्यालयों के जो प्रोफेसर होते हैं उनसे वार्तालाप करके तथा समस्या पर विवेचन करके शोधकर्ता उपकल्पना का निर्माण कर सकता है। विषय-विशेषज्ञ से मार्दर्शन प्राप्त कर लेने पर समस्या समाधान की दिशा में अग्रसर होने एवं एक उपयुक्त उपकल्पना के निर्माण में शोधकर्ता को सहुलियत होती है।

9.3.6 सूझ या अचानक मिली प्रेरणा -

यदि शोधकर्ता किसी शोध समस्या को हल करना चाहता है और अपने चिन्तन-मनन के द्वारा समाधान में लगा हुआ है तो कभी-कभी उसे अचानक प्रेरणा मिलती है और वह समस्या समाधान का प्रस्तावित उत्तर तलाश कर शोध को दिशा प्रदान करता है। ऐसा प्रायः अन्वेषी प्रयोग में देखने को मिलता है। न्यूटन के प्रयोग, आर्किमिडीज के प्रयोग अचानक मिली प्रेरणा या सूझ पर आधारित थे।

9.3.7 अध्ययन में अनुरूपता -

कभी-कभी तुलनात्मक अध्ययन से भी उपकल्पना की रचना में सहायता मिलती है। जैसे-पशु-पक्षियों के व्यवहार के अध्ययन से मानव-व्यवहार की व्याख्या के लिए नये आधारों की खोज करना एक प्रकार से नवीन उपकल्पनाओं की ही खोज करना है। मेडिकल साइंस, मनोविज्ञान आदि में आज भी बड़े पैमाने पर जानवरों, पक्षियों पर शोध करके उसे मानव प्राणि पर लागू करने में इसी अनुरूपता के आधार पर उपकल्पनाओं का निर्माण किया जाता है।

9.4 एक उत्तम उपकल्पना की विशेषताएँ

जब कोई शोधकर्ता किसी शोध समस्या का प्रतिपादन कर उसका समाधान करने के लिए अगे बढ़ता है, तो उसके मन में समाधान के रूप में कई तरह के अस्थायी प्रस्ताव आते हैं। दूसरे शब्दों में, शोधकर्ता के मन में कई तरह के उपकल्पनाएं बनती हैं। प्रश्न यह उठता है कि इन उपकल्पनाओं में कौन अच्छा है और कौन अच्छा नहीं है, इसका निर्णय शोधकर्ता कैसे करेगा? मनोवैज्ञानिकों ने इस तथ्य को महत्वपूर्ण समझकर उस पर एक जुट होकर प्रकाश डाला है और बतलाया है कि अच्छे शोध उपकल्पना की पहचान उसकी कुछ कसौटियों या विशेषताओं के आधार पर की जा सकती है जो निम्नांकित हैं -

1) उपकल्पना को जांचनीय होना चाहिए- एक अच्छी शोध उपकल्पना की पहचान यह है कि उसका प्रतिपादन इस ढंग से किया जाना संभव हो कि उसकी जांच करने के बाद यह निश्चित रूप से कहा जा सके कि वह संभवतः सही है या संभवतः गलत है। इसके लिए यह आवश्यक है कि उपकल्पना की अभिव्यक्ति विस्तृत ढंग से नहीं बल्कि विशिष्ट ढंग से किया जाना चाहिए। विस्तृत उपकल्पना प्रभावशाली तथा आकर्षक भले ही लगे, परन्तु उसकी जांच चूंकि ठीक ढंग से नहीं की जा सकती है, अतः वह एक अच्छी उपकल्पना नहीं हो सकती है। जांचनीय उपकल्पना से तात्पर्य वैसी उपकल्पना से होता है जिसे यह विश्वास के साथ कहा जाय कि वह सही है या गलत है। मैकग्यूगन (1990) ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा है, ''एक उपकल्पना जिसे एक प्रस्ताव के रूप में व्यक्त किया जाता है, को यदि यह निर्धारित करना संभव है कि वह सही या गलत है, तो वह जांचनीय मानी जाती है। अगर यह निर्धारित करना संभव नहीं है कि प्रस्ताव सही है या गलत तो उपकल्पना को जांचनीय नहीं माना जाता है और उसे विज्ञान के लिए गुणरहित समझकर छांट दिया जाता है।''

2) अन्य उपकल्पनाओं के साथ तालमेल होना चाहिए- यदि शोधकर्ता द्वारा तैयार की गई उपकल्पना क्षेत्र की अन्य उपकल्पनाओं के अनुकूल हो, तो इसे एक अच्छी उपकल्पना समझा जाता है। हालांकि इस ढंग की अनुकूलता कोई आवश्यक नहीं है, परन्तु यदि उपकल्पना क्षेत्र के अन्य ज्ञानों एवं उपकल्पनाओं के विरोधी न होकर उनके अनुकूल होती है, तो उसे एक अच्छी उपकल्पना निश्चित रूप से माना जाता है। उदाहरणार्थ, यदि कोई शोधकर्ता यह उपकल्पना तैयार करता है कि धनात्मक पुनर्वलन से सीखने की प्रक्रिया में बाधा पहुंचती है तो यह एक ऐसी उपकल्पना का उदाहरण होगा जो अपने क्षेत्र में अन्य उपकल्पनाओं तथा ज्ञान भंडार के विरोधी होगा और इसे एक उत्तम उपकल्पना की श्रेणी में नहीं रखा जायेगा।

3) उपकल्पना को मितव्ययी होना चाहिए- एक अच्छी उपकल्पना को मितव्ययी भी होना चाहिए। एक ही शोध समस्या के समाधान के लिए कई उपकल्पनाएं तैयार की जा सकती हैं। इनमें से जो सबसे मितव्ययी हो, उसे अच्छा समझकर हमें चुन लेना चाहिए। उपकल्पना में मितव्ययिता से तात्पर्य इस बात से होता है कि उसका

स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिसकी जांच करने में कम-से-कम समय एवं धन की जरूरत हो तथा अधिक-से-अधिक सुविधा प्राप्त हो। कुछ उपकल्पना ऐसी होती हैं जिनकी जांच करना मात्र इसलिए संभव नहीं हो पाता है कि उसमें अधिक समय, श्रम, धन आदि की जरूरत होती है और साथ-ही-साथ अनेकों तरह की कठिनाइयां सामने आ जाती हैं। इस तरह की उपकल्पना को एक अच्छी प्राक्कल्पना की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है।

4) तार्किक पूर्णता तथा व्यापकता का गुण होना चाहिए - उपकल्पना की यह विशेषता बहुत हद तक मितव्ययिता की विशेषता से संबंधित है। मनोवैज्ञानिक शोध तथा शैक्षिक शोध में कुछ उपकल्पना तो ऐसे होते हें जिनसे शोध समस्या का एक पर्याप्त उत्तर सीधे मिल जाता है क्योंकि वह अपने-आप में तार्किक रूप से काफी व्यापक एवं पूर्ण होता है। परन्तु, कुछ उपकल्पना ऐसी होती है जिनसे शोध समस्या का उत्तर तभी मिल पाता है जब अन्य कई उपकल्पनाएं तथा तदर्थ पूर्वकल्पनाएं न तैयार कर लिए गये हों। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि उनमें तार्किक पूर्णता एवं व्यापकता के आधार के अभाव होते हैं जिसक कारण वे स्वयं कुछ नयी समस्याओं को जन्म दे देते हैं और उनके लिए उपकल्पना तथा तदर्थ पूर्वकल्पना तैयार कर लिया जाना आवश्यक हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में हम ऐसी अपूर्ण उपकल्पना की जगह पर पहले तरह की उपकल्पना जिसमें तार्किक पूर्णता एवं व्यापकता होती है, का ही चयन करते हैं।

5) अध्ययन क्षेत्र के मौजूदा सिद्धान्त एवं तथ्यों से संबंधित होना चाहिए- किसी उपकल्पना को एक उत्तम उपकल्पना कहलाने के लिए यह भी आवश्यक है कि उसे एक क्षेत्र के मौजूदा किसी सिद्धान्त एवं तथ्य से संबंधित होना चाहिए। कभी-कभी ऐसा होता है कि शोधकर्ता एक ऐसी उपकल्पना विकसित कर लेता है जो उसे काफी दिलचस्प दीख पड़ती है परन्तु वह किसी सिद्धान्त या तथ्य से संबंधित नहीं होती है। इस तरह की उपकल्पना एक रूचिकर उपकल्पना भले ही हो परन्तु वैज्ञानिक रूप से एक उत्तम उपकल्पना नहीं हो सकती। जैसे, यदि कोई शोधकर्ता यह उपकल्पना तैयार करता है कि शरीर के रंग (गोरा, काला, सांवला आदि) में विभिन्नता होने से व्यक्ति की बुद्धि में परिवर्तन होता है, तो शोधकर्ता के लिए यह एक रूचिकर उपकल्पना भले ही हो, परन्तु इसे वैज्ञानिक रूप में एक उत्तम उपकल्पना नहीं माना जा सकता है क्योंकि कोई सिद्धान्त या मॉडल मनोविज्ञान का ऐसा नहीं है जिसमें ऐसी बात कही गयी हो।

6) उपकल्पना से अधिक-से-अधिक अनुमिति किया जाना संभव होना चाहिए सामान्य तथा उसका स्वरूप होना चाहिए- एक अच्छी उपकल्पना की यह भी एक विशेषता है कि उसका स्वरूप बिल्कुल विशिष्ट न होकर कुछ सामान्य होना चाहिए हालांकि बहुत अधिक सामान्य तथा बहुत अधिक विशिष्ट दोनों ही तरह की उपकल्पना उत्तम नहीं मानी जाती हैं। यदि उपकल्पना बीचों-बीच की है तो इसे उत्तम माना जाता है क्योंकि इससे अधिकतम यथार्थ अनुमिति प्राप्त हो जाती है जिससे एक ही साथ और एक ही बारी में कई तथ्यों की व्याख्या संभव हो पाती है। इस तरह की उपकल्पनाओं को बहुत अधिक सामान्य तथा बहुत

अधिक विशिष्ट उपकल्पनाओं की तुलना में उत्तम माना जाता है। मैकग्यूगन (1990) ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा है, ''सामान्य रूप से वैसी उपकल्पनाएं जिनसे बहुत से महत्वपूर्ण अनुमितियां की जाती हैं, अधिक गुणकारी उपकल्पना मानी जाती है।''

7) उपकल्पना को उपलब्ध वैज्ञानिक परीक्षणों एवं उपकरणों से संबंधित होना चाहिए- एक अच्छी शोध उपकल्पना को क्षेत्र में उपलब्ध वैज्ञानिक परीक्षणों से संबंधित होना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, उपकल्पना में प्रस्तावित चर ऐसे हों जिनके मापने के लिए मनोवैज्ञानिकों के पास साधन उपलब्ध हो। यदि ऐसा नहीं होता, तो फिर उस उपकल्पना में प्रस्तावित चरों की माप नहीं की जा सकती है और तब उपकल्पना की सत्यता की भी जांच संभव नहीं हो पायेगी। इस तरह की उपकल्पना को वैज्ञानिक घोषित कर दिया जाता है।

8) उपकल्पना को संप्रत्ययात्मक रूप से स्पष्ट होना चाहिए- शोध उपकल्पना को संप्रत्ययात्मक रूप से स्पष्ट होना चाहिए। संप्रत्यात्मक रूप से स्पष्ट होने का मतलब यह है कि उपकल्पना में व्यवहृत संप्रत्यय वस्तुनिष्ठ ढंग से परिभाषित हो तथा परिभाषा ऐसी हो जिससे कुछ स्पष्ट अर्थ निकलता हो तथा वह अधिकतर लोगों को मान्य हो। परिभाषा तथा व्याख्या ऐसी नहीं हो जिसे शोधकर्ता की व्यक्तिगत दुनिया की उपज कहा जा सके तथा जिसका अर्थ सिर्फ वही समझता हो।

इस तरह से हम देखते हैं कि शोध मनोवैज्ञानिकों ने शोध उपकल्पना की कुछ ऐसी कसौटियों या विशेषताओं का वर्णन किया है जिनके आधार पर एक अच्छी शोध उपकल्पना की पहचान की जा सकती है।

9.5 सारांश

- उपकल्पना निर्माण में निम्नलिखित स्रोत सहायक होते हैं- समाज का सांस्कृतिक मूल्य; पूर्व में किए गए शोध; शोध-पुस्तकें, पत्रिकाएं, जर्नल, शोध-सार आदि, व्यक्तिगत अनुभव; विशेषज्ञों से वार्तालाप एवं विवेचन, सूझ या अचानक मिली प्रेरणा; अध्ययन में अनुरूपता।
- एक उत्तम शोध उपकल्पना की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं- (1) उपकल्पना को जाँचनीय होना चाहिए। (2) अन्य उपकल्पनाओं के साथ ताल-मेल होना चाहिए। (3) मितव्ययी होना चाहिए, (4) उसमें तार्किक पूर्णता एवं व्यापकता का गुण होना चाहिए, (5) उपकल्पना को अध्ययन क्षेत्र के मौजूदा सिद्धान्त एवं तथ्यों से सम्बन्धित होना चाहिए, (6) उपकल्पना से अधिक-से-अधिक अनुमिति किया जाना संभव होना चाहिए और उसका स्वरूप सामान्य होना चाहिए, (7) इसे उपलब्ध वैज्ञानिक परीक्षणों एवं उपकरणों से सम्बन्धित होना चाहिए तथा (8) उपकल्पना को संप्रत्ययात्मक रूप से स्पष्ट होना चाहिए।

9.6 शब्दावली

- **सांस्कृतिक मूल्य**: वह मूल्य जिसके कारण कोई समाज अपनी पहचान बनाता है, जिन विशेषताओं के आधार पर वह जाना जाता है, उसे सांस्कृतिक मूल्य कहते हैं।

9.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

2) निम्नलिखित में से कौन एक उपकल्पना का स्रोता नहीं है?

(क) शोध - जर्नल (ख) व्यक्तिगत अनुभव

(ग) व्यक्ति का स्वास्थ्य (घ) पूर्व शोध

3) निम्नलिखित में से कौन सा कथन सत्य है कौन असत्य?

(क) एक अच्छी उपकल्पना जांचने योग्य होनी चाहिए।

(ख) उपकल्पना में तार्किक पूर्णता एवं व्यापकता का गुण होना चाहिए।

(ग) उपकल्पना को क्षेत्र के मौजूदा सिद्धान्त एवं तथ्यों से सम्बन्धित नहीं होना चाहिए।

(घ) उपकल्पना को संप्रत्ययात्मक रूप से अस्पष्ट होना चाहिए।

उत्तर: 1.(ग) व्यक्ति का स्वास्थ्य 2. क)सत्य ख) सत्य ग)असत्य घ)असत्य

9.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- अरूण कुमार सिंह (1998) मनोविज्ञान,समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल-बनारसीदास, दिल्ली।
- एच.के. कपिल (2001) अनुसंधान विधियां (व्यवहारपरक विज्ञानों में), एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।
- एफ.एन. करलिंगर (2002) फाउण्डेशन्स ऑफ विहैवियरल रिसर्च, हॉल्ट, रिनेहार्ट एवं विंसटन, इंक, न्यूयार्क।
- राम आहूजा (2009) रिसर्च मेथड्स, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर

9.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. शोध उपकल्पना के विभिन्न स्रोतों का वर्णन करें।
2. एक अच्छी उपकल्पना की कौन-कौन सी विशेषताएँ हैं। उदाहरण सहित बतायें।

इकाई-10 एक अच्छे प्रतिदर्शन का अर्थ, विशेषता, आकार एवं विश्वसनीयता

(Meaning, characteristics, size and reliability of a good sample)

इकाई संरचना

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 प्रतिदर्श का अर्थ

10.4 अच्छे प्रतिदर्श की विशेषताएँ

10.5 प्रतिदर्श आकार

10.6 प्रतिदर्श की विश्वसनीयता

10.7 सारांश

10.8 शब्दावली

10.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.11 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

व्यवहारपरक शोध हो चाहे प्रयोगात्मक या अप्रयोगात्मक उसमें समष्टि एवं उससे चुने गए प्रतिदर्श का विशेष महत्व होता है। यह समष्टि पहले से परिभाषित कर ली जाती है और उसमें से ही अनुसंधान में अध्ययन किए जाने वाले व्यक्तियों या सदस्यों का चयन किया जाता है, जिसे प्रतिदर्श कहा जाता है। प्रतिदर्श की अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं। एक निश्चित संख्या में शोध में समष्टि से प्रतिदर्शों का चयन भी किया जाता है। चुने गुए प्रतिदर्शों में प्रतिनिधिक गुण होता है, जो समष्टि का अच्छा प्रतिनिधित्व करता है। प्रतिदर्श प्रतिनिधिक हो इसलिए पूर्वाग्रह से रहित होकर उनका चयन किया जाना चाहिए। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि समष्टि भी अच्छी तरह से परिभाषित हो । इस इकाई में प्रतिदर्श क्या है, इसकी निशेषताओं एवं विश्वसनीयता तथा इसके आकार के विषय में वर्णन किया गया है।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप कर सकेंगे:

- प्रतिदर्श क्या है तथा उसकी विशेषताओं का वर्णन करें,
- प्रतिदर्श की विश्वसनीयता का उल्लेख करें।
- प्रतिदर्श की संख्या या आकार की व्याख्या करें।

10.3 प्रतिदर्श का अर्थ

अनुसंधान पद्धति में समष्टि प्रतिदर्श एवं प्रतिदर्श इकाई तकनीकी पद है। इनका अनुसंधान में उपयोग विशेष अर्थों में किया जाता है।

अनुसंधान पद्धति में, समष्टि एवं जनसंख्या शब्द एक दूसरे के पर्याय के रूप में प्रयुक्त किए जाते हैं। वस्तुओं, व्यक्तियों या घटनाओं के उस सम्पूर्णता या संघात को समष्टि कहा जाता है जिसके बारे में उसके कुछ व्यक्तियों, घटनाओं या पदार्थों को प्रतिदर्श के रूप में लेकर तथ्य संग्रह किया जाता है और उन तथ्यों के आधार पर उस सम्पूर्ण संघात के बारे में अनुमान लगाया जाता है। समष्टि को परिभाषित करने के लिए कई आधार हो सकते हैं जैसे- आयु, सेक्स, शिक्षा, जाति, वर्ण, क्षेत्र आदि। समष्टि चाहे जिस प्रकार की हो परिमित या अपरिमित हो सकती है। अनुसंधानकर्ता समष्टि को अपने ढंग से परिभाषित कर सकता है। वह चाहे तो एक महाविद्यालय में स्नातक कक्षाओं में पढ़ने वाले छात्रों को ले सकता है और उससे प्रतिदर्श लेकर वर्णनात्मक अध्ययन कर सकता है।

समष्टि चाहे कितनी भी परिमित हो व्यावहारिक स्तर पर इसके समस्त सदस्यों का प्रेक्षण और मापन किसी भी अनुसंधान में सम्भव नहीं होता है। अतः शोधकर्ता समष्टि से कुछ सदस्यों के प्रतिदर्श के रूप में चयन करता है और उसी प्रतिदर्श का अध्ययन करता है। प्रतिदर्श किसी समष्टि से लिए गए व्यक्तियों, पदार्थो, घटनाओं या अनुक्रियाओं का वह समुच्चय या समूह है जिनका चुनाव समष्टि का पूर्ण प्रतिनिधित्व करने वाले समूह के रूप में किया जाता है। प्रतिदर्श सदस्यों या इकाइयों का वह उप समूह है जिसका चयन किसी समष्टि से किसी उपयुक्त विधि द्वारा किया जाता है। विधि की उपयुक्तता पर ही प्रतिदर्श का प्रतिनिधिक होना आश्रित होता है। प्रतिदर्श को कहा जाता है कि यह समष्टि का एक अंश होता है। पी0 वी0 यंग के अनुसार- *एक प्रतिदर्श अपने समस्त समूह का लघुचित्र होता है।*

प्रतिदर्श केवल व्यक्तियों को लेकर ही नहीं बल्कि घटनाओं, विभिन्न परीक्षाणों, व्यवहारों, प्रेक्षणों या किसी भी प्रकार की इकाइयों को लेकर बनाये जा सकते हैं। प्रतिदर्श की संख्या कोई भी हो सकती है। प्रतिदर्श

की संख्या जितनी होती है उसमें उतनी इकाइयां होती हैं। प्रतिदर्श में संख्या का निर्धारण अनेक आधारों पर किया जाता है। इतना अवश्य ध्यान रखा जाता है कि प्रतिदर्श की इकाइयों की संख्या उतनी अवश्य हो जो समष्टि का प्रतिनिध्यात्मक होने के लिए आवश्यक है। प्रतिदर्श का इसलिए किसी अनुसंधान में महत्व होता है कि उनके आधार पर किसी समष्टि में पाये जाने वाले गोचरों या चरों के बारे में सामान्यीकरण किया जाता है। प्रतिदर्श का चयन भी इसलिए किया जाता है और चयन की विशेष प्रक्रिया का उपयोग कर उसे समष्टि का प्रतिनिध्यात्मक रूप दिया जाता है, जिससे उसका अध्ययन कर समष्टि के बारे में जानकारी की जा सके।

समष्टि या प्रतिदर्श का गठन विभिन्न प्रकार की इकाइयों से होता है। समष्टि को अक्सर अनेक भागों में विभक्त कर देते हैं, जिसे समष्टि का भाग या वर्ग कहा जाता है। प्रत्येक भाग में एक या एक से अधिक इकाइयाँ हो सकती हैं। कोई भी इकाई एक से अधिक भाग में शामिल नहीं हो सकती है। ऐसी ही इकाइयों से बने भागों या संघात को समष्टि या जनसंख्या कहा जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि सामाजिक विज्ञानों में प्रतिदर्श इकाई का प्रेक्षण कर प्रदत्त प्राप्त किया जाता है। इन्हीं प्रतिदर्श प्राप्तांकों के आधार पर समष्टि के सम्बन्ध में सामान्यीकरण किया जाता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रतिदर्श की विशेषताओं का मापन कर समष्टि की विशेषताओं का अनुमान किया जाता है। इस प्रकार अध्ययन की जाने वाली विशेषताओं के माप समष्टि में भी रहते हैं और प्रतिदर्श में भी। समष्टि मानों को प्राचल का नाम तथा प्रतिदर्श मानों को आकल का नाम दिया जाता है प्राचल गुण धर्म का वह मान है जिसमें समष्टि का वर्णन होता है तथा आकल प्रतिदर्श का वह मान है जिससे प्रतिदर्श के गुण धर्म का वर्णन होता है और आकल को प्राचल का वर्णन करने के लिए ज्ञात किया जाता है। प्राचल एवं आकल में सर्वदा विभिन्नता होती है। आकल एवं प्राचल की इस भिन्नता को ही प्रतिदर्श चयन की त्रुटि कहा जाता है। यह प्रतिदर्श चयन त्रुटि = प्राचल त्रुटि - आकल के बराबर होती है।

10.4 उच्च प्रतिदर्श की विशेषताएँ

एक अच्छे प्रतिदर्श में निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं –

1- प्रतिदर्श में प्रतिनिधिक गुण होते हैं।

2- प्रतिदर्श में वे सभी गुण होते हैं जो उसके समष्टि के सभी सदस्यों में होते हैं।

3- प्रतिदर्श में संख्या कम रहने से गहन अध्ययन सम्भव होता है।

4- अच्छे प्रतिदर्शों के कारण समय एवं धन की बचत होती है।

5- प्रतिदर्श प्रतिनिधिक हो इसलिए आवश्यक होता है कि इनका चयन पूर्वाग्रह से रहित हो।

6- प्रतिदर्श चुने हुए व्यक्तियों या वस्तुओं की संख्या ऐसी होती है जो पूरे समष्टि का अच्छा प्रतिनिधित्व करता है ।

7- एक अच्छे प्रतिदर्श के लिए यह भी आवश्यक है कि समष्टि अच्छी प्रकार से परिभाषित हो ।

8- अच्छे प्रतिदर्श के लिए यह भी आवश्यक है कि प्रतिदर्शन की किसी उपयुक्त विधि के द्वारा इनका चयन हो ।

9- प्रतिदर्श एक निश्चित संख्या में समष्टि से चयन किया गया सदस्यों का एक समूह होता है ।

10- समष्टि की सजातीयता हो ।

11- जब प्रतिदर्श का स्वरूप प्रसम्भाव्यता सिद्धान्त पर आधारित रहता है तब निष्कर्ष सही प्राप्त होने की सम्भावना अधिक रहती है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि एक उत्तम प्रकार के प्रतिदर्श का आधार यादृच्छिक होना चाहिए ।

10.5 प्रतिदर्श का आकार

प्रतिदर्श के आकार से तात्पर्य है समष्टि से यादृच्छिक ढंग से चुनी गई इकाइयों की संख्या से है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि किसी भी अध्ययन में समष्टि से चुने गए सदस्य जैसे- छात्रों की संख्या, परिवारों की संख्या जिससे हम समस्त जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं उसे प्रतिदर्श आकार कहा जाता है। प्रतिदर्श में इकाइयों के संख्या के निर्धारण में अनेक बातें विचारणीय होती हैं । इसका एक प्रमुख निर्धारक है, अध्ययन किए जाने वाले गोचर की समष्टि में पाये जाने वाली विचरणशीलता। जब अध्ययन किया जाने वाला गोचर अपेक्षाकृत अधिक विचरणशील है तो प्रतिदर्श की संख्या जितनी बड़ी होगी उतना ही अच्छा माना जायेगा । जब समष्टि में कम विचरणशीलता होगी तब कम संख्या वाला प्रतिदर्श ही अच्छा होगा । यदि गोचर में विचरणशीलता की मात्रा शून्य है तो प्रतिदर्श में मात्र एक इकाई ही पर्याप्त होगी । वैसे मनोविज्ञान में अध्ययन किए जाने वाले गोचरों में बहुविचरणशीलता पाई जाती है। इसीलिए सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्धित अध्ययनों में बड़ी संख्या वाला प्रतिदर्श अधिक उपयुक्त माना जाता है। प्रतिदर्श में इकाइयों की संख्या अध्ययनों में किए जाने वाले गोचरों की उपलब्धता पर भी निर्भर करती है। अध्ययन किए जाने वाला गोचर जितना ही दुर्बल होता है उतने ही बड़ प्रतिदर्श की जरूरत होती है। अनुसंधान में प्रतिदर्श की संख्या इस बात पर भी निर्भर करती है कि किस प्रकार का अनुसंधान किया जा रहा है तथा अनुसंधान का उद्देश्य क्या है। स्तरित प्रतिदर्श में प्रतिदर्श की संख्या का निर्धारण विभिन्न स्तरों पर अध्ययन किए जाने वाले गोचरों में कितनी भिन्नता है इस बात पर भी प्रतिदर्श की संख्या का निर्धारण होता है। यदि भिन्नता कम है तो दोनों स्तरों से बड़ी संख्या वाले प्रतिदर्श का होना आवश्यक है। सामान्यतया यह माना जाता है कि यादृच्छिक प्रतिदर्श का आकर जितना बड़ा होता है उससे प्राप्त होने वाले

परिणाम भी उतने ही विश्वसनीय होते हैं। अनुसंधान का अभिकल्प भी प्रतिदर्श के आकार को निर्धारित करता है ।

10.6 प्रतिदर्श की विश्वसनीयता

प्रतिदर्शन के द्वारा प्रतिदर्श को अपनी समष्टि का प्रतिनिधि बनाया जाता है। प्रतिचयन विधि के उपयोग का वैज्ञानिक आधार होता है। जब सांख्यिकीय निरन्तरता तथा व्यापक संख्याओं के स्थिरता के नियमों का पालन करके प्रतिदर्श का चयन किया जाता है तब प्रतिदर्श की विश्वसनीयता बढ़ जाती है। प्रतिदर्श सजातीय समष्टि से सम्बन्धित होने पर भी प्रतिदर्श की विश्वसनीयता बढ़ती है। एक उत्तम या विश्वसनीय प्रतिदर्श वही होता है जब उससे प्राप्त परिणामों की विश्वसनीयता का स्तर उच्च वैज्ञानिक श्रेणी का हो। एक अच्छे एवं विश्वसनीय प्रतिदर्श के लिए यह भी आवश्यक है कि समय एवं धन के दृष्टिकोण से भी अल्पव्ययी हो।

10.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके हैं कि प्रतिदर्श क्या होता है। प्रतिदर्श समष्टि या जनसंख्या का लघुरूप होता है जो समष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। प्रतिदर्श की अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं। एक उत्तम प्रतिदर्श के लिए यह आवश्यक होता है कि उसका स्वरूप प्रतिनिध्यात्मक हो, प्रसम्भाव्यता सिद्धान्त पर आधारित हो, संख्या पर्याप्त हो, समय एवं धन की बचत हो। प्रतिदर्श सजातीय समष्टि से हो इत्यादि। इसमें प्रतिदर्श के आकार से तात्पर्य है समष्टि से यादृच्छिक ढंग से चुनी गई इकाइयों की संख्या से है। प्रतिदर्श में संख्या के निर्धारण में अनेक बातें विचारणीय होती हैं। प्रतिदर्श की विश्वसनीयता से तात्पर्य है कि जिन प्रतिदर्शो को समष्टि से चयनित किया गया है क्या इनके चयन में उचित प्रतिदर्शन विधि का उपयोग किया गया है तथा प्रतिदर्श में चुने गए व्यक्ति या इकाई समष्टि के विभिन्न वर्गो या स्तरों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

10.8 शब्दावली

- **समष्टि :** समष्टि एवं जनसंख्या एक दूसरे के पर्याय हैं। समष्टि वस्तुओं, घटनाओं या व्यक्तियों के उस साकल्य या संघात को कहा जाता है जिसके बारे में उसके कुछ व्यक्तियों, घटनाओं या पदार्थो को प्रतिदर्श के रूप में लेकर तथ्य संग्रह किया जाता है। उस तथ्य संग्रह के आधार पर उस सम्पूर्ण संघात के बारे में अनुमान लगाया जाता है
- **प्रतिदर्श :** किसी समष्टि से लिए गए व्यक्तियों, पदार्थों, घटनाओं या अनुक्रियाओं का वह समुच्चय या समूह है जिनका चुनाव समष्टि का पूर्ण प्रतिनिधित्व करने वाले समूह के रूप में किया जाता है।
- **प्रतिदर्श आकार :** प्रतिदर्श में समष्टि से यादृच्छिक ढंग से ली गई इकाइयों की संख्या।

- **प्रतिदर्श इकाई :** ये सभी समष्टि या जनसंख्या के सदस्य होते हैं।
- **प्राचल :** समष्टि मानों को प्राचल कहा जाता है। प्राचल गुण धर्म का वह मान है जिससे समष्टि का वर्णन होता है।
- **आकल :** प्रतिदर्श मानों को आकल कहा जाता है। यह प्रतिदर्श का वह मान है जिससे प्रतिदर्श के गुण-धर्म का वर्णन होता है और आकल, प्राचल का वर्णन करने के लिए ज्ञात किया जाता है।
- **प्रतिचयन त्रुटि :** आकल और प्राचल की भिन्नता को प्रतिचयन त्रृटि कहा जाता है। प्रतिचयन त्रुटि=आकल-प्राचल

10.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1- प्रतिदर्श समष्टि का --------- होता है।

2- समष्टि से कुछ ------ को चुनकर प्रतिदर्श का गठन किया जाता है।

3- प्रतिदर्श के आधार पर प्राप्त मान को ------- कहा जाता है।

4- प्रतिदर्श तैयार करने की प्रविधि को -------- कहा जाता है।

5- प्रतिदर्श का आकार बड़ा होने से प्रतिदर्श त्रुटि की सम्भावना कम हो जाती है। (सत्य/असत्य)

उत्तर: 1. लघुरूप 2. इकाइयाँ 3. सांख्यिकी 4. प्रतिदर्शन 5.सत्य

10.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- कपिल, डा0 एच0 के0 (2010): अनुसंधान विधियाँ- व्यवहारपरक विज्ञानों में, हर प्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशक, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- त्रिपाठी, जयगोपाल (2007): मनोविज्ञान एवं शिक्षा में शोध पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- त्रिपाठी, प्रो0 लाल बचन एवं अन्य (2008): मनोवैज्ञानिक अनुसंधान पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव, बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- सिंह, अरूण कुमार (2009): मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल- बनारसी दास, पटना एवं वाराणसी।
- Goode, W.J. & Hatt, P. K. (1981): Methods in Scoial Research.

- Festinger and Katz : Research method in Behavioural Sciences.
- Kerlinger, F.N. (1986): Foundations of Behavioural Research.
- Mc Guin, F.J. (1990) : Experimental Psychology.

10.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रतिदर्श के अर्थ को स्पष्ट करते हुए उसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. प्रतिदर्श की विश्वसनीयता का वर्णन कीजिए।
3. टिप्पणी लिखिए:

    1- प्रतिदर्श आकार 2- समष्टि

इकाई-11 संभाव्यता प्रतिदर्शन:- सरल एवं स्तरीकृत यादृच्छिक प्रतिदर्शन
(Probability Sampling -Simple and Stratified Random Sampling)

इकाई संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 सम्भावित प्रतिदर्शन

11.4 साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्शन

11.5 स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन

11.6 सारांश

11.7 शब्दावली

11.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

11.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.10 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

प्रतिदर्श के द्वारा समष्टि के बारे में वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त होती है। जब समष्टि से प्रतिदर्श का चयन किया जाता है तब यह विशेष ध्यान दिया जाता है कि वह समष्टि का प्रतिनिधित्व करने वाला हो। सामान्यतः प्रतिदर्श चयन या प्रतिदर्शन को मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त करते हैं- संभावित एवं असंभावित।

सम्भावित प्रतिदर्शन सैद्धान्तिक रूप में अपनी समष्टि का पूर्णतः प्रतिनिधि होता है। संभावित प्रतिदर्शन की मुख्यतः तीन विधियाँ होती हैं - लाटरी विधि, ड्रम चक्र विधि एवं टिपिट की संयोगिक संख्याएँ।

असंभावित प्रतिदर्शन में इकाइयों का चयन अध्ययनकर्ता के सुविधानुसार रहता है। इस इकाई में संभावित प्रतिदर्शन के दो प्रकारों- साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्शन एवं स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन का विस्तृत वर्णन किया गया है।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप कर सकेंगे -

- संभावित प्रतिदर्शन तथा उसकी विधियों का वर्णन करें।
- साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्शन के गुण-दोषों का वर्णन करें।
- स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन के गुण-दोषों का वर्णन करें।

11.3 संभावित प्रतिदर्शन

प्रतिदर्शन की सहायता से उपयोग में लाये जाने वाले आंकड़ों की विश्वसनीयता पर प्रसम्भाव्यता सिद्धान्त द्वारा नियंत्रण रखा जाता है। प्रतिदर्शन से तात्पर्य उस क्रमबद्ध चयन पद्धति से है, जिसकी सहायता से एक समष्टि से सम्बन्धित वैज्ञानिक अध्ययन के लिए कम से कम इकाइयों के उपयोग की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार प्रतिदर्शन के द्वारा प्रतिदर्श को अपनी समष्टि का प्रतिनिधिक बनाया जाता है। प्रतिदर्शन को मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त करते हैं –

1- संभावित प्रतिदर्शन 2- असंभावित प्रतिदर्शन

संभावित प्रतिदर्शन ऐसे प्रतिदर्शन परियोजना को कहते हैं जिसमें समष्टि के सदस्यों का प्रतिदर्श में शामिल किए जाने की संभावना ज्ञात होती है। इस प्रकार प्रतिदर्शन में मुख्य रूप से इन बातों पर ध्यान देना आवश्यक होता है -

समष्टि जिससे प्रतिदर्श का चयन होना है। उसका आकार अवश्य निश्चित हो। समष्टि के प्रत्येक सदस्य को प्रतिदर्शन में शामिल किए जाने की सम्भावना समान हो। समष्टि की सजातीयता हो।

संभावित प्रतिदर्शन में मुख्य रूप से प्रतिदर्श चयन हेतु तीन विधियों का उपयोग किया जाता है -

1) लाटरी विधि 2) ड्रम चक्र विधि 3) टिपिट की संयोगिक विधि

लाटरी विधि में समष्टि की सभी इकाइयों को क्रम संख्या प्रदान कर अलग-अलग पुड़िया बना लिया जाता है। फिर समस्त पुड़िया को एक डिब्बा में रख दिया जाता है। पुनः वांछित प्रतिदर्श जो अध्ययन हेतु लिया जाना है उसमें से एक पुड़िया निकालकर उसकी क्रम संख्या नोट कर लेते हैं। पुनः उस पुड़िया को बंदकर उस डिब्बे में डाल दिया जाता है और फिर दूसरी पुड़िया निकालकर उसका नम्बर नोटकर लेते हैं। पुनः इस पुड़िया को भी बंदकर उस डिब्बे में डाल दिया जाता है। यही क्रम तब तक चलता रहता है जब तक प्रतिदर्श की वांछित संख्या नहीं प्राप्त हो जाती है। यह प्रक्रिया अपनाने से समष्टि के सभी सदस्यों के चुने जाने की सम्भावना समान रूप से

रहती है। ड्रम चक्र विधि के अंतर्गत ड्रम पर इकाइयों, दहाइयों, सैकड़ों व सहस्त्रों की संख्या अंकित होती है। ये संख्याएँ 0 से लेकर 9 तक रहती हैं और जब ड्रम पर लगी सुइयों को घुमाया जाता है तब उनके घूमने से इकाई, दहाई व सैकड़े वाली संख्याओं को अंकित कर लिया जाता है। यह प्रक्रिया तब तक चलती है जब तक कि वांछित संख्या पूरी नहीं हो जाती है। टिपेट की संयोगिक संख्याओं की तालिका में भी संयोग पर आधारित वांछित संख्या को लिया जा सकता है।

संभावित प्रतिदर्शन में इकाइयों का चयन संयोगिक (Random) आधार पर किया जाता है, इसलिए कभी-कभी इस प्रतिदर्श को संयोगिक या यादृच्छिक प्रतिदर्शन या प्रतिचयन भी कहा जाता है।

इस प्रतिदर्शन के निम्नलिखित लाभ हैं -

1- पक्षपात से मुक्ति।

2- समष्टि का पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व होता है।

3- प्रतिदर्शन की मानक त्रुटि का अंकन।

4- समय एवं धन की बचत।

5- सरल तथा वैज्ञानिक विधि।

इस प्रतिदर्शन की कुछ कठिनाइयाँ भी हैं -

1- चयन होने के बाद इकाइयों में परिवर्तन या संसोधन सम्भव नहीं।

2- समष्टि की पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

3- जब अधिक व्यापक क्षेत्र होगा तब यह विधि अनुप्रयुक्त होगी।

4- जब भौगोलिक स्वरूप विषम होता है तब भी यह विधि अनुप्रयुक्त होती है।

5- इस पद्धति से चयनित इकाइयों का स्वरूप अस्थिर रहता है।

संभावित या प्रसंभाव्यता प्रतिदर्शन के पाँच प्रमुख प्रकार या प्रक्रियाएँ हैं -

1- साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्शन

2- स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन

3- क्षेत्र प्रतिदर्शन

4- गुच्छन प्रतिदर्शन

5- आनुपातिक यादृच्छिक प्रतिदर्शन

11.4 साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्शन

साधारण या सरल यादृच्छिक प्रतिदर्शन किसी भी समष्टि से एक निश्चित संख्या वाले प्रतिदर्श के चयन के उस प्रक्रम को कहते हैं जिसके अनुसार उस संख्या में लिए जा सकने वाले सभी सम्भव प्रतिदर्शों के चयन की समान संभावना रहती है। जब समष्टि परिमित होती है तब सरल यादृच्छिक प्रतिदर्शन आसान होता है। इसमें किसी भी सदस्य के प्रतिदर्श में शामिल होने की सम्भावना 1/एन होती है। इस प्रकार के प्रतिचयन के लिए लाटरी विधि, ड्रम चक्र विधि एवं टिपेट की संयोगिक विधि सबसे अधिक उपयुक्त होती है। क्योंकि इस प्रकार के प्रतिदर्शन में समष्टि के समस्त सदस्यों के चुने जाने की समान संभावना तो होती ही है साथ ही किसी भी सदस्य का चयन किसी दूसरे सदस्य के चयन से पूर्णतः स्वतंत्र होता है।

सरल या साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्शन के कुछ लाभ एवं दोष भी है। इसके प्रमुख लाभ या गुण इस प्रकार हैं -

1- इसमें जिन प्रतिदर्शों का समष्टि से चयन होता है वे सभी प्रतिदर्श अपने समष्टि का प्रतिनिधित्व करते हैं।

2- साधारण या सरल यादृच्छिक प्रतिदर्शन सभी तरह के यादृच्छिक प्रतिदर्श के लिए एक ठोस आधार का काम करता है।

3- इसमें समय एवं धन की बचत तो है ही साथ ही यह प्रतिदर्शन काफी सरल है।

4- इसमें प्रतिदर्शन त्रुटि को सरलता से ज्ञात किया जा सकता है।

सरल यादृच्छिक प्रतिदर्शन के दोष इस प्रकार हैं -

1- इसमें जिस वर्ग के सदस्यों की समष्टि में संख्या कम होती है। उनके प्रतिदर्शन में शामिल होने की गारंटी कम रहती है।

2- यह स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन की तुलना में कम विश्वसनीय होता है।

3- इसमें शोधकर्ता को समष्टि की विशेषताओं के बारे में प्राप्त ज्ञान का उपयोग करने का मौका नहीं मिलता है।

11.5 स्तरीकृत यादृच्छिक प्रतिदर्शन

जब समष्टि का स्वरूप विषमजातीय होता है तब उसका विभाजन विभिन्न स्तरों के आधार पर करना अधिक उचित होता है। इस विभाजन के कई आधार या स्तर हो सकते है। आयु, लिंग, धर्म, शिक्षा, वजन, जाति, वर्ण, सामाजिक-आर्थिक स्तर इत्यादि। ये आधार इन उपसमूहों के गुण धर्म होते हैं। सामाजिक विज्ञानों में अध्ययन

किए जाने वाले गोचर इन गुण-धर्मों से सम्बन्धित होने के कारण प्रतिदर्श चयन की पक्रिया में उसके प्रतिनिध्यात्मक स्वरूप को निर्धारित करने में अहम भूमिका निभाते हैं। ऐसी स्थितियों में प्रतिदर्श चयन हेतु स्तरित यादृच्छिक प्रतिचयन की प्रक्रिया उपयुक्त होती है।

स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन में प्रतिदर्श चयन करने के लिए समष्टि को विभिन्न स्तरों में विभक्त करते समय स्तरण के लिए गुण धर्मो के चयन में कुछ बातों को ध्यान में रखना आवश्यक होता है। जिस गुण-धर्म के आधार पर स्तरण किया जाना होता है तो यह ध्यान रखना होता है कि वे गुण-धर्म उस समष्टि के उस उपसमूह में अवश्य हों। यह भी कि उस गुण-धर्म के आधार पर सहज ढंग से समष्टि को विभिन्न स्तरों में बाँटा जा सके। प्रतिचयन करते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि समष्टि का कोई सदस्य एक से अधिक स्तरों में स्वाभाविक रूप से भी रखा जाय। समष्टि को विभिन्न स्तरों में विभक्त कर लेने के बाद प्रत्येक से आवश्यक संख्या में प्रतिदर्श चयन सरल यादृच्छिक प्रक्रिया का उपयोग कर किया जा सकता है। लेकिन अक्सर स्तरण का उद्देश्य प्रतिदर्श को प्रतिनिध्यात्मक बनाना होता है अतः स्तर के आधार पर उस स्तर से लिए जाने वाले प्रतिदर्श की संख्या का निर्धारण होता है। इसीलिए अक्सर स्तरित प्रतिदर्श चयन को समानुपातिक स्तरित प्रतिदर्श चयन कहा जाता है। मान लीजिए किसी गॉव के युवकों की संख्या 1000 है। इसमें 300 युवकों को प्रतिदर्श में लिया जाना है। इस 1000 की संख्या में 200 ब्राह्मण, 300 क्षत्रिय, 300 पिछड़ा वर्ग एवं 200 अनुसूचित वर्ग के युवक हैं। समष्टि में इन वर्गों का जो समानुपात है वही समानुपात प्रतिदर्श में भी होना चाहिए। इनका निर्धारण नीचे दी गई तालिका में है। इससे स्पष्ट है कि यहाँ विभिन्न स्तरों से प्रतिदर्श के सदस्यों का चयन यादृच्छिक प्रक्रिया द्वारा किया जाता है। इसीलिए इस प्रकार का प्रतिदर्श चयन यादृच्छिक माना जाता है।

स्तर	**संख्या**	**प्रतिदर्श संख्या**
ब्राह्मण	200	60
क्षत्रिय	300	90
पिछड़ा वर्ग	300	90
अनुसूचित जाति	200	60

स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन के गुण या लाभ

1- अधिक प्रतिनिध्यात्मक।

2- कम मानक त्रुटि।

3- अधक विश्वसनीयता।

4- अधिक वैज्ञानिक एवं गहन अध्ययन।

5- इकाइयों के छूटने की सम्भावना कम रहती है।

स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन की कठिनाइयाँ या दोष

1- स्तरों के चयन में कठिनाई।

2- इसमें स्तरों के चयन में व्यक्तिगत पक्षपात की सम्भावना अधिक रहती है।

3- चूँकि संबन्धित स्तरों का स्वरूप स्थायी नहीं रहता है अतः इस विधि द्वारा प्राप्त ऑकड़ों के शीघ्र अविश्वसनीय हो जाने की सम्भावना बनी रहती है।

11.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान चुके होंगे कि प्रतिदर्शन क्या होता है। प्रतिदर्श तैयार करने की प्रविधि को प्रतिदर्शन कहा जाता है। प्रतिदर्शन के मुख्य रूप से दो प्रकार हैं - संभावित प्रतिदर्शन एवं असंभावित प्रतिदर्शन। संभावित प्रतिदर्शन में प्रतिदर्श चयन हेतु मुख्यतः तीन विधियों का उपयोग करते हैं - लाटरी विधि, ड्रम चक्र विधि एवं टिपिट की संयोगिक विधि। संभावित प्रतिदर्शन के मुख्यतः पाँच प्रकार होते हैं - साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्शन। स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन। आनुपातिक यादृच्छिक प्रतिदर्शन। क्षेत्र प्रतिदर्शन। गुच्छन प्रतिदर्शन। इस इकाई में साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्शन एवं स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन का वर्णन किया गया है।

11.7 शब्दावली

- **प्रतिदर्शन:** प्रतिदर्श तैयार करने की प्रविधि को प्रतिदर्शन कहते हैं।
- **संभावित प्रतिदर्शन:** संभावित प्रतिदर्शन वैसे प्रतिदर्शन योजना को कहा जाता है जिसमें समष्टि के सदस्यों का प्रतिदर्श में शामिल किए जाने की संभावना ज्ञात होती है। इस प्रकार प्रतिदर्शन में इकाइयों का चयन संयोगिक आधार पर किया जाता है, जिसके अंतर्गत समष्टि के प्रत्येक इकाई के चयन की समान संभावना रहती है।
- **साधारण यादृच्दिक प्रतिदर्शन:** किसी भी समष्टि से एक निश्चित संख्या वाले प्रतिदर्श के चयन के उस प्रक्रिया को कहते हैं जिसके अनुसार उस संख्या में लिए जा सकने वाले सभी संभव प्रतिदर्श के चयन की समान सम्भावना रहती है।

- **स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन:** इसमें समष्टि के गुण-धर्मों का स्तरण करके जितने सम्भव उपसमूह हो सकते हैं निर्मित कर प्रत्येक उपसमूह से वांछित संख्या में प्रतिदर्श चयन किया जाता है। इसमें ध्यान रखा जाता है कि समष्टि का कोई भी सदस्य एक से अधिक स्तरों में न रखा जाय।

11.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1- प्रतिदर्श तैयार करने की प्रविधि को -------- कहा जाता है।

2- प्रतिदर्शन के ---------- प्रकार होते है।

3- साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्शन --------- का एक प्रकार है।

4- स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन असंभावित प्रतिदर्शन का एक प्रकार है - सत्य/असत्य

5- प्रतिदर्श चयन की लाटरी विधि संभावित प्रतिदर्शन की एक विधि है - सत्य/असत्य

उत्तर: 1-प्रतिदर्श 2-दो 3- संभावित प्रदर्शन 4- असत्य 5- सत्य

11.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- कपिल, डा0 एच0 के0 (2010): अनुसंधान विधियाँ- व्यवहारपरक विज्ञानों में, हर प्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशक, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- त्रिपाठी, जयगोपाल (2007): मनोविज्ञान एवं शिक्षा में शोध पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- त्रिपाठी, प्रो0 लाल बचन एवं अन्य (2008): मनोवैज्ञानिक अनुसंधान पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- सिंह, अरूण कुमार (2009): मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल- बनारसी दास, पटना एवं वाराणसी।
- Goode, W.J. & Hatt, P.K. (1981): Methods in Scoial Research.
- Festinger and Katz : Research method in Behavioural Sciences.
- Kerlinger, F.N. (1986): Foundations of Behavioural Research.
- Mc Guin, F. J. (1990) : Experimental Psychology.

11.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1- संभावित प्रदर्शन क्या है? इसके गुण एवं दोषों का वर्णन कीजिए।

2- साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्शन का वर्णन करते हुए इसके गुण एवं दोषों का वर्णन कीजिए।

3- स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन के लाभ एवं सीमाओं का वर्णन कीजिए।

4- टिप्पणी लिखिए:

i. लाटरी विधि

ii. संभावित यादृच्छिक प्रतिदर्शनकी कठिनाइयाँ

इकाई-12 गैर संभावित प्रतिदर्शन:- प्रासांगिक, कोटा एवं हिमकन्दु प्रतिदर्शन

(Non-Probability Sampling:- Incidental, Quota and Snow Ball sampling)

इकाई संरचना

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 असंभावित प्रतिदर्शन

12.4 प्रासंगिक प्रतिदर्शन

12.5 कोटा प्रतिदर्शन

12.6 हिमकंदुक प्रतिदर्शन

12.7 सारांश

12.8 शब्दावली

12.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.11 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

जब प्रतिचयन में इकाइयों का चयन प्रासंभाव्यता सिद्धान्त पर आधारित नहीं होता है और शोधकर्ता को इकाइयों के चयन में प्रायः स्वतंन्त्रता रहती है एवं इकाइयों के चयन का आधार संयोग न रहकर सुविधा, अवसर, निर्णय आदि रहता है तब अप्रसंभाव्यता प्रतिदर्शन विधियों का उपयोग किया जाता है ।असंभाव्यता प्रतिदर्शन की वैसे तो कोटा प्रतिदर्शन, प्रासंगिक प्रतिदर्शन, उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्शन कमबद्ध प्रतिदर्शन, हिमकंदुक प्रतिदर्शन, संतृप्ति प्रतिदर्शन एवं धनीभूत प्रतिदर्शन विधियाँ हैं। यहाँ इस इकाई में प्रमुख रूप से प्रासंगिक प्रतिदर्शन, कोटा प्रतिदर्शन हिमकंदुक प्रतिदर्शन विधियों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप कर सकेंगे:

- असंभावित प्रतिदर्शन क्या है इसको समझ सकेंगे।
- प्रासंगिक प्रतिदर्शन के लाभ एवं सीमाओं को जान सकेंगे।
- कोटा प्रतिदर्शन के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी प्राप्त होगी।
- हिमकंदुक प्रतिदर्शन किन परिस्थितियों में प्रयुक्त किया जाता है इससे अवगत हो सकेंगे।

12.3 असंभावित प्रतिदर्शन

असंभावित प्रतिदर्शन में प्रतिदर्श के चयन का आधार संयोग (Random) न रहकर सुविधा, अवसर, निर्णय आदि पर रहता है। इसमें प्रतिदर्श का चयन प्रसंभाव्यता सिद्धान्त पर आधारित नहीं होता है। अतः इस प्रकार के प्रतिदर्शन को असंभावित प्रतिदर्शन कहते हैं। इसमें शोधकर्ता प्रतिदर्श में उन्हीं इकाइयों को शामिल करता है जिनको लेने से उसके निर्णय के अनुसार प्रतिदर्श प्रभावशाली ढंग से प्रतिनिध्यात्मक बन जाता है। इसमें शोधकर्ता प्रतिदर्श चयन में आत्मनिष्ठ निष्कर्षों का उपयोग करता है। इस विधि के उपयोग से वैज्ञानिक परिणाम उपलब्ध नहीं होते। वैसे इस प्रतिदर्शन विधि में अनेक दोष होते हैं, परन्तु फिर भी अनुसंधान के क्षेत्र में इस विधि का व्यापक उपयोग किया जाता है। असंभावित प्रतिदर्शन की कई विधियाँ होती हैं। इनमें से कुछ प्रमुख विधियों का वर्णन किया जा रहा है।

12.4 प्रासंगिक प्रतिदर्शन

यह एक ऐसी असंभावित प्रतिदर्शन की विधि है जिसे सबसे अधिक स्थूल एवं अपक्व माना जाता है। इस विधि में शोधकर्ता उन सभी लोगों को अपने प्रतिदर्श में चयन कर लेता है जो सरलता एवं सुविधापूर्वक मिल जाते हैं। यह विधि काफी सीमा तक कोटा प्रतिदर्शन के समान होती है। अक्सर शोधकर्ता अपने अध्ययन हेतु उन छात्रों को अपने प्रतिदर्श में शामिल कर लेते हैं जो सहजरूप से एक साथ उपलब्ध हो जाते हैं।

प्रासंगिक प्रतिदर्शन के निम्नलिखित लाभ हैं -

1- इसमें शोधकर्ता को प्रतिदर्श काफी संख्या में एक ही समय एवं स्थान पर आसानी से मिल जाते है।

2- इसमें समय, श्रम एवं धन की बचत होती है।

प्रासंगिक प्रतिदर्शन की कुछ सीमाएँ भी होती हैं -

1- इस प्रकार के प्रतिदर्शन के आधार पर जो अध्ययन के निष्कर्ष प्राप्त होते हैं उनका सामान्यीकरण समष्टि के सम्बन्ध में विश्वास के साथ नहीं किया जा सकता है।

2- इस प्रकार के प्रतिदर्शन में प्रतिदर्शन त्रुटि अधिक पायी जाती है।

3- इसमें शोधकर्ता के पूर्वाग्रह या पक्षपात का भी प्रतिदर्श के चयन पर प्रभाव पड़ता है जिसके कारण प्रतिदर्श की विश्वसनीयता में कमी आती है।

12.5 कोटा प्रतिदर्शन

कोटा प्रतिदर्शन एक प्रकार का असंभावित प्रतिदर्शन की विधि है। यह विधि स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन से काफी मिलती जुलती है। इस प्रतिदर्शन में शोधकर्ता समष्टि की विशेषताओं के अनुरूप कई स्तरों में पहचान कर प्रत्येक स्तर से अपनी आवश्यकतानुसार या इच्छानुसार प्रतिदर्श का चयन कर लेता है। इसमें यादृच्छिक रीति का प्रतिदर्श चयन में उपयोग नहीं किया जाता है।

करलिंगर ने कोटा प्रतिदर्शन को परिभाषित करते हुए कहा है कि "कोटा प्रतिदर्शन एक प्रकार से असंभावित प्रतिदर्शन है जिसमें शोधकर्ता समष्टि के विभिन्न स्तरों जैसे यौन, जाति, क्षेत्र, शिक्षा या फिर इसी तरह के अन्य स्तरों के आधार पर प्रतिदर्श को चयन कर लेता है जो कुछ खास शोध उद्देश्यों के लिए प्रतिनिधिक, विशिष्ट एवं उपयुक्त होते हैं।"

कोटा प्रतिदर्शन के कुछ लाभ एवं परिसीमाएँ हैं। इसके प्रमुख लाभ निम्नांकित हैं -

1- कोटा प्रतिदर्शन अन्य विधियों की तुलना में कम खर्चीली है।

2- जहाँ शोधकर्ता को एक स्थूल एवं तीव्र परिणाम चाहिए वहाँ यह विधि काफी उपयोगी है।

3- कोटा प्रतिदर्शन में सभी स्तरों से प्रतिदर्श का चुनाव अध्ययन हेतु किया जाता है। इसलिए इस प्रकार के प्रतिदर्श को प्रतिनिधिक प्रतिदर्श माना जाता है।

कोटा प्रतिदर्शन की परिसीमाएँ -

1- कोटा प्रतिदर्शन में अध्ययनकर्ता अक्सर उन लोगों को शामिल कर लेता है जो आसानी से उपलब्ध होते हैं। अतः जो यह कहा जाता है कि इस प्रकार के प्रतिदर्शन में चुने गए प्रतिदर्श प्रतिनिधिक होते हैं कहना कठिन है।

2- जब प्रतिदर्श प्रतिनिधिक नहीं है तो इस प्रकार के प्रतिदर्शन से प्राप्त निष्कर्ष का सामान्यीकरण करना उचित नहीं होगा।

3- कोटा प्रतिदर्शन में प्रतिदर्श चयन में शोधकर्ता की मनमानी या इच्छा की प्रधानता होती है।

12.6 हिमकंदुक प्रतिदर्शन

जब व्यक्तियों के बीच अनौपचारिक सम्बन्धों का अध्ययन करना होता है तब ऐसी स्थिति में हिमकंदुक प्रतिदर्शन का प्रयोग किया जाता है। यह भी एक प्रकार का असंभावित प्रतिदर्शन है। हिमकंदुक प्रतिदर्शन का स्वरूप मूलतः समाजमितीय होता है। इसको परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि यह प्रतिदर्शन की एक ऐसी प्रविधि है जिसमें किसी सीमित समूह या संगठन में सभी सदस्यों को अपने-अपने साथियों की पहचान करने को कहा जाता है। इस प्रकार शोधकर्ता के समक्ष समूह में साथियों या दोस्तों का एक समूह उभर कर आता है। जिससे उस समूह के पूर्व सामाजिक पैटर्न का ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार के प्रतिदर्शन का उपयोग विशेषकर उन स्थितियों में अधिक किया जाता है जिसमें छोटे-छोटे व्यावसायिक एवं औद्योगिक संगठनों या अन्य परिस्थितियों जिसमें व्यक्तियों या सदस्यों की संख्या 100 से ज्यादा नहीं होती है। हिमकंदुक प्रतिदर्शन के कुछ लाभ एवं परिसीमाएँ भी हैं।

लाभ -

- इस प्रतिदर्शन का उपयोग छोटे समूह या संगठन के लिए काफी उपयोगी है।
- इस प्रकार के प्रतिदर्शन में चुने गए समूह के संचार पैटर्न की एक स्पष्ट तस्वीर मिलती है जिसका एक लाभ होता है।
- इस प्रकार के प्रतिदर्शन में लचीलापन का गुण होता है।

परिसीमाएँ -

- इस प्रतिदर्श में शोधकर्ता संभावित सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग नहीं कर सकता है।

12.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह जान चुके होंगे कि असंभावित प्रतिदर्शन में प्रतिदर्श के चयन का आधार संयोग न रहकर सुविधा, अवसर, निर्णय आदि पर रहता है। इसमें प्रतिदर्श का चयन प्रसंभाव्यता सिद्धान्त पर आधारित नहीं होता है। प्रासंगिक प्रतिदर्शन वह प्रतिदर्शन होता है जिसमें उन सभी लागों को प्रतिदर्श में सम्मिलित किया जाता है जो सरलता एवं सुविधापूर्वक उपलब्ध हो जाते हैं। इसी प्रकार कोटा प्रतिदर्शन में शोधकर्ता समष्टि के विशेषताओं के अनुरूप कई स्तरों में पहचान कर प्रत्येक स्तर से अपनी आवश्यकतानुसार

प्रतिदर्श का चयन कर लेता है। जब व्यक्तियों के बीच अनौपचारिक सम्बन्धों का अध्ययन करना होता है तब ऐसी स्थिति में हिमकंदुक प्रतिदर्शन का प्रयोग किया जाता है।

12.8 शब्दावली

- **असंभावित प्रतिदर्शन:** यह प्रतिदर्शन एक ऐसी प्रतिदर्शन परियोजना है जिसमें समष्टि के सदस्यों को प्रतिदर्श में शामिल किये जाने की सम्भावना ज्ञात नहीं होती है।
- **प्रासंगिक प्रतिदर्शन:** प्रासंगीक प्रतिदर्शन एक ऐसा असंभावित प्रतिदर्शन की विधि है जिसे सबसे अधिक स्थूल एवं अपक्व माना गया है। इसमें शोधकर्ता उन सभी व्यक्तियों को अपने प्रतिदर्श में शामिल कर लेता है जो उसे सरलता से उपलब्ध हो जाता है।
- **कोटा प्रतिदर्शन:** यह एक प्रकार का असंभावित प्रतिदर्शन है, जिसमें समष्टि के स्तरों के आधार पर प्रतिदर्शन की संख्याओं को चुना जाता है।
- **हिमकंदुक प्रतिदर्शन:** जब व्यक्तियों के बीच अनौपचारिक सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन शोधकर्ता करना चाहता है तब इस प्रकार के प्रतिदर्शन विधि का उपयोग किया जाता है। इसका स्वरूप मूलतः समाजमितीय होता है।

12.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1- असंभावित प्रतिदर्शन से प्राप्त प्रतिदर्श अपने ----- का सही-सही प्रतिनिधित्व नहीं करपाते हैं।

2- कोटा प्रतिदर्शन एक तरह का ----- की विधि है।

3- प्रासंगिक प्रतिदर्शन को अधिक स्थूल एवं ----- माना गया है।

4- जब व्यक्तियों के बीच अनौपचारिक सम्बन्धों का अध्ययन करना होता है तब ---- का उपयोग करते हैं।

5- इनमें से कौन सा प्रतिदर्शन असंभावित प्रतिदर्शन का प्रकार नहीं हैं?

1- कोटा प्रतिदर्शन 2- प्रासंगिक प्रतिदर्शन

3- हिम कंदुक प्रतिदर्शन 4-साधारण याछच्छिक प्रतिदर्शन

उत्तर : 1-समष्टि 2-असंभावित प्रतिदर्शन 3-अपक्व 4-हिमकंदुक प्रतिदर्शन 5- प्रासंगिक प्रतिदर्शन

12.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- कपिल, डा0 एच0 के0 (2010): अनुसंधान विधियाँ- व्यवहारपरक विज्ञानों में, हर प्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशक, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- त्रिपाठी, जयगोपाल (2007): मनोविज्ञान एवं शिक्षा में शोध पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- त्रिपाठी, प्रो0 लाल बचन एवं अन्य (2008): मनोवैज्ञानिक अनुसंधान पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- सिंह, अरूण कुमार (2009): मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल- बनारसी दास पटना एवं वाराणसी।
- Goode, W.J. & Hatt, P.K. (1981) : Methods in Scoial Research.
- Festinger and Katz : Research method in Behavioural Sciences.
- Kerlinger, F.N. (1986): Foundations of Behavioural Research.
- Mc Guin, F. J. (1990) : Experimental Psychology.

12.12 **निबन्धात्मक** प्रश्न

1. असंभावित प्रतिदर्शन के गुण दोषों का वर्णन कीजिए।
2. प्रासंगिक प्रतिदर्शन का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसके गुणों का वर्णन कीजिए।
3. कोटा प्रतिदर्शन की सीमाओं का उल्लेख कीजिए।
4. हिमकंदुक प्रतिदर्शन का विस्तृत वर्णन कीजिए।

इकाई 13. चर:- अर्थ एवं प्रकार
(Variables: Meaning and Types)

इकाई संरचना

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 चर का अर्थ

13.4 स्वतंत्र चर

13.5 आश्रित चर

13.6 संगत चर या बहिरंग चर

13.6.1 प्रयोज्य संगत चर

13.6.2 परिस्थितिगत संगत चर

13.6.3 अनुक्रम संगत चर

13.7 सारांश

13.8 शब्दावली

13.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

13.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

किसी भी वैज्ञानिक शोध में चर, जिसे परिवर्त्य के नाम से भी जानते हैं, अपना केन्द्रीय महत्व रखता है। इसके बिना कोई भी प्रायोगिक अध्ययन संभव ही नहीं है। इस पर हम लोग प्रयोगात्मक शोध विधि के प्रसंग में चर्चा कर चुके हैं।

प्रस्तुत इकाई में आप चर का अर्थ एवं प्रकार, किसी शोध में चर की आवश्यकता, आश्रित चर एवं स्वतंत्र चर में अन्तर, स्वतंत्र चर क हस्तचालन के तरीके आदि पर विशेष जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। चरों के सम्बन्ध में

जानकारी प्राप्त करने से आपको यह लाभ होगा कि आप विभिन्न चरों का वर्गीकरण कर किसी शोध में उपयुक्त चरों का चयन करने एवं आवश्यक चर का हस्तचालन करने में सक्षम हो सकेंगे।

13.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जायेंगे कि आप-

- चरों का अर्थ एवं महत्व बतला सकें।
- स्वतंत्र एवं आश्रित चरों में भेद कर सकें।
- स्वतंत्र चरों के विभिन्न प्रकारों को स्पष्ट कर सकें।
- बहिरंग चरों को भिन्न-भिन्न भागों में बाँट सकें।
- स्वतंत्र चरों को हस्ताचालित कर एक सख्त प्रयोगात्मक परिस्थिति उत्पन्न करने में सक्षम हो सकें।

13.3 चर का अर्थ

वैज्ञानिक शोध में वैसे तथ्यों का संकलन आनुभविक रूप से किया जाता है जिसकी जाँच की जा सके, जिसे सत्यापित किया जा सके। यही तथ्य हमारे ज्ञान-भण्डार में वृद्धि करता है और सिद्धान्त के निर्माण में सहायक होता है। तथ्य तक पहुँचने के लिए वैज्ञानिक प्रक्रियाओं का सहारा लिया जाता है। वैज्ञानिक प्रक्रिया वह प्रक्रिया है जिसमें नियंत्रित परिस्थिति में घटनाओं का क्रमबद्ध निरीक्षण करते हैं। क्रमबद्ध निरीक्षण से तात्पर्य है कि घटना जिस रूप में घटित हो उस रूप में उसका अध्ययन हो। यानी, घटना का अध्ययन जैसे-तैसे न करके यह देखा जाय कि उस पर किन-किन कारकों का प्रभाव पड़ रहा है और किन-किन कारकों को नियंत्रित रखने की आवश्यकता है। एक शोधकर्ता जब वैज्ञानिक शोध करता है तो वह एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करता है जिसमें वैसे सभी कारक, जिनके अध्ययन की जरूरत नहीं है, नियंत्रित कर लिए जाते हैं और सिर्फ उन्हीं कारकों में बदलाव किया जाता है या बदलाव का निरीक्षण किया जाता है जिनका प्रभाव शोधकर्ता देखना चाहता है। ये सभी कारक व्यावहारिक विज्ञान में चर की कोटि में आते हैं क्योंकि चर का मतलब ही होता है- जिसमें बदलाव हो, जो स्थिर न रहे या जिसका स्वभाव परिवर्तित होने वाला हो। यही कारण है कि चर को परिवर्त्य भी कहते हैं। चर के सम्बन्ध में एक और आवश्यक बात याद रखना चाहिए कि चर सिर्फ बदलते रहने वाला ही नहीं होता, बल्कि यह मापने योग्य भी होता है। इसीलिए कहा जाता है कि चर किसी वस्तु, व्यक्ति या चीजों का वह गुण है जिसे मापा जा सके। यानी, जो मापने योग्य नहीं है, वह चर नहीं कहला सकता। मनोविज्ञान में अवगम, अधिगम, संवेग, बुद्धि, व्यक्तित्व, व्यक्तित्व के विभिन्न आयाम या गुण, व्यक्तियों के अन्तर्सम्बन्ध, यौन, शिक्षा, सामाजिक-आर्थिक स्तर विभिन्न सामाजिक पहलू आदि चर के कुछ उदाहरण हैं। एक शोधकर्ता अभिप्रेरणा का अधिगम पर प्रभाव देखना चाहता है तो वह अभिप्रेरणा के विभिन्न स्तर निर्धारित कर उसे में माप सकता है तथा इसके विभिन्न स्तरों का

क्या प्रभाव व्यक्ति के अधिगम पर पड़ता है इसे भी अधिगम की माप कर बता सकता है। अतः अभिप्रेरणा और अधिगम दोनों ही चर कहलायेंगे, परन्तु दोनों ही चरों का प्रकार अलग-अलग होगा जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

चरों का मापन दो तरह से हो सकता है-परिमाणात्मक रूप में और गुणात्मक रूप में। यह चरों के स्वरूप पर निर्भर करता है। कुछ चर ऐसे होते हैं जिनका मापन सिर्फ परिमाणात्मक रूप से ही संभव है, जैसे- आयु, प्रयास, रक्तचाप, नाड़ी-गति, बुद्धि-लब्धि, लम्बाई, भार, तापमान आदि। दूसरी तरफ, कुछ चर ऐसे होते हैं जिन्हें गुणात्मक रूप से मापा जाता है, जैसे- सेक्स, धर्म, जाति, भाषा आदि। मनोविज्ञान, शिक्षा, योग, चिकित्सा आदि के क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाले चर ज्यादातर परिमाणात्मक श्रेणी के होते हैं।

मनोविज्ञान, शिक्षा, योग आदि के क्षेत्र में जो शोध होते हैं उनमें कई तरह के चरों का प्रयोग होता है। कुछ चर तो ऐसे होते हैं जिनके प्रभाव का अध्ययन करना शोधकर्ता का उद्देश्य होता है। दूसरे चर ऐसे होते हैं जिनका अध्ययन शोधकर्ता विस्तृत रूप में करना चाहता है और इन पर अन्य चरों के प्रभाव का अवलोकन करना उसका उद्देश्य होता है। प्रभाव डालने वाले और प्रभावित होने वाले चरों के अतिरिक्त भी कुछ ऐसे चर होते हैं जिनके प्रभाव को रोकने के लिए शोधकर्ता उन्हें नियंत्रित कर लेता है। चरों की इन्हीं विशेषताओं के परिप्रेक्ष्य में उन्हें निम्नलिखित तीन वर्गो में विभक्त किया गया है-

1. स्वतंत्र चर
2. आश्रित चर
3. संगत चर या नियंत्रित चर

13.4 स्वतंत्र चर

वैसा चर जिसके प्रभाव का अध्ययन शोधकर्ता करना चाहता है और अध्ययन करने हेतु उसमें अपनी इच्छानुसार जोड़-तोड़ या हस्तचालन करना है, स्वतंत्र चर कहलाता है। दूसरे शब्दों में, शोधकर्ता किसी प्रयोगात्मक परिस्थिति में जिस चर के मूल्यों में/मात्राओं में परिवर्तन करके उस परिवर्तन का दूसरे चर पर असर देखना चाहता है, उसे स्वतंत्र चर कहते हैं। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। मान लीजिए कि कोई शोधकर्ता कार्य के घंटे का प्रभाव कर्मचारियों के कार्य तनाव पर देखना चाहता है। इस अध्ययन में शोधकर्ता पहले कर्मचारियों का कार्य तनाव उपयुक्त मनोवैज्ञानिक परीक्षण द्वारा माप लेगा, फिर कर्मचारियों को अलग-अलग कार्य अवधि में कार्य करने को कहेगा तथा पुनः कुछ दिनों बाद उसके कार्य तनाव का मापन करेगा। यहाँ कार्य के घंटे एक स्वतंत्र चर के रूप में कार्यरत है क्योंकि शोधकर्ता उसका हस्तचालन कर रहा है। शोधकर्ता नित्य 6 घंटे, 7 घंटे, 8 घंटे की कार्य अवधि तय कर फिर कर्मचारियों के समान समूहों को अलग-अलग अवधियों (उपर्युक्त तय घंटों) में

कुछ दिनों तक कार्य करवा कर देखेगा कि कितने घंटे नित्य कार्य करने पर कार्य तनाव कम होता है। जिस स्वतंत्र चर में प्रयोगकर्ता जोड़-तोड़ करता है उसे प्रयोगात्मक चर भी कहते हैं। हस्तचालन के तरीके के आधार पर प्रयोगात्मक चर दो प्रकार के होते हैं-

(अ) टाइप-ई स्वतंत्र चर तथा

(ब) टाइप-एस स्वतंत्र चर

जब प्रयोगकर्ता किसी प्रयोगात्मक परिस्थिति में किसी स्वतेंत्र चर में जोड़-तोड़ सीधे या प्रयोगात्मक ढंग से करता है तो इसे 'टाइप-ई' स्वतंत्र चर कहते हैं। इसे सक्रिय स्वतंत्र चर भी कहते हैं। उपर्युक्त उदाहरण में कार्य की अवधि का हस्तचालन (जोड़-तोड़) प्रयोगकर्ता सीधे करता है, जैसे - नित्य 6 घंटे की अवधि, 7 घंटे की अवधि, घंटे की अवधि। इसी प्रकार, सीखने की प्रक्रिया पर विषय या पाठ की लम्बाई का प्रभाव देखना, जैसे- पाँच शब्दों की सूची, दस शब्दों की सूची, बीस शब्दों की सूची आदि। इस तरह का जोड़-तोड़ प्रयोगात्मक ढंग से सीधे प्रयोगकर्ता अपनी योजनानुसार कर लेता है, अतः यह 'टाइप-ई' स्वतंत्र चर कहलाता हैं।

'टाइप-एस' स्वतंत्र चर वैसे चर को कहा जाता है जिसमें प्रयोगकर्ता जोड़-तोड़ सीधे न करके चयन द्वारा करता है। इसे गुण भी कहा जा सकता है। यदि प्रयोगकर्ता किसी आश्रित चर पर व्यक्ति की बुद्धि, अभिक्षमता, जाति, धर्म, आयु, यौन आदि का प्रभाव देखना चाहे तो इनमें से किसी भी चर का स्वतंत्र चर के रूप में प्रयोग एवं इनका हस्तचालन प्रयोगात्मक ढंग से या सीधे नहीं किया जा सकता क्योंकि एक ही व्यक्ति या समूह की जाति, धर्म, आयु, सेक्स आदि में प्रयोगकर्ता अपनी इच्छानुसार परिवर्तन नहीं ला सकता। ऐसी परिस्थिति में वह प्रयोज्यों का दो समूह बनायेगा-एक समूह में एक तरह की जाति, धर्म या आयु आदि वाले प्रयोज्य होंगे जबकि दूसरे समूह में इससे भिन्न जाति, धर्म या आयु आदि वाले प्रयोज्य होंगे। स्पष्ट है कि यहाँ प्रयोगकर्ता द्वारा दोनों ही समूह का निर्माण चयन पर आधारित होगा न कि उसमें सीधे या प्रयोगात्मक रूप से परिवर्तन करके, जैसे कि ऊपर 'टाइप-ई' के केस में किया गया।

स्वतंत्र चर 'ई' टाइप का हो या 'एस' टाइप का, प्रयोगकर्ता ऐसे चरों को कारण के रूप में व्यवहार करके उनके प्रभावों का पता लगाने का प्रयास करता है। अतः हम कह सकते हैं कि स्वतंत्र चर ऐसा चर है जिसे शोधकर्ता प्रयोगात्मक परिस्थिति में कभी तो सीधे हस्तचालित करके तो कभी चयन के द्वारा हस्तचालित करके इनके प्रभाव का अध्ययन आश्रित चर पर करता है। डी. एमैटो (1970) नामक मनोवैज्ञानिक ने स्वतंत्र चर को इसी रूप में परिभाषित करते हुए कहा है कि ''सामान्यतः स्वतंत्र चर वह कोई भी चर है जिसके प्रभावों को व्यवहार सम्बन्धी माप पर निर्धारित करने हेतु, प्रयोगकर्ता द्वारा उसका हस्तचालन सीधे तौर पर या चयन के द्वारा किया जाता है।''

प्रयोग के समय उसकी सक्रियता के परिप्रेक्ष्य में स्वतंत्र चर के तीन प्रकार बतलाये गए हैं - प्राणी चर, उद्दीपन चर तथा अनुक्रिया चर। प्राणी चर ऐसे स्वतंत्र चरों को कहते हैं जिनका सम्बन्ध प्रयोज्य के यौन, बुद्धि, प्रेरणा, थकान, अभ्यास, चिन्ता आदि से होता है। उद्दीपन चर ऐसे स्वतंत्र चरों को कहते हैं जिनका सम्बन्ध अध्ययन-विषय या अध्ययन-सामग्री से होता है। अधिगम में ऐसे चरों की भरमार है, जैसे - अध्ययन-सामग्री की कठिनाई, सरलता, जटिलता, लम्बाई, निरर्थकता, अर्थपूर्णता आदि उद्दीपन चर के उदाहरण हैं। अनुक्रिया चर ऐसे स्वतंत्र चर को कहते हैं जिनका सम्बन्ध उस प्रयोगात्मक परिस्थिति से है जिसमें प्रयोज्य अनुक्रिया करता है। प्रायोगिक वातावरण में उपस्थित शोरगुल, तापमान, आर्द्रता आदि अनुक्रिया चर के उदाहरण हैं।

स्वतंत्र चरों का हस्तचालन -

चाहे किसी भी प्रकार का स्वतंत्र क्यों न हो, प्रयोगकर्ता का उद्देश्य उसका हस्तचालन करके, यानी उसका विभिन्न मूल्य या स्तर तैयार करके आश्रित चर पर उसके प्रभाव का निरीक्षण या रिकार्डिंग करना होता है। प्रयोगकर्ता स्वतंत्र चर में हस्तचालन का कार्य निम्नलिखित तीन तरह से करता है -

(i) **'हा-नहीं' हस्तचालन-** इस तरह का हस्तचालन शोधकर्ता तब करता है जब स्वतंत्र चर का प्रकार ऐसा हो कि उसे एक अवस्था में उपस्थित किया जाय तथा दूसरी अवस्था में अनुपस्थित रखा जाय। इसे उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। मान लीजिए कि शोधकर्ता परिणाम के ज्ञान का प्रभाव व्यक्ति के निष्पादन पर देखना चाहता है। अतः वह दो अवस्थाओं में प्रयोग करेगा। पहली अवस्था में वह प्रयोज्य को कार्य पूरा करने पर यह नहीं बतायेगा कि उसने कोई गलती भी की या कार्य सही तरह से पूरा किया। इसे ''बिना परिणाम के ज्ञान'' की अवस्था कहेंगे। दूसरी अवस्था में वह प्रयोज्य को प्रत्येक प्रयास के बाद किए गये कार्य को दिखा देगा ताकि उसे अपनी गलतियों का पता चल जाय। इसे ''परिणाम के ज्ञान'' की अवस्था कहा जायेगा। इस प्रकार, उपर्युक्त उदाहरण में शोधकर्ता ने ''परिणाम के ज्ञान'' को, जो कि एक स्वतंत्र चर है ''हा-नहीं हस्तचालन'' के द्वारा हस्तचालित किया और उसके दोनों ही स्तरों के आश्रित चर, यानी, निष्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों का निरीक्षण किया। अधिगम पर अभिप्रेरणा का प्रभाव, कक्षा कार्य पर शोर-गुल का प्रभाव आदि में शोधकर्ता स्वतंत्र चरों (क्रमशः अभिप्रेरण एवं शोर-गुल) का हस्तचालन ''हाँ-नहीं'' हस्तचालन द्वरा करेगा।

(ii) **'यह-वह' हस्ताचालन-** इस तरह का हस्तचालन शोधकर्ता तब करता है जब उसे प्रयोग की विभिन्न स्थितियों में अलग-अलग प्रकार के स्वतंत्र चर के मूल्यों को प्रस्तुत करना होता है। उदाहरण के लिए, यदि शोधकर्ता अधिगम पर पुरस्कार-प्रकार का प्रभाव देखना चाहता है तो उसका शोध डिजाइन इस प्रकार का होगा कि प्रयोग की एक अवस्था में वह प्रयोज्य को एक खास तरह का पुरस्कार देगा (जैसे-रूप्या) जबकि दूसरी अवस्था में दूसरी तरह का (जैसे-शाबाशी) और फिर निरीक्षण करेगा कि किस

प्रकार के पुरस्कार का कैसा प्रभाव प्रयोज्य के अधिगम पर पड़ता है। इसे ही 'यह-वह' हस्तचालन की संज्ञा दी जाती है।

(iii) **'अधिक-कम' हस्तचालन-** जब शोधकर्ता को स्वतंत्र चर के विभिन्न स्तरों या मूल्यों का प्रभाव आश्रित चर पर देखना होता है तो वह प्रयोग की एक अवस्था में अधिक मूल्य का स्वतंत्र चर तथा दसरी अवस्था में कम मूल्य का स्वतंत्र चर प्रस्तुत करके उसके प्रभाव का निरीक्षण आश्रित चर पर करता है। पृष्ठोन्मुख अवरोध पर अति-अधिगम का प्रभाव इसका एक अच्छा उदाहरण है।

13.5 आश्रित चर

आश्रित चर वह चर होता है जिसके बारे में प्रयोगकर्ता कुछ पूर्वकथन करना चाहता है, जिस पर वह स्वतंत्र चर का प्रभाव देखना चाहता है। वह स्वतंत्र चर के मूल्य में परिवर्तन लाकर यह देखना चाहता है कि इस परिवर्तन का क्या प्रभाव आश्रित चर पर पड़ रहा है। वास्तव में, आश्रित वह चर होता है जिसे प्रयोगकर्ता सावधानीपूर्वक निरीक्षण करता है और उसे रेकार्ड करता है। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। मान लीजिए कि एक प्रयोगकर्ता शोर-गुल का प्रभाव व्यक्ति के अवसाद पर देखना चाहता है तो यहाँ शोरगुल स्वतंत्र चर होगा जिसका हस्तचालन प्रयोगकर्ता स्वयं करेगा, परन्तु अवसाद आश्रित चर होगा क्योंकि यह शो-गुल की मात्रा और अवधि से प्रभावित होगा। प्रयोगकर्ता व्यक्ति के अवसाद का मापन करके उसका स्तर नोट कर लेगा तथा फिर उसे कुछ दिनों तक शोर-गुंल वाली परिस्थिति में रखकर उसके अवसाद का मापन करके यह देखेगा कि किस प्रकार शोर-गुल से अवसाद में बृद्धि या कमी होती है। यहाँ प्रयोगकर्ता का काम अवसाद का निरीक्षण करना एवं उसे रिकार्ड करते चलना है। इसीलिए करलिंगर (1986) ने स्वतंत्र चर को एक पूर्व-कल्पित कारण तथा आश्रित चर को एक पूर्वकल्पित प्रभाव माना है।

कैण्टोविज तथा रोडिगर (1984) का मानना है कि एक अच्छे आश्रित चर में विश्वसनीयता तथा संगतता अधिक पाई जाती है। यदि पूर्व में किये गए प्रयोग को हु-ब-हु दोहराया जाय, यानी, दूसरी बार में भी वही प्रयोज्य हो, वही स्वतंत्र चर हो तथा वही डिजाइन हो तो आश्रित चर पर ठीक वही प्राप्तांक आयेगा जो पहले आया है। यही आश्रित चर की विश्वसनीयता एवं संगतता होती है और ऐसे आश्रित चर को एक अच्छा चर माना जाता है।

13.6 संगत चर या बहिरंग चर

प्रयोगात्मक परिस्थिति में स्वतंत्र चर की तरह के ही कुछ और चर होते हैं जिन्हें यदि प्रयोगकर्ता नियन्त्रित न करे तो वे आश्रित चर को प्रभावित कर सकते हैं। इस तरह के चर को संगत चर कहते हैं। प्रयोगकर्ता नियन्त्रण के विभिन्न उपायों के द्वारा संगत चर के प्रभाव को आश्रित चर पर पड़ने से रोकता है। संगत चर को बाह्य चर, बहिरंग चर या नियंत्रित चर भी कहते हैं। दरअसल, किसी भी आश्रित चर को प्रभावित करने वाले कई कारक हो

सकते हैं जो प्रयोगात्मक परिस्थिति में चर के रूप में कार्यरत होते हैं। इनमें से प्रयोगकर्ता जिनके प्रभाव का अध्ययन करना चाहता है उन्हें वह हस्तचालित करता है- अतः वैसा चर स्वतंत्र चर के रूप में कार्य करने लगता हैं। शेष चरों को प्रयोगकर्ता उस प्रयोगात्मक परिस्थिति में नियंत्रित कर लेता है ताकि उनका अनचाहा व अनावश्यक प्रभाव आश्रित चर पर न पड़े। यही नियंत्रित चर संगत चर या बाह्य चर कहलाते हैं। चूँकि ये सभी बाहर से आश्रित चर को प्रभावित करते हैं (यदि इन्हें नियंत्रित नहीं किया जाय तो) इसीलिए इन्हें बहिरंग चर भी कहते हैं। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। एक प्रयोगकर्ता अधिगम की प्रक्रिया का अध्ययन करना चाहता है। वह अधिगम पर पाठ्य-सामग्री के स्वरूप का प्रभाव देखना चाहता है। यहाँ पर अधिगम एक आश्रित चर होगा तथा पाठ्य-सामग्री का स्वरूप एक स्वतंत्र चर होगा। पाठ्य-सामग्री के अतिरिक्त अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक, जैसे- प्रयोज्य की उम्र, यौन, स्वास्थ्य, बुद्धि, कमरे का तापमान, शोरगुल, समय, सीखने की विधि, पाठ्य-सामग्री की लम्बाई आदि सभी बहिरंग या संगत चर हैं जिन्हें यदि नियंत्रित न किया जाय तो वे आश्रित चर, यानी, अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित कर सकते हैं, फलतः; प्रयोग की वैधता घट सकती है।

संगत चर का स्वरूप कई तरह का होता है। कुछ संगत चर प्रयोज्य से सम्बद्ध होते हैं, कुछ परिस्थिति से तथा कुछ प्रायोगिक अवस्थाओं से। इसी परिप्रेक्ष्य में संगत चरों को निम्नलिखित तीन प्रकारों में विभक्त किया गया हैं-

1. प्रयोज्य संगत चर
2. परिस्थितिगत संगत चर
3. अनुक्रम संगत चर

13.6.1 प्रयोज्य संगत चर-

वैसे संगत चर जो प्रयोज्य के व्यक्तिगत गुणों, जेसे- उम्र, यौन, बुद्धि, अभिप्रेरणा आदि, से सम्बन्धित होते हैं, प्रयोज्य संगत चर कहलाते हैं। इनमें से कुछ चर टाईप-एस श्रेणी के तथा कुछ टाईप-ई श्रेणी के होते हैं। यदि इन चरों को किसी प्रयोग या शोध में प्रयोगात्मक चर या स्वतंत्र चर के रूप में प्रयोग में नहीं लाया जाना हो तो इन्हें नियन्त्रित करना अत्यावश्यक होता है, वरना ये आश्रित चर पर अवांछित प्रभाव डाल सकते हैं।

13.6.2 परिस्थितिगत संगत चर-

वैसे संगत चर जो उन परिस्थितियों या पर्यावरण से सम्बन्धित होते हैं जिनमें प्रयोग या शोध किया जा रहा हो, परिस्थितिगत संगत चर कहलाते हैं। प्रयोग के समय वातावरण का तापमान, शोरगुल, प्रकाश, आर्द्रता आदि परिस्थितिगत संगत चर के रूप में प्रयोग या शोध को प्रभावित कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, प्रयोग के उपकरण, कार्य की प्रकृति आदि भी परिस्थितिगत चर या पर्यावरणीय चर के रूप में आश्रित चर को प्रभावित कर सकते हैं।

अतः प्रायोगिक परिस्थिति में प्रयोगकर्ता इन परिस्थितिगत या पर्यावरणीय संगत चरों को नियंत्रित करने का प्रयास करता है।

13.6.3 अनुक्रम संगत चर-

वैसे संगत चर जो प्रयोग की विभिन्न अवस्थाओं में एक ही प्रयोज्य या प्रयोज्य के एक ही समूह की जाँच करने से उत्पन्न होते हैं, अनुक्रम संगत चर कहलाते हैं। किसी भी प्रयोग में एक अवस्था के बाद दूसरी अवस्था, दूसरी के बाद तीसरी अवस्था आदि क्रम से आती रहती हैं और यदि इन अवस्थाओं में एक ही प्रयोज्य या प्रयोज्य-समूह को कार्यरत रखा जाय तो प्राप्त परिणाम अभ्यास, थकान आदि जैसे कारकों से प्रभावित हो सकते हैं। ऐसा विभिन्न अवस्थाओं के अनुक्रम के कारण होता है। उदाहरणस्वरूप, प्रथम अवस्था में प्रयोज्य जहाँ तरोताजा रहता है, अन्तिम अवस्था में वहीं थका-थका महसूस कर सकता है; इसी प्रकार, प्रथम अवस्था में प्रयोज्य प्रायोगिक परिस्थिति में नया रहता है जबकि अन्तिम अवस्था तक वह परिस्थिति से रू-ब-रू हो चुका होता है। स्पष्ट है कि विभिन्न प्रायोगिक अवस्थाएं परिस्थितिगत संगत चर के रूप में कार्य करते हैं और प्रयोगकर्ता इनके कुप्रभाव को रोकने के लिए उचित नियंत्रण का प्रयास करता है।

13.7 सारांश

- चर वह है जो स्थिर न रहे, जिसमें बदलाव हो, जिसका स्वभाव परिवर्तित होने वाला हो और सबसे बढ़कर, जो मापने योग्य हो।
- चरों का मापन परिमाणात्मक रूप में भी हो सकता है, गुणात्मक रूप में भी।
- चरों को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है- स्वतंत्र चर, आश्रित चर तथा बहिरंग या संगत चर।
- जिस स्वतंत्र चर में प्रयोगकर्ता जोड़-तोड़ या हस्तचालन करता है उसे प्रयोगात्मक चर भी कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है- टाइप-ई स्वतंत्र चर तथा 'टाइप-एस' स्वतंत्र चर।
- स्वतंत्र चर का हस्तचालन तीन तरीके से किया जाता है - हाँ-नहीं, यह-वह, अधिक-कम।
- बहिरंग चर के तीन प्रकार होते हैं- प्रयोज्य चर, परिस्थितिगत चर तथा अनुक्रम चर। इन चरों को संगत चर भी कहते हैं और यदि इन्हें नियंत्रित न किया जाय तो स्वतंत्र चर के साथ मिलकर प्रयोगात्मक परिस्थिति में आश्रित चर को प्रभावित कर सकते हैं।

13.8 शब्दावली

- **स्वतंत्र चर:** वह चर जिसके प्रभाव का अध्ययन प्रयोगकर्ता करना चाहता है और जिसमें जोड़-तोड़ करके उसके विभिन्न स्तर का मूल्य का निर्धारण प्रयोगकर्ता द्वारा किया जाता है, स्वतंत्र चर कहलाता है।
- **आश्रित चर**: वह चर जो स्वतंत्र चर से प्रभावित होता है और जिसे प्रयोगकर्ता प्रायोगिक परिस्थिति में मापता है, उसमें स्वतंत्र चर के विभिन्न स्तरों/मूल्यों के प्रभाव से आये बदलाव को रेकार्ड करता है, आश्रित चर कहलाता है।
- **बहिरंग चर:** वह चर जिन्हें प्रयोगात्मक परिस्थिति में स्वतंत्र चर के साथ मिलकर आश्रित चर को प्रभावित करने से प्रयोगकर्ता नियंत्रण विधियों का प्रयोग कर रोकता है, बहिरंग चर कहलाता है।

13.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1) व्यक्ति की जाति या धर्म किस प्रकार का चर है?

   (क) गुणात्मक (ख) परिमाणात्मक

2) एक शोधकर्ता व्यक्ति के अवसाद पर शोर-गुल के प्रभाव का अध्ययन करना चाहता है तो यहाँ-

   (i) शोर-गुल एक.....चर के रूप में कार्य करेगा।

   (ii) अवसाद एक..... चर के रूप में कार्य करेगा।

   (स्वतंत्र चर एवं आश्रित चर के परिप्रेक्ष्य में उत्तर दें)

उत्तर: 1. गुणात्मक 2. (i) स्वतंत्र चर (ii) आश्रित चर

13.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- अरूण कुमार सिंह (1998) मनोविज्ञान,समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल-बनारसीदास, दिल्ली।
- एच.के. कपिल (2001) अनुसंधान विधियां (व्यवहारपरक विज्ञानों में), एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।
- एफ.एन. करलिंगर (2002) फाउण्डेशन्स ऑफ विहैवियरल रिसर्च, हॉल्ट, रिनेहार्ट एवं विंसटन, इंक, न्यूयार्क।
- राम आहूजा (2009) रिसर्च मेथड्स, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।

13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. चर को परिभाषित करें। वैज्ञानिक शोध में चर के महत्व पर प्रकाश डालें।
2. स्वतंत्र चर किसे कहते है? 'टाइप-ई' और 'टाइप-एस' स्वतंत्र चर में अन्तर स्पष्ट करें। उदाहरण दें।
3. चर कितने प्रकार के होते है? बाह्य चरों का नियंत्रण क्यों आवश्यक है?
4. बहिरंग चरों के विभिन्न प्रकारों को उदाहरण के साथ समझायें।

इकाई 14. चरों का नियंत्रण
(Control of Variables)

इकाई संरचना

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 चरों का नियंत्रण
14.4 चरों के नियंत्रण की विधियां
14.4.1 विलोपन
14.4.2 संतुलन
14.4.3 प्रति संतुलन
14.4.4 स्थिरता
14.4.5 रूपान्तरण
14.4.6 यादृच्छीकरण
14.5 सारांश
14.6 शब्दावली
14.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
14.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
14.9 निबन्धात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

इकाई 13 में आपने चरों का अर्थ एवं चरों के प्रकार के सम्बन्ध में जानकारी हासिल की। आपने देखा कि किसी प्रकार स्वतंत्र चर को हस्तचालित कर आश्रित चर पर उसके प्रभाव का निरीक्षण किया जाता है। आपने यह भी जाना कि बहिरंग चर किस प्रकार स्वतंत्र चर के साथ मिलकर प्रयोगात्मक परिस्थिति में बाधा उत्पन्न करते हैं।

इस इकाई में आप बहिरंग चरों के नियंत्रण के विविध तरीकों से रू-ब-रू हो सकेंगे। आप जान सकेंगे कि प्रयोगात्मक प्रसरण को कम करने के लिए अनावश्यक चरों का नियंत्रण किन-किन विधियों द्वारा किया जा सकता है।

इस इकाई के अध्ययन से आपको यह लाभ होगा कि आप चरों के नियंत्रण की विभिन्न तकनीकों से भली-भांति परिचित हो सकेगें तथा किसी प्रायोगिक अध्ययन में इन बहिरंग चरों के अनावश्यक प्रभाव से स्वतंत्र चर को मुक्त रख सकेंगे।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप -

- चरों के नियंत्रण का अर्थ समझ सकेंगे।
- नियंत्रण के विभिन्न तरीकों को वर्गीकृत कर सकेंगे।
- बहिरंग चरों के स्वरूप के अनुरूप नियंत्रण की विधियों का प्रयोग कर सकेंगे तथा
- किसी प्रयोग की सही योजना बनाकर नियंत्रण की सही प्रविधियों के सहारे उपकल्पना को सत्यापित करने में सक्षम हो सकेंगे।

14.3 चरों का नियंत्रण

जब भी हम कोई शोध या अध्ययन करते हैं तो वहां हमें अनावश्यक चरों के प्रभाव को रोक देने की आवश्यकता पड़ती है। इसे ही चरों का नियंत्रण कहते हैं क्योंकि किसी भी प्रयोगकर्ता या शोधकर्ता का मुख्य उद्देश्य आश्रित चर पर स्वतंत्र चर के प्रभाव का अध्ययन करना होता है। स्वतंत्र चर के अतिरिक्त अन्य चरों को, जो आश्रित चर को प्रभावित कर सकते हैं, प्रयोगकर्ता नियंत्रित करने का प्रयास करता है ताकि उनसे उत्पन्न प्रसरण की मात्रा पर रोक लगाई जा सके। बहिरंग चरों के नियंत्रण से सभी अवांछित प्रसरण नियंत्रित हो जाते हैं जो वैसे चरों के प्रभाव से उत्पन्न होते हैं जिनके अध्ययन में शोधकर्ता की कोई रूचि नहीं होती।

अतः नियंत्रण का अर्थ इस ढंग से प्रयोग करना है कि प्राप्त परिणाम को निश्चित रूप से केवल प्रयोगात्मक चर या उस स्वतंत्र चर का प्रभाव माना जा सके जिसके प्रभाव को देखने के लिए प्रयोग किया गया है।

14.4 चरों के नियंत्रण की विधियां

जैसा कि ऊपर बताया गया, बहिरंग चर भी स्वतंत्र चर का ही रूप है, परनतु चूंकि शोधकर्ता इनके प्रभाव का अध्ययन नहीं करना चाहता, अतः वह इन्हें निम्नलिखित तरीकों से नियंत्रित करने का प्रयास करता है -

14.4.1 विलोपन -

विलोपन का अर्थ होता है हटा देना या निष्कासित कर देना। यह चरों के नियंत्रण की एक ऐसी विधि है जिसमें प्रयोगकर्ता बहिरंग चरों को प्रयोगात्मक परिस्थिति से निष्कासित कर देता है ताकि आश्रित चर पर उसका प्रभाव अपने आप ही विलुप्त हो जाय। उदाहरण स्वरूप, सीखने पर पाठ्य-विषय की लम्बाई का प्रभाव या विषय की सार्थकता का प्रभाव देखने के क्रम में यदि शोधकर्ता को लगे कि शोरगुल या तापमान आश्रित चर (सीखने) को प्रभावित कर सकता है तो वह ध्वनिनिरोधी (साउण्ड प्रूफ) तथा एयरकंडीशंड कमरा बनवाकर इन बहिरंग चरों को विलोपित कर सकता है। ऐसी स्थिति में शोरगुल या तापमान से उत्पन्न होने वाला प्रसरण अपने आप ही नियंत्रित हो जायेगा। इसी प्रकार, विस्मरण प्रयोग में यदि प्रयोगकर्ता विस्मरण पर पाठ की अति-अधिगम का प्रभाव देखना चाहता है तो यहाँ पाठ की अर्थपूर्णता एक बहिरंग चर के रूप में विस्मरण को प्रभावित कर सकता है। परन्तु यदि प्रयोगकर्ता अधिगम सामग्री के रूप में निरर्थक पदों का प्रयोग करता है तो चह पाठ की अर्थपूर्णता जैसे बहिरंग चर को प्रायोगिक परिस्थिति से स्वतः ही विलोपित करके बहिरंग चर को नियंत्रित कर सकता है। इस प्रकार, विलोपन बहिरंग चरों के नियंत्रण की एक ऐसी विधि है जिसमें बहिरंग चर को प्रायोगिक परिस्थिति से निष्कासित करके उसके कुप्रभाव से बचा जाता है।

14.4.2 संतुलन-

संतुलन से तात्पर्य विभिन्न प्रयोगात्मक अवस्थाओं में बहिरंग चरों का प्रभाव समान रूप से पड़ने देने से है। यानी, स्वतंत्र चर के अतिरिक्त जो भी चर प्रयोगात्मक परिस्थिति में आश्रित चर को प्रभावित कर सकता है उसे प्रयोग की सभी अवस्थाओं में समान रूप से प्रभावित करने हेतु छोड़ दिया जाता है तथा स्वतंत्र चर को जिस अवस्था में प्रस्तुत करना होता है प्रस्तुत कर दिया जाता है। चूँकि, बहिरंग चर हर अवस्था में प्रस्तुत था, अतः यदि इसका कोई प्रभाव आश्रित चर पर पड़ा तो हरेक अवस्था में पड़ा न कि किसी खास अवस्था में। ऐसी स्थिति में बहिरंग चरों का प्रभाव अपने आप संतुलित होकर समाप्त हो जाता है और स्वतंत्र चर का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगता है। इसे निम्नलिखित चित्र से समझा जा सकता है-

अवस्था-1 (प्रायोगिक अवस्था)	बहिरंग चर-अ बहिरंग चर-ब स्वतंत्र चर की धनात्मक मात्रा	आश्रित चर
	बहिरंग चर-अ	

अवस्था-2	बहिरंग चर-ब	आश्रित चर
(नियंत्रित अवस्था)	स्वतंत्र चर की शून्य मात्रा	

उपर्युक्त चित्र में अवस्था-1 तथा अवस्था - 2 दोनों ही में दो बहिरंग चर (अ और ब) उपस्थित हैं जबकि स्वतंत्र चर को सिर्फ अवस्था-1 में प्रस्तुत किया गया है, अवस्था-2 में इसकी मात्रा शून्य है, यानी इसकी प्रस्तुति नहीं है। अब यदि अवस्था-1 और अवस्था-2 में आश्रित चर की मात्रा के स्तर में कोई परिवर्तन दिखाई पड़ता है तो निश्चित रूप से यह स्वतंत्र चर की प्रस्तुति के प्रभाव के कारण होगा जो कि अवस्था 1 में प्रस्तुत किया गया था। बहिरंग चरों के नियंत्रण की यही विधि संतुलन विधि कहलाती है। इसे एक उदाहरण द्वारा भी समझा जा सकता है। मान लीजिए, एक प्रयोगकर्ता संवेगात्मक परिपक्वता पर उम्र के प्रभाव का अध्ययन करना चाहता है। परन्तु उसे पता है कि इस अध्ययन में यौन एक महत्वपूर्ण बहिरंग चर है जो व्यक्ति की संवेगात्मक परिपक्वता को प्रभावित करता है। अतः प्रयोगकर्ता इसे संतुलन विधि के द्वारा नियंत्रित कर सकता है। वह यदि उम्र का हस्तचालन प्रयोज्यों के तीन उम्र वर्ग का चयन करके करना चाहता है (जैसे -10-15 वर्ष, 15-20 वर्ष, 20-25 वर्ष) तो इन तीनों ही उम्र वर्ग के प्रयोज्य एक ही यौन का रखकर अध्ययन करने पर बहिरंग चर ''यौन'' स्वतः ही संतुलन द्वारा नियंत्रित हो जायेगा। परन्तु, यदि अध्ययन ऐसा है जिसमें दोनों ही यौन के प्रयोज्यों को सम्मिलित किया जाना आवश्यक है तो शोधकर्ता सभी समूह में दोनों ही यौनके सदस्यों की बराबर-बराबर संख्या का चयन करके यौन के प्रभाव को संतुलित कर सकता है। इस प्रकार, संतुलन चरों के नियंत्रण की एक ऐसी विधि है जिसमें नियंत्रित किए जाने वाले सभी चरों को प्रयोग की प्रत्येक अवस्था में कार्यरत करके उनके प्रभाव को नियंत्रित कर लिया जाता है और तब शोधकर्ता को स्वतंत्र चर का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगता है। संतुलन द्वारा चरों के नियंत्रण में शोधकर्ता को प्रयोगात्मक समूह के साथ-साथ नियंत्रित समूह का निर्माण करना भी आवश्यक हो जाता है तथा प्रत्येक समूह के सभी प्रयोज्य को प्रारंभिक तौर पर तुल्य रखना होता है।

14.4.3 प्रति संतुलन -

प्रतिसंतुलन बहिरंग चरों के नियंत्रण की एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा एक से अधिक प्रयोगात्मक अवस्थाओं से उत्पन्न अनुक्रम संगत चरों को नियंत्रित किया जाता है। यदि किसी प्रयोग में एक से अधिक प्रयोगात्मक अवस्थाएं हैं और प्रत्येक अवस्था में एक ही प्रयोज्य या प्रयोज्य का एक ही समूह कार्यरत है तो इसमें दो तरह के क्रम प्रभाव उत्पन्न होने की संभावना है- अभ्यास प्रभाव तथा थकान प्रभाव। ऐसा संभव है कि जब प्रयोज्य प्रयोगात्मक अवस्था 'ए' से प्रयोगात्मक अवस्था 'बी' में कार्य करना प्रारंभ करें, तो अभ्यास प्रभाव के कारण प्रयोगात्मक अवस्था 'बी' में उसका निष्पादन अर्थात् आश्रित चर पर इसका प्राप्तांक पहले से अधिक हो जाय या यह भी संभव है कि थकान प्रभाव के कारण उसका निष्पादन प्रयोगात्मक अवस्था 'बी' में पहले की तुलना में

कम हो जाय। अतः थकान और अभ्यास के प्रभाव को कम करने के लिए प्रति संतुलन विधि का सहारा लिया जाता है और 'A' तथा 'B' दोनों ही अवस्थाओं के प्रयासों को आधा-आधा कर ''A-B-B-A'' क्रम में प्रस्तुत करके बहिरंग या संगत चरों को नियंत्रित कर लिया जाता है। प्रति संतुलन द्वारा अभ्यास और थकान का प्रभाव चूंकि प्रत्येक प्रयोगात्मक अवस्था में समान रूप से पड़ता है, अतः प्रभाव अपने-आप नियंत्रित हो जाता है।

यहाँ यह भी उललेखनीय है कि प्रतिसंतुलन का बहिरंग चरों के नियंत्रण विधि के रूप में तभी प्रयोग किया जाना चाहिए जब प्रयोगात्मक अवस्था A से प्रयोगात्मक अवस्था B में होने वाला अन्तरण प्रतिसम न होकर अप्रतिसम हो। प्रतिसम अन्तरण तथा अप्रतिसम अन्तरण का एक-एक उदाहरण नीचे की तालिका में दिया गया है–

प्रयोगात्मक अवस्था A तथा B के बीच प्रतिसम अन्तरण तथा अप्रतिसम अन्तरण का नमूना

प्रयोज्यों की संख्या **(N = 10)**	प्रतिसम अन्तरण	अप्रतिसम अन्तरण
प्रयोज्यों की कुल संख्या का आधा (N = 5)	A B अन्तर 7 9 2	A B अन्तर 7 9 2
प्रयोज्यों की कुल संख्या का आधा (N = 5)	4 6 2	4 8 4

ऊपर की तालिका से स्पष्ट है कि इसमें प्रयोज्यों की कुल संख्या 10 है जिसे दो भागों में बराबर-बराबर की संख्या में बांटा गया है। प्रत्येक भाग के प्रत्येक प्रयोज्य को दोनों प्रयोगात्मक अवस्थाओं (Aतथा B) में कार्यरत रखा गया है। तालिका से स्पष्ट है कि जब प्रयोज्यों को A अवस्था में पहले रखा गया तो उसे आश्रित चर पर 7 प्राप्तांक आया तथा बाद के B अवस्था में 9 प्राप्तांक आया। दोनों का अन्तर 9-7 = 2 आया। दूसरी तरफ बाकी आधे प्रयोज्यों का प्राप्तांक A अवस्था में 4 तथा B अवस्था में 6 आया। यहां भी अन्त 6 - 4 = 2 का है। अतः दोनों समूहों के लिए अवस्था A से B में प्राप्तांक का अन्तर 2-2 था। यह स्पष्टतः एक प्रतिसम अन्तरण का उदाहरण है। परन्तु तालिका के दायें कोने में अप्रतिसम अनतरण को दिखलाया गया है। तालिका से स्पष्ट है कि प्रयोज्यों के आधे समूह द्वारा A तथा B में 2 प्राप्तांक का अन्तर है परन्तु बाकी आधे प्रयोज्यों के लिए A से B में 4 प्राप्तांक का अन्तर है जो स्पष्टतः अप्रतिसम अन्तरण को बतला रहा है। प्रतिसंतुलन का उपयोग ऐसी ही परिस्थितियों में किया जाता है जहां अप्रतिसम अन्तरण की संभावना होती है।

प्रतिसंतुलन द्वारा किस ढंग से अभ्यास प्रभाव तथा थकान प्रभाव जैसे बहिरंग चरों का नियंत्रण होता है? इसे एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझाया जा सकता है - मान लिया जाय कि कोई शोधकर्ता परिणाम ज्ञान का प्रभाव रेखा-आरेखण कार्य पर क्या पड़ता है, यह अध्ययन करना चाहता है।यह मान भी लिया जाय कि इसके लिए वह 10 प्रयोज्यों का यादृच्छिक ढंग से चयन करता है तथा इस अध्ययन में दो प्रयोगात्मक अवस्थाएं नी गई है। एक प्रयोगात्मक अवस्था वह है जिसमें प्रयोज्यों को अपने कार्य का परिणाम ज्ञान दिया जाता है (प्रयोगात्मक अवस्था A) तथा दूसरी प्रयोगात्मक अवस्था वह है जिसमें प्रयोज्यों को अपने कार्य का परिणाम ज्ञान नहीं दिया जाता है (प्रयोगात्मक अवस्था B)। इस प्रयोग में स्पष्ट है कि चूंकि प्रयोज्यों का एक ही समूह दोनों अवस्थाओं अर्थात A एवं B में कार्यरत है, अतः अभ्यास प्रभाव तथा थकान प्रभाव हो सकते हैं। इन दोनों तरह के बहिरंग चरों को नियंत्रित करने का एक नमूना नीचे की तालिका में प्रस्तुत किया गया है।

बहिरंग चरों का प्रतिसंतुलन द्वारा नियंत्रण

प्रयोज्यों का वितरण	प्रायोगिक अवस्थाएं	
कुल प्रयोज्यों की आधी संख्या (N = 5)	WKR	KR
प्रयोज्यों की बाकी आधी संख्या (N = 5)	KR	WKR

WKR = बिना परिणाम ज्ञान के

KR = परिणाम का ज्ञान

ऊपर की तालिका से स्पष्ट है कि दोनों प्रयोगात्मक अवस्थाएं A और B प्रत्येक प्रयोज्य को समान संख्या में (अर्थात दो-दो बार) दी गयी हैं तथा प्रत्येक अवस्था समान संख्या में प्रत्येक सत्र में रखी गयी है। इसके अलावा प्रत्येक अवस्था एक-दूसरे से आगे एवं पीछे समान संख्या में दी गई है। इस तरह से स्पष्ट है कि प्रति संतुलन के लिए निम्नांकित तीन नियमों का पालन किया जाना आवश्यक है -

(i) प्रत्येक प्रयोगात्मक अवस्था प्रत्येक प्रयोज्य को समान संख्या में दी जानी चाहिए।

(ii) प्रत्येक प्रयोगात्मक अवस्था की संख्या प्रत्येक अभ्यास सत्र में एक समान होनी चाहिए।

(iii) प्रत्येक प्रयोगात्मक अवस्था एक-दूसरे के आगे और पीछे समान रूप से हो।

यहाँ हम आपको प्रतिसंतुलन तथा संतुलन में अन्तर भी बता देना उचित समझते हैं क्योंकि दोनों में समानता अधिक होने से कभी-कभी पाठक इन दोनों को एक ही समझने की भूल कर सकते हैं। दरअसल, प्रतिसंतुलन का प्रयोग वहां किया जाता है जहां प्रत्येक प्रयोज्य काक एक से अधिक प्रयोगात्मक अवस्थाओं में कार्यरत रहना पड़ता है और जहां प्रयोगकर्ता का प्रयास यह रहता है कि क्रम प्रभाव अर्थात् अभ्यास प्रभाव तथा

थकान प्रभाव का प्रभाव सभी प्रयोगात्मक अवस्थाओं में समान रूप से वितरित हो ताकि इसका प्रभाव आश्रित चर पर कोई विशिष्ट अन्तर न उत्पन्न कर दें। संतुलन का उपयोग वैसी परिस्थिति में किया जाता है जहां प्रत्येक प्रयोज्य को किसी एक ही अवस्था का विवेचन मिलता है, अर्थात् प्रत्येक प्रयोज्य को किसी एक ही अवस्था में रखा जाता है परन्तु बहिरंग चरों के प्रभाव को समान रूप से सभी प्रयोगात्मक समूह एवं नियंत्रित समूह पर पड़ने दिया जाता है। ऐसा करने से बहिरंग चरों का प्रभाव अपने आप संतुलित होकर प्रभावहीन हो जाता है।

14.4.4 स्थिरता -

जब बहिरंग चरों को शोध या प्रयोगात्मक परिस्थिति में विलोपित करके नियंत्रित करना संभव नहीं होता है, तो उसके मान को सभी अवस्थाओं में एक समान रखकर अर्थात उसमें स्थिरता लाकर हम उसके प्रभावों को नियंत्रित कर लेते हैं। दूसरे शब्दों में नियंत्रण की इस विधि में सभी प्रयोज्य को बहिरंग चर के एक ही मान से सामना कराया जाता है ताकि उसका पड़ने वाला प्रभाव सभी प्रयोज्यों पर एक समान हो। उदाहरणस्वरूप, यदि कोई प्रयोग ऐसा है जिसमें 10 प्रयोज्य हैं, तो उन सभी को एक ही कमरे में बैठाकर यदि प्रयोग किया जाता है, तो इसमें कुछ बहिरंग चर जैसे कमरे की दिवाल का रंग, कमरे में रखे फर्नीचर तथा कमरा का अन्य तड़क-भड़क का प्रभाव सभी प्रयोज्य पर एक समान पड़ेगा। अतः इन चरों से आश्रित चर में होने वाला परिवर्तन सभी प्रयोज्यों के लिए एक समान होगा। फलतः उनके प्रभाव से शोध के अन्तिम परिणाम में कोई विभेद नहीं होगा। परन्तु कुछ प्रयोज्यों को एक कमरे में तथा कुछ प्रयोज्यों को दूसरे कमरे में बैठाकर जब प्रयोग किया जाता है, तो संभव है, उपर्युक्त बहिरंग चर इन दोनों अवस्थाओं के लिए समान या समरूप न हों और तब उससे आश्रित चर में इस विभिन्नता के कारण अन्तर हो सकता है। उसी तरह कुछ जैविक चर जैसे प्रयोज्यों के यौन, उम्र, बुद्धि आदि कभी किसी-किसी प्रयोग में महत्वपूर्ण बहिरंग चर के रूप में उपस्थित होते हैं। ऐसे जैविक बहिरंग चरों को नियंत्रित करने के लिए शोधकर्ता सिर्फ उन प्रयोज्यों को चुनता है जो विशेष बहिरंग चर पर समान हो। जैसे, यदि सभी प्रयोज्य एक ही यौन के हों अर्थात पुरूष हों या स्त्री, तो स्वभावतः यौन का प्रभाव अपने आप निंयत्रित हो जायेगा। उसी ढंग से यदि सभी प्रयोज्यों की उम्र सीमा समान हो, जैसे, 14-16 वर्ष के उम्र के ही प्रयोज्यों को अध्ययन में रखा जाय तो उससे उम्र का प्रभाव अपने आप नियंत्रित हो जायेगा। उसी ढंग से बुद्धि के भी प्रभाव को नियंत्रित किया जा सकता है। यदि शोध ऐसा है जिसमें दो या दो से अधिक समूह भाग लेंगे तो प्रत्येक समूह में समान बुद्धि लब्धि के प्रयोज्यों को रखकर समुलित समूह तैयार कर लिया जोयगा। इस प्रक्रिया को मिलान की प्रक्रिया कहा जाता है। उसी तरह से उपकरण से संबंधित बहिरंग चरों को निंयत्रित करने के लिए यह आवश्यक है कि सभी प्रयोज्यों की अनुक्रियाओं को एक ही उपकरण द्वारा रिकार्ड किया जाय तथा सभी प्रयोगात्मक अवस्थाओं में समरूप उपकरण का प्रयोग किया जाय। ऐसी परिस्थिति में प्रयोगकर्ता विश्वास के साथ कह सकता है कि आश्रित चर में होने वाला परिवर्तन स्वतंत्र चर में किए गए जोड़-तोड़ के फलस्वरूप हुआ है।

14.4.5 रूपान्तरण -

बहिरंग चर के अवांछित प्रभाव को नियंत्रित करने का एक सीधा तरीका यह है कि उसे प्रयोग या शोध में एक स्वतंत्र चर के रूप में बदलकर उपयोग किया जाए। ऐसी अवस्था में बहिरंग चर का अस्तित्व ही खत्म हो जायेगा और साथ ही प्रयोगकर्ता या शोधकर्ता आश्रित चर के पड़ने वाले प्रभाव का ही विश्लेषण कर पायेगा। उदाहरणस्वरूप, मान लिया जाय कि कोई शोधकर्ता या प्रयोगकर्ता मद्यपान का प्रभाव टाइपिंग की गति पर क्या पडता है, यह देखना चाहता है। इसके लिए मान लिया जाय कि वह 20 प्रयोज्यों का चयन करता है जो समान उम्र, एक ही यौन तथा समान बुद्धि लब्धि के हैं। इनमें से 10 प्रयोज्यों को अल्कोहल पीने के 2 घंटे के बाद टाइपराइटर पर टाइप करने के लिए कहा जा सकता है। बाकी 10 प्रयोज्यों का दूसरा समूह बिना अल्कोहल लिए ही टाइपराइटर पर टाइप करने के लिए उसी समय बैठाया जा सकता है। इस प्रयोगात्मक परिस्थिति में एक महत्वपूर्ण बहिरंग चर टाईपराइटर का प्रकार है जिसमें आश्रित चर अर्थात् टाइपिंग की गति पभावित हो सकती है। सामान्यतः टाइपराइटर के दो प्रकार होते हैं - वैद्युत टाइपराइटर तथा मैन्युअल टाइपराइटर। जिस समूह को पहले प्रकार के टाइपराइटर पर टाइप करने के लिए कहा जायेगा स्वभावतः उसकी टाइपिंग गति उस समूह की अपेक्षा जिसे दूसरे प्रकार का टाइपराइटर दिया जायेगा, अधिक होगी। इस बहिरंग चर के प्रभाव को अर्थात टाइपराइटर के अन्तर के प्रभाव को अध्ययन में एक स्वतंत्र चर के रूप में बदल कर नियंत्रित किया जा सकता है। ऐसी परिस्थिति में प्रयोग के दो उद्देश्य हो जायेंगे- पहला, टाइपिंग गति पर अल्कोहल के प्रभाव का अध्ययन करना तथा दूसरा, टाइपिंग गति पर टाइपराइटर के अन्तरों के प्रभावों का अध्ययन करना। इस तरह से प्रयोग में अब दो समूह अर्थात अल्कोहल पीने वाला समूह (N = 10) और अल्कोहल नहीं पीने वाला (N = 10) समूह की जगह पर चार समूह हो जायेंगे जो नीचे की तालिका में प्रदर्शित है –

दो समूह डिजाइन का चार-समूह डिजाइन में रूपान्तरण

समूह A (मध्यपान करने वाला)	समूह B (मध्यपान नहीं करने वाला)
प्रयोज्य	प्रयोज्य

दो समूह डिजाइन

	समूह A (मध्यपान करने वाला)	समूह B (मध्यपान नहीं करने वाला)
वैद्युत टाइपराईटर	5 प्रयोज्य	5 प्रयोज्य
मैन्युअल टाइपराईटर	5 प्रयोज्य	5 प्रयोज्य

चार समूह डिजाइन

दो समूह डिजाइन में प्रयोगकर्ता समूह A तथा समूह B के माध्य की तुलना करके एक निष्कर्ष पर पहुंचेगा। इस डिजाइन में अल्कोहल का पीना स्वतंत्र चर है, टाइपिंग की गति आश्रित चर है तथा टाइपराइटर का प्रकार अर्थात् टाइपराइटर अन्तर प्रमुख बहिरंग चर है। चार समूह डिजाइन में प्रयोगकर्ता इस बहिरंग चर को अर्थात् टाइपराइटर के अन्तर को भी एक स्वतंत्र चर के रूप में बदल देता है। इसके परिणामस्वरूप अब प्रयोगकर्ता को चार माध्य ज्ञात करने होंगे - समूह A का माध्य, समूह B का माध्य, वैद्युत टाइपराइटर पर टाइप करने वाले समूह का माध्य तथा मैन्यूअल टाइपराइटर पर टाईप करने वाले समूह का माध्य। प्रथम माध्यों के अन्तर द्वारा टाईपिंग गति पर अल्कोहल के प्रभाव का पता चलेगा तथा अन्तिम दो माध्यों में अन्तर द्वारा टाइपिंग गति पर टाइपराइटर के अन्तरों का पता चलेगा।

14.4.6 यादृच्छीकरण-

बहिरंग चरों को नियंत्रित करने की उपर्युक्त पांच विधियों में किसी भी विधि का उपयोग जब किसी भी कारण से संभव नहीं हो तो, वैसी परिस्थिति में उन चरों का नियंत्रण यादृच्छीकरण की प्रविधि से किया जाता है। यादृच्छीकरण एक ऐसी प्रविधि है जिसमें किसी भी जीव (मनुष्य या पशु) को अध्ययन समूह में चुने जाने की संभावना बराबर-बराबर होती है। उदाहरणस्वरूप, मान लिया जाय कि किसी वर्ग में 3 छात्र हैं जिनमें से हमें 20 छात्रों का चयन यादृच्छिक ढंग से करना है। इसके लिए सबसे सरल तरीका यह होगा कि 30 छात्रों का नाम समान कागज के टुकड़ों पर लिखकर उसे समान ढंग से मोड़ दिया जाय और सभी को एक बाक्स या डिब्बे में रखकर तथा उसे हिलाडुलाकर मिश्रित कर दिया जाय। उसके बाद उसमें से एक-एक करके 20 कागज के टुकड़ों को निकाल लिया जाय। यह एक यादृच्छीकरण का उदाहरण है क्योंकि इसमें जब भी प्रयोगकर्ता बाक्स में कागज के किसी टुकड़ें को चुनने का प्रयत्न करता है, उस समय बाक्स में उपस्थित सभी टुकड़ों को चुने जाने की

संभावना बराबर-बराबर होती है। यादृच्छीकरण की अन्य विधियां भी हैं, जिनमें यादृच्छिक संख्या के टेबुल का उपयोग एक महत्वपूर्ण विधि है।

प्रयोग या शोध में यादृच्छीकरण की प्रक्रिया में सिर्फ प्रयोज्यों का ही चयन यादृच्छिक ढंग से नहीं किया जाता है बल्कि उन्हें प्रयोगात्मक अवस्था तथा नियंत्रित अवस्था में यादृच्छिक ढंग से आवंटित भी किया जाता है। यादृच्छीकरण की पूरी प्रक्रिया सम्पन्न होने पर सभी ज्ञात तथा अज्ञात बहिरंग चर प्रयोज्यों एवं विभिन्न अवस्थाओं को समान रूप से प्रभावित करते समझे जाते हैं। अतः उन सबों का प्रभाव स्वतंत्र चर पर यदि कुछ होता भी है, तो समान रूप से होता है। इसका शुद्ध परिणाम यह होता है कि बहिरंग चर का प्रभाव अपने आप निंयत्रित हो जाता है। यादृच्छीकरण की महत्ता पर टिप्पणी करते हुए मैकगगन ने कहा है, ''यादृच्छीकरण का महत्व यह है कि वह बहिरंग प्रभावों को, चाहे वे जैसे भी हों, यादृच्छिक ढंग से प्रयोगात्मक तथा नियंत्रित अवस्थाओं में बांट देता है। चाहे आप विशेष बहिरंग चरों को पहचान किये हों या न किये हों, इसका ऐसा ही संतुलनकारी प्रभाव होता है क्योंकि इसमें अज्ञात एवं अविशिष्ट बहिरंग चरों का प्रभाव सभी परिस्थितियों में समान रूप से वितरित हो जाता है।''

यादृच्छीकरण का एक उदाहरण हम इस प्रकार दे सकते हैं - मान लिया जाय कि किसी प्रयोग या शोध में प्रयोकर्ता यह अध्ययन करना चाहता है कि सीखने की प्रक्रिया सीखने की विभिन्न विधियों से किस प्रकार प्रभावित होती है। मान लिया जाय कि ऐसी विधियां तीन हैं, जिनके प्रभावों का वह अध्ययन करना चाहता है - विधि A, विधि B तथा विधि C । इस अध्ययन में विधि स्वतंत्र चर है तथा सीखने की प्रक्रिया आश्रित चर है एवं प्रयोज्यों के उम्र, यौन, बुद्धि, शौक्षिक स्तर आदि बहिरंग चर के उदाहरण हैं। मान लिया जाय कि प्रयोगकर्ता 30 छात्रों के समूह का यादृच्छिक ढंग से किसी विद्यालय से चयन करता है। इस अवस्था में तीन प्रयोगात्मक अवस्थाएं हैं क्योंकि तीन विधियां हैं, जिनके प्रभावों का अध्ययन करना है। अब प्रयोगकर्ता 30 यादृच्छिक ढंग से चुने गये छात्रों को तीन प्रायोगिक अवस्थाओं में यादृच्छिक ढंग से आवंटित करके प्रयोग की कारवाई शुरू करेगा। प्रयोज्यों का चयन यादृच्छिक ढंग से करने से तथा उनका विभिन्न अवस्थाओं में यादृच्छिक आवंटन करने से प्रयोज्यों के बीच उम्र, यौन, बुद्धि, शैक्षिक स्तर आदि बहिरंग चरों से उत्पन्न वैयक्तिक विभिन्नता सामान्यतः साम्य हो जाता है और तब उनका प्रभाव आश्रित चर पर विशिष्ट रूप से नहीं पड़ पाता है।

14.5 सारांश

- चरों के नियंत्रण से तात्पर्य प्रयोगात्मक परिस्थिति में उन बहिरंग चरों के प्रभावों को नियंत्रण में रखने से है जो अनावश्यक रूप से स्वतंत्र चर के साथ मिलकर आश्रित चर को प्रभावित करते हैं।

- चरों का नियंत्रण निम्नलिखित छः विधियों द्वारा किया जाता है - विलोपन, संतुलन, प्रति-संतुलन, स्थिरता, रूपान्तरण एवं यादृच्छीकरण।

14.6 शब्दावली

- **विलोपन:** चरों के नियंत्रण की ऐसी विधि जिसमें प्रयोगकर्ता बहिरंग चरों को प्रयोगात्मक परिस्थिति से निष्कासित कर देता है ताकि उसका प्रभाव स्वतः ही विलुप्त हो जाय।
- **संतुलन:** संतुलन से तात्पर्य विभिन्न प्रयोगात्मक अवस्थाओं में बहिरंग चरों का प्रभाव समान रूप से पड़ने देने से है।
- **रूपान्तरण:** जब बहिरंग चरों को स्वतंत्र चर में परिवर्तित करके उसके अवांछित प्रभाव को नियंत्रित किया जाता है तो उसे रूपान्तरण कहते हैं।

14.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. किसी प्रयोग में जब 'A' और 'B' दोनों ही अवस्थाओं के प्रयासों को अधा-आधा कर ABBA क्रम में प्रस्तुत करके थकान और अभ्यास के प्रभाव को नियंत्रित किया जाता है तो नियंत्रण की इस विधि को क्या कहते हैं?
2. चरों के नियंत्रण की किस विधि में बहिरंग चर को स्वतंत्र चर में बदलकर उपयोग में लाया जाता है?

उत्तर: 1. प्रतिसंतुलन 2. रूपान्तरण

14.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- अरूण कुमार सिंह (1998) मनोविज्ञान,समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल-बनारसीदास, दिल्ली।
- एच.के. कपिल (2001) अनुसंधान विधियां (व्यवहारपरक विज्ञानों में), एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।
- एफ.एन. करलिंगर (2002) फाउण्डेशन्स ऑफ विहैवियरल रिसर्च, हॉल्ट, रिनेहार्ट एवं विंसटन, इंक, न्यूयार्क।
- राम आहूजा (2009) रिसर्च मेथड्स, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर

14.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. चरों के नियंत्रण से आप क्या समझते हैं? नियंत्रण की विभिन्न विधियों का संक्षिप्त वर्णन करें।
2. प्रति संतुलन के द्वारा बहिरंग चरों का नियंत्रण किन परिस्थितियों में और कैसे होता है? उदाहरण देकर बतायें।

इकाई 15. मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का स्वरूप एवं प्रकार
(Nature and Types of Psychological Tests)

इकाई संरचना

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 मनोवैज्ञानिक परीक्षण का स्वरूप

15.3.1 एक अच्छे मनोवैज्ञानिक परीक्षण की विशेषताएँ

15.4 मनोवैज्ञनिक परीक्षण के प्रकार

15.4.1 परीक्षण प्रशासन की शर्तों की कसौटी

15.4.2 अंकन की कसौटी

15.4.3 अनुक्रिया से सम्बद्ध समय सीमा की कसौटी

15.4.4 एकांशों के स्वरूप की कसौटी

15.4.5 मानकीकरण की कसौटी

15.4.6 उद्देश्य की कसौटी

15.5 सारांश

15.6 शब्दावली

15.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

15.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

15.9 निबन्धात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आपने चर के विषय में जानकारी प्राप्त की और इसके महत्व का अध्ययन किया। आपने यह भी देखा कि किस प्रकार किसी शोध में, खासकर प्रयोगात्मक शोध में, चरों का हस्तचालन एवं नियंत्रण किया जाता है। आपने आश्रित चर के निरीक्षण एवं मापन के बारे में भी पढ़ा।

प्रस्तुत इकाई में चरों के मापन में उपयोगी एवं अत्यन्त ही लोकप्रिय तकनीक के रूप में विख्यात मनोवैज्ञानिक परीक्षण के बारे में आप जानकारी प्राप्त करेंगे और यह भी देखेंगे कि मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के विभिन्न प्रकारों का आधार क्या है, यानी, किन-किन कसौटियों के आधार पर मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के विभिन्न रूप विकसित हुए हैं।

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की जानकारी एवं इनके विभिन्न प्रकारों का ज्ञान जहां आपको चरों के मापन में इनके उपयोग में सहायता प्रदान करेगा वही मापनी के रूप में परीक्षण के निर्माण एवं विकास मं भी आपका मार्गदर्शन करेगा।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप -

- मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के स्वरूप पर प्रकाश डाल सकें।
- मनोवैज्ञानिक परीक्षण को परिभाषित कर उसकी विशेषताऐं बतला सकें।
- मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रकार की विभिन्न कसौटियों को रेखांकित कर सकें तथा
- विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में अन्तर स्पष्ट कर सकें।

15.3 मनोवैज्ञानिक परीक्षण का स्वरूप

परीक्षण का अर्थ जाँच है। बुखार आ जाने पर थर्मामीटर से शरीर का तापक्रम जाँचते हैं, शरीर में बीमारी होने पर डाक्टर सामान्य स्वास्थ्य की जाँच तो करता ही है, जरूरत पड़ने पर मल-मूत्र खून आदि की जाँच भी करवाता है। यहाँ जो जाँच होती है वह किसी-न-किसी उपकरण या मशीन द्वारा होती है। परन्तु, मनोविज्ञान, शिक्षा,समाजशास्त्र आदि के क्षेत्रों में व्यक्ति के आन्तरिक गुणों की जाँच की जाती है, उसके व्यक्तित्व की विशेषताओं की जाँच की जाती है, उसके सामाजिक पहलुओं की जाँच की जाती है। यहाँ जो जाँच की जाती है उसे मनोवैज्ञानिक परीक्षण की संज्ञा दी जाती है क्योंकि यहाँ जाँच किसी मशीन द्वारा नहीं होती, बल्कि शाब्दिक या अशाब्दिक प्रतिक्रियाओं या अनुक्रियाओं के माध्यम से होती है, प्रश्नों की श्रृंखलाओं के माध्यम से होती है। इसीलिए परीक्षण का शब्दकोशीय अर्थ प्रश्नों की एक ऐसी श्रृंखला है जिसके आधार पर कुछ सूचनाएं इकट्ठा की जाती हैं। इस आधार पर यदि हम किसी मनोवैज्ञानिक परीक्षण को परिभाषित करें तो हम कह सकते हैं कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण एक ऐसी मानकीकृत प्रविधि है जिसके द्वारा व्यक्ति के एक या एक से अधिक मनोवैज्ञानिक गुणों का गुणात्मक या परिमाणात्मक ढंग से कुछ शाब्दिक या अशाब्दिक अनुक्रियाओं के माध्यम से मापन होता है। इसे और स्पष्ट करते हुए बीन (1953) नामक मनोवैज्ञानिक ने कहा है- ''मनोवैज्ञानिक परीक्षण उद्धीपनों का एक ऐसा संगठित अनुक्रम है जो कुछ मानसिक प्रक्रियाओं, शीलगुणों या विशेषताओं का गुणात्मक मूल्यांकन

करने अथवा परिमाणात्मक ढंग से मापने हेतु बनाया जाता है। '' फ्रीमैन (1965) नामक मनोवैज्ञानिक ने मनोवैज्ञानिक परीक्षण को एक मानकीकृत उपकरण बताया है जो शाब्दिक या अशाब्दिक अनुक्रियाओं या अन्य व्यवहारों के सहारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व के एक या अधिक पहलुओं को वस्तुनिष्ठ रूप में मापता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण (क) एक मानकीकृत परीक्षण है जिसमें विश्वसनीयता, वैधता, प्राप्तांक-लेखन में वस्तुनिष्ठता आदि के गुण पाये जाते हैं, (ख) इसके द्वारा दो या दो से अधिक व्यक्तियों की तुलना किसी भी शीलगुण या मानसिक प्रक्रिया के एक या अनेक पहलुओं पर की जाती है, (ग) इसके द्वारा व्यक्तियों के शीलगुणों का मापन गुणात्मक तथा परिमाणात्मक दोनों ही तरह से होता है। अतः कहा जा सकता है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण व्यक्तियों के बीच वैयक्तिक भिन्नता की माप का एक मानकीकृत साधन है।

15.3.1 एक अच्छे मनोवैज्ञानिक परीक्षण की विशेषताएँ-

जैसा कि हमने मनोवैज्ञानिक परीक्षण की परिभाषाओं में देखा कि व्यक्तियों के शीलगुणों, व्यवहारों की तुलना करने या विभिन्न मानसिक प्रक्रियाओं की वस्तुनिष्ठ माप करने की बात हो, मनोवैज्ञानिक परीक्षण का मानकीकृत होना तथा उसमें एक उत्तम परीक्षण के अन्य गुणों का विराजमान होना अत्यावश्यक है अन्यथा कोई भी परीक्षण एक उत्तम परीक्षण नहीं कहला सकता। ये गुण या विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1) **वस्तुनिष्ठता-** वस्तुनिष्ठता किसी मनोवैज्ञानिक परीक्षण की पहली एवं महत्वपूर्ण विशेषता है। इसके अभाव में कोई भी परीक्षण एक उत्तम परीक्षण कहला ही नहीं सकता। वस्तुनिष्ठता से तात्पर्य किसी परीक्षण का मूल्यांकनकर्ता या परीक्षक के वैयक्तिक कारकों, जैसे- उसकी अपनी इच्छा, पूर्वग्रह, पक्षपात, आदि, के प्रभाव से मुक्त रहना है। यानी, जब किसी परीक्षण का अंकन करने में परीक्षकों के बीच आपसी सहमति हो तो परीक्षण को वस्तुनिष्ठ कहा जाता है। मनोवैज्ञानिक परीक्षण में वस्तुनिष्ठता दो प्रकार की होती है-

   (क) एकांशों की वस्तुनिष्ठता

   (ख) अंकन की वस्तुनिष्ठता

एकांशों की वस्तुनिष्ठता का मतलब यह है कि परीक्षण के एकांश इस प्रकार के हों कि सभी व्यक्ति उससे एक ही तरह का अर्थ निकाल सकें। यानी, परीक्षण का कोई भी एकांश द्वि-अर्थक या संदिग्ध अर्थ वाला नहीं हो। ऐसा तभी संभव है जब परीक्षण के सभी एकांश स्पष्ट एवं सरलतम शब्दों में लिखे गए हों, अर्थात् उसमें किसी भी तरह की कोई अस्पष्टता नहीं हो। इतना ही नहीं, एकांशों में पूर्ण वस्तुनिष्ठता के लिए परीक्षण-निर्माता इन एकांशों का एकांश विश्लेषण करके उपयुक्त सांख्यिकीय विधि के सहारे अनावश्यक एवं अनुपयुक्त एकांशों की छंटनी कर देता है और परीक्षण में सिर्फ वैसे एकांशों को रखता है जो उत्तम होते हैं तथा परीक्षण के उद्देश्य की पूर्ति करते हैं।

अंकन की वस्तुनिष्ठता से तात्पर्य परीक्षण के प्रत्येक एकांश को परीक्षकों द्वारा प्रदान किए जाने वाले अंकों में संगति से है। यानी, एकांश का अंकन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि परीक्षक का अपना पूर्वग्रह या पक्षपात उसे प्रभावित न कर पाये। इसके लिए परीक्षण निर्माणकर्ता प्रत्येक एकांश हेतु एक निश्चित उत्तर तैयार करता है तथा उस निश्चित उत्तर के दिए जाने पर एक निश्चित अंक प्रदान करने की व्यवस्था करता है।

2) **विश्वसनीयता-** एक उत्तम मनोवैज्ञानिक परीक्षण की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता उसकी विश्वसनीयता है। विश्वसनीयता से तात्पर्य परीक्षण प्राप्तांकों के बीच संगति से है। इसे परीक्षण प्राप्तांकों की परिशुद्धता के रूप में भी जाना जाता है। यदि कोई परीक्षण बार-बार प्रशासित किए जाने पर भी हर बार एक ही जैसा प्राप्तांक प्रदान करे तो उसे एक विश्वसनीय परीक्षण कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, यदि किसी परीक्षण पर आज के प्राप्तांक और कुछ समय बाद के प्राप्तांक में संगति दिखाई देती है तो इस 'कालिक संगति' को परीक्षण की विश्वसनीयता के रूप में जाना जाता है। इसके अतिरिक्त, परीक्षण की 'आन्तरिक संगति' को भी उसकी विश्वसनीयता की संज्ञा दी जाती है। आन्तरिक संगति से तात्पर्य एक ही परीक्षण के दो अर्द्ध-भागों के बीच पायी जाने वाली प्राप्तांक संगति या प्राप्तांक तुल्यता से है। यदि किसी परीक्षण के कुल एकांशों को दो बराबर भागों में विभक्त कर दिया जाय और प्रत्येक भाग को किसी प्रतिदर्श पर एक ही साथ प्रशासित किया जाय तो दोनों भागों पर के प्राप्तांकों में जितनी ज्यादा संगति होगी, परीक्षण की विश्वसनीयता उतनी ही अधिक होगी। इसे ही परीक्षण की आन्तरिक संगति के नाम से भी जाना जाता है। अतः कहा जा सकता है कि ''परीक्षण प्राप्तांकों के बीच संगति की मात्रा ही उसकी विश्वसनीयता है।''

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि किसी परीक्षण की विश्वसनीयता उसकी 'कालिक संगति' एवं 'आन्तरिक संगति' का सूचक है। इन दोनों संगति का मापन सह-सम्बन्ध गुणांक ज्ञात करके किया जाता है। जिस सह-सम्बन्ध गुणांक से परीक्षण की आन्तरिक संगति का पता चलता है उसे 'आन्तरिक संगति गुणांक' या 'अल्फा गुणांक' कहते हैं। जब किसी परीक्षण को एक ही प्रतिदर्श पर दो बार प्रशासित करके (एक खास अन्तराल, प्रायः 14 दिनों पर) प्राप्तांकों के दोनों वितरणों के बीच सह-सम्बन्ध ज्ञात किया जाता है तो उसे 'कालिक स्थिरता गुणांक' कहते हैं। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि परीक्षण की विश्वसनीयता उसका ''आत्म-सहसम्बन्ध'' सूचित करती है क्योंकि परीक्षण में आत्म-सहसम्बन्ध जितना ही अधिक होगा उसकी विश्वसनीयता उतनी ही अधिक होगी।

3) **वैधता-** वैधता किसी मनोवैज्ञानिक परीक्षण की तीसरी महत्वपूर्ण विशेषता है जो यह बतलाती है कि परीक्षण द्वारा ठीक उन्हीं गुणों या विशेषताओं का मापन हो रहा है जिसे मापनेके लिए उसे बनाया गया है। दूसरे शब्दों में, परीक्षण की वैधता उसकी वह क्षमता है जिसके सहारे वह उस गुण या कार्य को मापता है जिसे मापने के लिए उसे बनाया गया था। उदाहरणस्वरूप, यदि कोई परीक्षण बुद्धि मापने के लिए बनाया गया है और

वास्तव में वह व्यक्ति की बुद्धि मापने में सक्षम है, यानी, परीक्षण के द्वारा सही मायने में व्यक्ति की बुद्धि की माप हो पाती है, तो इसे एक वैध परीक्षण माना जायेगा। परन्तु, यदि यह परीक्षण बुद्धि की सही माप न करके किसी अन्य गुण की माप करता है, जैसे- समस्या समाधान व्यवहार या शैक्षिक उपलब्धि आदि की, तो इस परीक्षण को वैध नहीं कहा जायेगा।

किसी परीक्षण को जिस गुण को मापने के लिए बनाया गया है वास्तव में उसी गुण को माप रहा है या नहीं इसकी जानकारी परीक्षण निर्माणकर्ता किसी बाह्य कसौटी के आधार पर प्राप्त करता है। इसके लिए वह एक बाह्य कसौटी का चयन करता है जो ठीक उसी गुण या क्षमता को मापता है जिसे मापने के लिए वर्तमान परीक्षण को बनाया गया है। यदि वर्तमान परीक्षण इस बाह्य कसौटी के साथ सह-सम्बन्धित हो जाता है तो कहा जायेगा कि वर्तमान परीक्षण ठीक उसी गुण या क्षमता की माप कर रहा है जिसे मापने के लिए इसे बनाया गया था। अतः परीक्षण की वैधता को किसी बाह्य कसौटी के साथ सह-सम्बन्ध के रूप में भी जाना जा सकता है।

4) **मानक-** मानक मनोवैज्ञानिक परीक्षण की एक ऐसी विशेषता है जो परीक्षण के प्राप्तांक को सार्थक बनाता है। कोई भी मनोवैज्ञानिक परीक्षण तब तक उत्तम एवं दुरूस्त नहीं कहला सकता जब तक कि उसका मानक तय नहीं हो जाय। मानक किसी प्रतिनिधिक प्रतिदर्श का परीक्षण पर एक औसत प्राप्तांक होता है। इसी के परिप्रेक्ष्य में परीक्षण पर आये अन्य प्राप्तांकों की व्याख्या की जाती है। उसका अर्थ निकाला जाता है। इसके बिना परीक्षण प्राप्तांक निरर्थक है। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। यदि दस वर्ष के एक बालक का बुद्धि परीक्षण पर 50 अंक है तो इससे यह पता नहीं चलता कि वह बालक तेज है, मन्द है या फिर औसत बुद्धि का है। परन्तु, यदि उसी समूह के दस वर्ष के बालकों का औसत अंक 40 आता है तो कहा जा सकता है कि 50 अंक प्राप्त करने वाला बालक तेज बुद्धि का है। इसी समूह का कोई अन्य बालक यदि उसी बुद्धि परीक्षण पर 30 अंक लाता है तो उसे मन्द बुद्धि का कहा जायेगा। अतः एक मानक को अधिक निर्भर योग्य एवं विश्वसनीय होने के लिए यह आवश्यक है कि इसका परिकलन एक प्रतिनिधिक प्रतिदर्श द्वारा प्राप्त अंकों के आधार पर होना चाहिए। ऐसा परीक्षण जिसके प्राप्तांकों की व्याख्या करने के लिए मानक तैयार किया जाता है, उसे मानक-संदर्भित परीक्षण कहा जाता है।

स्पष्ट है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में मानक का स्थान महत्वपूर्ण है। इसके अभाव में परीक्षण पर प्राप्त अंकों की अर्थपूर्ण व्याख्या संभव नहीं है।

15.4 मनोवैज्ञानिक परीक्षण के प्रकार

अभी तक आप ने मनोवैज्ञानिक परीक्षण के स्वरूप एवं उसकी विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त की। आपने देखा कि एक अच्छा मनोवैज्ञानिक परीक्षण अपने में वस्तुनिष्ठता, विश्वसनीयता, वैधता व मानकीकरण का गुण

समाहित किए रहता है। अब हम यहाँ मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के विभिन्न प्रकारों की चर्चा करेंगे। चूँकि मनोवैज्ञानिक परीक्षण किसी खास गुण, विशेषता, व्यवहार या मानसिक प्रक्रिया को मापने हेतु बनाया जाता है। अतः विभिन्न कसौटियों के आधार पर इसके प्रकारों में भी भिन्नता पाई गई है। कुछ महत्वपूर्ण कसौटियां, जिनके आधार पर हम मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का वर्गीकरण करते हैं, निम्नलिखित हैं-

(i) परीक्षण प्रशासन की शर्तों की कसौटी
(ii) अंकन की कसौटी
(iii) अनुक्रिया से सम्बद्ध समय-सीमा की कसौटी
(iv) एकांशों के स्वरूप की कसौटी
(v) मानकीकरण की कसौटी
(vi) उद्देश्य की कसौटी

15.4.1 परीक्षण प्रशासन की शर्तो की कसौटी-

कोई भी परीक्षण एक समय में किसी एक व्यक्ति पर प्रशासित किया जा सकता है या फिर एक बड़े समूह पर। परीक्षण प्रशासन की शर्तो की कसौटी के आधार पर मनोवैज्ञानिक परीक्षण के दो प्रकार बताये गये हैं-

(क) वैयक्तिक परीक्षण तथा

(ख) सामूहिक परीक्षण

1) **वैयक्तिक परीक्षण-** वैयक्तिक परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसे एक समय में एक ही व्यक्ति पर प्रशासित किया जा सकता है। इस परीक्षण को प्रशासित करने हेतु परीक्षणकर्ता या शोधकर्ता को विशेष प्रशिक्षण या परीक्षण के विशेष ज्ञान की आवश्यकता होती है। प्रायः विद्यालयों में कार्यरत मनोवैज्ञानिक या परामर्शदाता वैयक्तिक परीक्षणों का प्रयोग छोटे-छोटे बालकों को प्रेरित करने या उनके किसी शीलगुण विशेष की जानकारी प्राप्त करने के लिए करते हैं। वैयक्तिक परीक्षण के प्रशासन के दौरान परीक्षक को सतर्क रहना पड़ता है और परीक्षण में दिए गये निर्देशों के अनुरूप व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहकर अनुक्रिया दाता से अनुक्रिया लेनी पड़ती है। बुद्धि मापन हेतु निर्मित कई परीक्षण वैयक्तिक परीक्षण स्वरूप के हैं जिनमें कोह द्वारा निर्मित 'ब्लॉक डिजाइन बुद्धि परीक्षण' महत्वपूर्ण है।
2) **सामूहिक परीक्षण-** सामूहिक परीक्षण उस परीक्षण को कहा जाता है जिसका प्रशासन एक समय में सामान्यतः एक से अधिक व्यक्तियों पर या व्यक्ति-समूह पर एक ही साथ किया जाता है। ऐसे परीक्षण के प्रशासन में परीक्षणकर्ता या परीक्षक का बहुत प्रशिक्षित या ज्ञानी होना आवश्यक नहीं है। कम प्रशिक्षित परीक्षक भी परीक्षण प्रशासन की अच्छी भूमिका निभा लेते हैं। बुद्धि मापनहेतु निर्मित श्याम स्वरूप जलोटा

का मानसिक बुद्धि परीक्षण, एम0सी0 जोशी का मानसिक बुद्धि परीक्षण सामूहिक परीक्षण का अच्छा उदाहरण है।

15.4.2 अंकन की कसौटी-

अंकन को प्राप्तांक लेखन भी कहते हैं। किसी परीक्षण के प्रश्नों या कथनों का उत्तर देने पर अंक देने की प्रक्रिया होती है। अंकन की कसौटी के आधार पर परीक्षण को निम्नांकित दो भागों में बाँटा गया है-

(क) वस्तुनिष्ठ परीक्षण

(ख) आत्मनिष्ठ परीक्षण

1) **वस्तुनिष्ठ परीक्षण-** वस्तुनिष्ठ परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिनके उत्तरों को अंक देने की विधि अर्थात् प्राप्तांक-लेखन विधि स्पष्ट होती है और वह परीक्षकों के आत्मगत निर्णय से बिल्कुल ही प्रभावित नहीं होती है। ऐसे परीक्षणों के एकांशों के उत्तर का अंकन में सभी परीक्षक एक ही निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। बहु-विकल्पी एकांश, सही गलत एकांश तथा मिलान-एकांश वाले परीक्षण वस्तुनिष्ठ परीक्षण होते हैं।
2) **आत्मनिष्ठ परीक्षण-** आत्मनिष्ठ परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिनके एकांशों के उत्तरों को अंक देने की विधि में काफी भिन्नता पाई जाती है। निबन्धात्मक परीक्षा जिसका प्रयोग शिक्षक कक्षा के उपलब्धियों की जाँच करने में अक्सर करते हैं आत्मनिष्ठ परीक्षण का अच्छा उदाहरण है।

15.4.3 अनुक्रिया से सम्बद्ध समय-सीमा की कसौटी-

परीक्षण के एकांशों का उत्तर कोई अनुक्रियादाता या परीक्षार्थी कितनी देर में देगा यह भी परीक्षण बनाते समय शोधकर्ता द्वारा तय कर दिया जाता है। परीक्षण के एकांशों के प्रति अनुक्रिया करने की समय सीमा के आधार पर परीक्षण को दो भागों में बाँटा गया है-

(क) क्षमता परीक्षण तथा

(ख) गति परीक्षण

1) **क्षमता परीक्षण-** क्षमता परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसके सभी एकांशों का उत्तर देने का पर्याप्त समय छात्रों को दिया जाता है। ऐसे एकांशों की कठिनता स्तर भिन्न-भिन्न होती है। इस परीक्षण का उद्देश्य यह मापना होता है कि व्यक्ति को किसी वस्तु, तथ्य, घटना आदि के बारे में कितना ज्ञान है।
2) **गति परीक्षण-** गति परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसमें एक सख्त समय सीमा होती है और उसके भीतर ही व्यक्तियों को सभी एकांशों का जवाब देना होता है। ऐसे परीक्षण के एकांश आसान होते हैं और उनकी कठिनता-स्तर लगभग समान ही होती है। ऐसे परीक्षण का मूल उद्देश्य यह परख करना होता है

कि कितनी तेजी से छात्र किसी कार्य को कर सकते हैं। अधिकतर लिपिक अभिक्षमता परीक्षण इसी श्रेणी के परीक्षण होते हैं। डी.ए.टी. (डिफरेशिंयल एप्टीच्यूड टेस्ट) गति परीक्षण का एक उत्तम उदाहरण है।

सही अर्थ में बहुत कम ही परीक्षण पूर्णतः क्षमता परीक्षण या पूर्णतः गति परीक्षण होते हैं। एक ही परीक्षण एक छात्र के लिए गति परीक्षण का काम कर सकता है यदि उसके लिए प्रश्न आसान है किन्तु वही परीक्षण दूसरे छात्र के लिए जिन्हें उनके एकांश कठिन लगते हैं, क्षमता परीक्षण का काम कर सकता है।

15.4.4 एकांशों के स्वरूप की कसौटी-

काई परीक्षण पढ़े-लिखे लोगों के लिए बनाया गया या अनपढ़ों के लिए। उसके एकांश पढ़कर जवाब देने लायक हैं या कुछ चित्र बनाकर या निर्माण करके। इस कसौटी के आधार पर परीक्षण को निम्नांकित चार भागों में बाँटा गया है-

(क) शाब्दिक परीक्षण

(ख) अशाब्दिक परीक्षण

(ग) निष्पादन परीक्षण

(घ) अभाषाई परीक्षण

1) **शाब्दिक परीक्षण-** शाब्दिक परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसमें एकांश एवं निर्देश को व्यक्ति स्वयं पढ़ता है तथा फिर उसे समझ कर उसका उत्तर देता है। ऐसे परीक्षण द्वारा उन क्षमताओं की माप होती है जिसमें पढ़ने एवं लिखने की अहमियत अधिक होती है। जलोटा सामूहिक सामान्य मानसिक क्षमता परीक्षण तथा मेहता सामूहिक बुद्धि परीक्षण इस परीक्षण के अच्छे उदाहरण है। इसे पेंसिल-और-कागज परीक्षण भी कहा जाता है क्योंकि इसमें व्यक्ति एकांशों के उत्तर को दिए गए उत्तर पत्र पर लिखता है।
2) **अशाब्दिक परीक्षण-** अशाब्दिक परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसमें शाब्दिक बुद्धि परीक्षण की तुलना में भाषा पर कम बल डाला जाता है। ऐसे परीक्षण के निर्देश में तो भाषा का प्रयोग होता है परन्तु एकांशों में भाषा का प्रयोग नहीं होता है। प्रत्येक एकांश में चित्र के सहारे एक समस्या उत्पन्न की जाती है और उसका उत्तर व्यक्ति को दिए गए चित्रों में से ही खोजकर निकालना होता है। रैवेन प्रोग्रेसिव मैट्रिसेज जो एक बुद्धि परीक्षण हैं, अशाब्दिक परीक्षण का अच्छा उदाहरण है।
3) **निष्पादन परीक्षण-** निष्पादन परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसमें भाषा का प्रयोग निर्देश देने में हो सकता है या चित्राभिनय तथा हाव-भाव द्वारा निर्देश देने पर भाषा का प्रयोग नहीं भी हो सकता है परन्तु इनके एकांश में भाषा का प्रयोग बिलकुल ही नहीं होता है और व्यक्ति के सामने कुछ वस्तुएँ वास्तविक रूप से (न

कि चित्र के रूप में) उपस्थित होती है जिसमें जोड़-तोड़ करके उनका उत्तर ढूँढ निकालना होता है। प्रसिद्ध परीक्षण जैसे पास एलांग परीक्षण, घन रचना परीक्षण आदि इसके कुछ महत्वपूर्ण उदाहरण है।

4) **अभाषाई परीक्षण-** अभाषाई परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसमें भाषा का प्रयोग न तो एकांश में और ना ही निर्देश देने में ही होता है। व्यक्ति को मात्र संकेत देकर प्रत्येक एकांश के सही उत्तर को बतलाना होता है। इस तरह ऐसा परीक्षण भाषा की चंगुल से पूर्णतः मुक्त होता है। कैटल कलचर फ्री या फेयर परीक्षण, जो एक बुद्धि परीक्षण है, इसका अच्छा उदाहरण हैं।

15.4.5 मानकीकरण की कसौटी-

परीक्षण की रचना कभी तो तात्कालिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए की जाती है तो कभी दीर्घकालिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए इसका मानक तैयार किया जाता है।

माननीकरण की कसौटी के आधार पर परीक्षण को निम्नांकित दो भागों में बाँटा गया है-

(क) शिक्षक-निर्मित परीक्षण तथा

(ख) मानकीकृत परीक्षण

1) **शिक्षक निर्मित परीक्षण-** शिक्षक-निर्मित परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसका प्रयोग शिक्षकों द्वारा कक्षाओं के भीतर ही छात्रों के निष्पादन की जाँच के लिए करते हैं। ऐसे परीक्षण द्वारा शिक्षक मूलतः एक कक्षा में पढ़ने वाले सभी छात्रों के निष्पादन का आपस में तुलना करते हैं। ऐसे परीक्षण के क्रियान्वयन तथा प्राप्तांक लेखन के तरीके स्वयं शिक्षक ही निर्धारित करते हैं। संभवतः ऐसे परीक्षण का कोई मानक तैयार नहीं किया जाता है परन्तु कभी-कभी यह देखा गया है कि शिक्षक कक्षा के भीतर ही प्रयोग करने के लिए एक काम चलाऊ मानक तैयार कर लेते हैं।

2) **मानकीकृत परीक्षण-** मानकीकृत परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसे परीक्षण विशेषज्ञ अन्य शिक्षकों एवं पाठ्यक्रम विशेषज्ञों की मदद से तैयार करते हैं। ऐसे परीक्षण के क्रियान्वयन तथा प्राप्तांक लेखन का तरीका निश्चित एवं वस्तुनिष्ठ होता है तथा इसका एक मानक भी होता है। इसका परिणाम यह होता है कि इस परीक्षण का प्रयोग सभी तरह के छात्रों पर आसानी से किया जा सकता है और इसके परिणामों का आपस में वैज्ञानिक तुलना कर एक निश्चित निष्कर्ष पर आसानी से पहुँचा जा सकता है।

15.4.6 उद्देश्य की कसौटी-

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का निर्माण विशिष्ट उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया जाता है, यानी, कभी बुद्धि मापने हेतु तो कभी व्यक्तित्व मापने हेतु आदि।

परीक्षण के उद्देश्य की कसौटी के आधार पर परीक्षण को निम्नलिखित मुख्य चार भागों में बाँटा गया हैं-

(क) बुद्धि परीक्षण

(ख) अभिक्षमता परीक्षण

(ग) व्यक्तित्व परीक्षण

(घ) उपलब्धि परीक्षण

1) **बुद्धि परीक्षण-** बुद्धि परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसका उददेश्य व्यक्तियों की बुद्धि को मापना होता है। बुद्धि परीक्षण शाब्दिक, अशाब्दिक; क्रियात्मक एवं अभाषाई कुछ भी हो सकता है।
2) **अभिक्षमता परीक्षण-** अभिक्षमता परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसका उद्देश्य छात्रों की अभिक्षमता का मापन करना होता है। अभिक्षमता से तात्पर्य किसी विशेष क्षेत्र में व्यक्तियों के भीतर छिपा हुआ अन्तःशक्ति से होता है। विभेदक अभिक्षमता परीक्षण, जिसके द्वारा व्यक्तियों के सात तरह के अभिक्षमताओं का मापन होता है, इस तरह के परीक्षण का एक अच्छा उदाहरण है।
3) **व्यक्तित्व परीक्षण-** व्यक्तित्व परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसके द्वारा व्यक्तियों के शीलगुण, समायोजन, अभिरूचि, मूल्य आदि का मापन होता है। ऐसे परीक्षणों की मनोविज्ञान तथा शिक्षा में भरमार है। वेल समायोजन परीक्षण, आइजेन्क व्यक्तित्व प्रश्नावली इसके अच्छे उदाहरण हैं।
4) **उपलब्धि परीक्षण-** उपलब्धि परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसके द्वारा किसी खास विषय या क्षेत्र में व्यक्तियों के अर्जित निपुणता को मापा जाता है। उपलब्धि परीक्षण भिन्न-भिन्न विषयों के लिए अलग-अलग बनाये गये हैं।

इस तरह स्पष्ट हुआ कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण को भिन्न-भिन्न कसौटियों के आधार पर भिन्न-भिन्न भागों में बाँटा ग या है। आशा है आप मनोवैज्ञानिक परीक्षण के विभिन्न प्रकारों से अवगत हो गए होंगे।

15.5 सारांश

- मनोवैज्ञानिक परीक्षण एक मानकीकृत उपकरण है जो शाब्दिक या अशाब्दिक अनुक्रियाओं या अन्य व्यवहारों के सहारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व के एक या अधिक पहलुओं को वस्तुनिष्ठ रूप से मापता है।
- एक उत्तम मनोवैज्ञानिक परीक्षण की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं-वस्तुनिष्ठता, विश्वसनीयता, वैधता एवं मानक।
- मनोवैज्ञानिक परीक्षण का निर्माण किसी खास गुण, विशेषता, व्यवहार या मानसिक प्रक्रिया को मापने के लिए किया जाता है। अतः विभिन्न कसौटियों के आधार पर इसके प्रकारों में भी भिन्नता पाई जाती है।

- परीक्षण प्रशासन की शर्तो की कसौटी के आधार पर मनोवैज्ञानिक परीक्षण को वैयक्तिक एवं सामूहिक परीक्षण के रूप में विभाजित किया गया है।
- अंकन की कसौटी के आधार पर इसके दो प्रकार होते हैं- वस्तुनिष्ठ परीक्षण एवं आत्मनिष्ठ परीक्षण।
- अनुक्रिया से सम्बद्ध समय सीमा की कसौटी के आधार पर मनोवैज्ञानिक परीक्षण को क्षमता परीक्षण एवं गति परीक्षण में विभाजित किया गया है।
- एकांशों के स्वरूप की कसौटी के आधार पर इसे शाब्दिक, अशाब्दिक, निष्पादन तथा अभाशाई परीक्षण में विभक्त किया गया है।
- मानकीकरण की कसौटी के आधार पर मनोवैज्ञानिक परीक्षण के दो भेद बताये गए हैं - शिक्षक-निर्मित परीक्षण एवं मानकीकृत परीक्षण।
- परीक्षण के उद्देश्य की कसौटी के आधार पर चार प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण होते हैं - बुद्धि परीक्षण, अभिक्षमता परीक्षण, व्यक्तित्व परीक्षण तथा उपलब्धि परीक्षण।

15.6 शब्दावली

- **मनोवैज्ञानिक परीक्षण:** एक मानकीकृत उपकरण जो शाब्दिक या अशाब्दिक अनुक्रियाओं या अन्य व्यवहारों के सहारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व के एक या अधिक पहलुओं को वस्तुनिष्ठ रूप से मापता है।
- **विश्वसनीयता:** यदि किसी परीक्षण पर एक ही प्रतिदर्श के आज के प्राप्तांक और कुछ समय बाद के प्राप्तांक में संगति दिखाई दे तो इस 'कालिक संगति' को परीक्षण की विश्वसनीयता कहते हैं।
- **वैधता:** परीक्षण की वैधता उसकी वह क्षमता है जिसके सहारे वह उस गुण या कार्य को मापता है जिसे मापने के लिए उसे बनाया गया हैं।

15.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1) निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सत्य है कौन-सा असत्य?

(i) मनोवैज्ञानिक परीक्षण एक मानकीकृत परीक्षण है।

(ii) मनोवैज्ञानिक परीक्षण में विश्वसनीयता का गुण पाया जाता है।

2) रिक्त स्थानों को भरें-

(i) यदि कोई परीक्षण बार-बार प्रशासित किए जाने पर हर बार एक ही जैसा परिणाम दे तो

उसे एक.....परीक्षण कहा जायेगा। (विश्वसनीय/वैध)

(ii) यदि कोई परीक्षण ठीक उसी गुण को मापता है जिसे मापने के लिए उसे बनाया गया है

तो परीक्षण को एक .....परीक्षण कहा जायेगा। (विश्वसनीय/वैध)

3. ऐसे परीक्षण जिसमें एकांशों का कठिनता स्तर भिन्न-भिन्न होता है परन्तु परीक्षार्थी को एकांशों का उत्तर देने के लिए पर्याप्त समय दिया जाता है .....परीक्षण कहलाता है। (गति/क्षमता)

4. निबन्धात्मक परीक्षा एक.....परीक्षण है। (वस्तुनिष्ठ/आत्मनिष्ठ)

5. जलोटा मानसिक योग्यता परीक्षण एक ..... परीक्षण है। (वैयक्तिक/सामूहिक)

उत्तर: 1. (i) सत्य (ii) सत्य 2. (i) विश्वसनीय (ii) वैध

3. क्षमता 4. आत्मनिष्ठ 5. सामूहिक

15.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- अरूण कुमार सिंह (1998) मनोविज्ञान,समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल-बनारसीदास, दिल्ली।
- एच.के. कपिल (2001) अनुसंधान विधियां (व्यवहारपरक विज्ञानों में), एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।
- एफ.एन. करलिंगर (2002) फाउण्डेशन्स ऑफ विहैवियरल रिसर्च, हॉल्ट, रिनेहार्ट एवं विंसटन, इंक, न्यूयार्क।
- राम आहूजा (2009) रिसर्च मेथड्स, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर

15.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मनोवैज्ञानिक परीक्षण से आप क्या समझते हैं? एक अच्छे मनोवैज्ञानिक परीक्षण की कौन-कौन सी विशेषताएँ होती हैं?
2. परीक्षण के उद्देश्य की कसौटी के आधार पर मनोवैज्ञानिक परीक्षण को कितने भागों में बांटा गया है? विवेचना करें।
3. अन्तर स्पष्ट करें -
   (i) गति एवं क्षमता परीक
   (ii) वैयक्तिक एवं सामूहिक परीक्षण

इकाई 16. शोध अभिकल्प:- अर्थ एवं उद्देश्य

(Research Design:- Meaning and Objectives)

इकाई संरचना

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 शोध अभिकल्प का अर्थ एवं विशेषताएँ

16.4 शोध अभिकल्प का उद्देश्य

16.5 सारांश

16.6 शब्दावली

16.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

16.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

16.9 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

सामाजिक शोध में शोध अभिकल्प की भूमिका काफी महत्वपूर्ण होती है। मनोविज्ञान में तो इसका महत्व और भी अधिक है। किसी भी प्रकार के शोध चाहैं वह प्रयोगात्मक हो या अप्रयोगात्मक हो का परिणाम एवं निष्कर्ष शोध अभिकल्प पर निर्भर करता है। यदि शोध अभिकल्प त्रुटिपूर्ण होगा तो उसका परिणाम एवं निष्कर्ष भी त्रुटिपूर्ण ही होगा। ऐसी स्थिति में वैध निष्कर्ष के लिए आवश्यक है कि उचित शोध अभिकल्प हो।

इस इकाई में शोध अभिकल्प क्या है, इसकी विशेषताओं एवं उद्देश्यों के सम्बन्ध में विस्तृत वर्णन किया गया है।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह जान सकेंगे कि -

- शोध अभिकल्प क्या है तथा इसकी क्या विशेषता होती है।
- शोध अभिकल्प के उद्देश्यों के सम्बन्ध में विस्तृत जानकरी होगी।

16.3 शोध अभिकल्प का अर्थ एवं विशेषताएँ

शोध अभिकल्प वैज्ञानिक शोध प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है। किसी भी प्रकार के शोध का परिणाम एवं निष्कर्ष शोध प्रारूप पर निर्भर करता है। यदि शोध प्रारूप या अभिकल्प दोषपूर्ण है तो वैसी स्थिति में शोध के परिणाम एवं निष्कर्ष की वैधता समाप्त हो जाती है।

शोध अभिकल्प एक ऐसी योजना होती है जिससे यह पता चलता है कि शोध में कितने स्वतंत्र चर प्रयुक्त हुए हैं। उनके कितने स्तर हैं, वाह्य चरों के नियंत्रण हेतु किन तकनीकों का उपयोग किया गया है। आश्रित चरों का मापन किस रूप में किया गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि शोध अभिकल्प शोध समस्याओं के बारे में उत्तर प्राप्त करने की एक वैज्ञानिक परियोजना या रूपरेखा है। करलिंगर के अनुसार- "शोध अभिकल्प नियोजित अन्वेषण की एक ऐसी योजना, संरचना एवं व्यूहरचना होती है जिसके आधार पर अनुसंधान प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किए जाते हैं और प्रसरण पर नियंत्रण किया जाता है।'

शोध 'योजना' से तात्पर्य शोध के कार्यक्रम को प्रस्तुत करना है ओर इसके अंतर्गत समस्या को सीमाबद्ध करना, परिकल्पना की रचना करना तथा प्राप्त होने वाले ऑंकड़ों का विश्लेषण करना है। इससे स्पष्ट है कि शोध अभिकल्प शोध के विषयों के बारे में एक अनुभवसिद्ध आनुभविक सबूत प्रदान करने की एक वैज्ञानिक परियोजना है। अनुसंधान या शोध संरचना से तात्पर्य अनुसंधान के प्रतिमान से है। जिसमें शोध में शामिल किए गए चरों के सम्बन्धों का अध्ययन करने का एक विशेष प्रारूप होता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि शोध अभिकल्प शोध की एक ऐसी संरचना होती है जिसके द्वारा शोध में प्रयुक्त होने वाले चरों की संख्या, उनके स्तर या मूल्य तथा उनके उपयोग हेतु की जाने वाली सभी संक्रियाओं का एक प्रतिमान प्रस्तुत किया जाता है।

शोध प्रारूप का एक तीसरा पक्ष व्यूहरचना का है। इसमें ऑंकड़ों का संकलन तथा विश्लेषण प्रक्रिया पर प्रकाश डाला जाता है। इसमें यह भी स्पष्ट किया जाता है कि शोध उद्देश्य की पूर्ति किस प्रकार अधिक साध्य होगी और इस प्रक्रिया में आने वाली समस्याओं एवं कठिनाइओं का निराकरण कैसे किया जा सकेगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि शोध प्रारूप या अभिकल्प एक ऐसी योजना है जिससे यह पता चलता है कि शोध में कितने स्वतंत्र चर है, उनके कितने स्तर हैं, बाह्य चरों को नियंत्रित करने की किन-किन तकनीकों का उपयोग किया गया है तथा आश्रित चरों का मापन किस रूप में हुआ है इस प्रकार स्पष्ट है कि शोध प्रारूप शोध समस्याओं के उत्तर प्राप्त करने की एक वैज्ञानिक योजना है। हम यह भी कह सकते हैं कि शोध अभिकल्प शोध की एक ऐसी योजना तथा संरचना होती है जिसके द्वारा शोध समस्या का उपयुक्त उत्तर तैयार किया जाता है। दूसरे शब्दों में - शोध अभिकल्प शोधकर्ता को शोध के वास्तविक लक्ष्य तक पहुँचने में मदद करता है।

उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर ही कहा जाता है कि शोध अभिकल्प किसी भी समस्या के शोध की एक परियोजना, संरचना एवं व्यूहरचना होती है।

16.4 शोध अभिकल्प का उद्देश्य

शोध अभिकल्प के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं -

1- शोध प्रश्नों का सही उत्तर ढूँढ़ना।

2- प्रसरण को नियंत्रित करना।

3- सामान्यीकरण की क्षमता।

1- शोध प्रश्नों का सही उत्तर ढूँढ़ना: शोधकर्ता शोध अभिकल्प के आधार पर शोध समस्याओं या प्रश्नों का एक वैध तथा वस्तुनिष्ठ उत्तर ढूँढ़ने का प्रयस करता है। इस प्रकार से शोध प्रारूप के द्वारा शोधकर्ता शोध समस्याओं के समाधान से सम्बन्धित कुछ अनुभवसिद्ध प्रमाण जुटाता है तथा शोधकर्ता को एक अंतिम निष्कर्ष पर पहुँचनेमें भी मदद करता है। एक वैज्ञानिक शोध प्रारूप यह भी बतलाता है कि प्रेक्षण की संख्या कितनी होनी चाहिए। कौन सा चर सक्रिय चर है तथा कौन सा चर गुण चर है। सक्रिय चर में कैसे जोड़-तोड़ किया जा सकता है।"

2- प्रसरण को नियंत्रित करना: शोध अभिकल्प का उद्देश्य विभिन्न तरह के प्रसरण को नियंत्रित भी करना होता है। शोध प्रारूप एक नियंत्रण प्रक्रिया के रूप में कार्य करता है। नियंत्रण प्रक्रिया के रूप में शोध प्रारूप तीन प्रकार के प्रसरणों के क्रमबद्धीकरण पर जोर देता है -

क- प्रयोगात्मक प्रसरण की उच्चतम सीमा प्राप्त करना- प्रयोगात्मक प्रसरण से तात्पर्ण आश्रित चर में उत्पन्न किए गए वैसे प्रसरण से होता है जिसे शोधकर्ता स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ करके उत्पन्न करता है। अक्सर शोधकर्ता यह प्रयास करता है कि वह अपने शोध में प्रयोगात्मक प्रसरण को उच्चतम सीमा तक बढ़ा देता कि उस शोध से अधिक से अधिक वस्तुनिष्ठ तथा वैध आंकड़ा प्राप्त हो सके।

ख- बाह्य प्रसरण को नियंत्रित करना- शोध प्रारूप का एक उद्देश्य यह भी होता है कि प्रयोगात्मक स्थिति में बाधा पहुँचाने वाले बाह्य चरों को नियंत्रित किया जाय। जिससे उससे उत्पन्न प्रसरण की मात्रा पर रोक लगाई जा सके। बाह्य चरों को नियंत्रित करने के लिए मुख्य रूप से विलोपन, दशाओं की स्थिरता, संतुलन, प्रतिसंतुलन, समेलन एवं चादृच्छिकीकरण जैसी तकनीकों या विधियों का उपयोग किया जाता है।

ग- त्रुटि प्रसरण को कम से कम करना- शोध अभिकल्प का तीसरा तकनीकी कार्य है प्रयोग या शोध में त्रुटिप्रसरण को कम से कम करना। त्रुटिप्रसरण वैसे प्रसरण को कहा जाता है जो प्रयोग या शोध में वैसे

कारकों से उत्पन्न होते हैं जो नियम से बाहर होते हैं। इसमें कुछ कारक प्रयोज्यों से सम्बन्धित होते हैं। त्रुटि प्रसरण को कम करने का सबसे अच्दा ढंग यह है कि प्रयोग या शोध काफी नियंत्रित अवस्था में किया जाय। प्रयोग या शोध में विश्वसनीय उपकरणों या मापनियों का उपयोग हो। यदि शोध में विश्वसनीय, वैध एवं मानकीकृत परीक्षणों का उपयोग होता हैं तो निश्चित रूप से त्रुटि प्रसरण कम होगा।

3- सामान्यीकरण की क्षमता: एक अच्छे शोध अभिकल्प का यह भी उद्देश्य होता है कि इसके द्वारा किए गए अध्ययनों से जो प्राप्त परिणाम होते हैं उनका अधिक से अधिक जनसंख्या के ऊपर सामान्यीकरण किया जा सके। अतः स्पष्ट है कि एक अभिकल्प के द्वारा जितनी अधिक सामान्यीकरण की क्षमता उपलब्ध होती है वह अभिकल्प उतना ही अधिक उत्तम होगा।

16.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह जान चुके हैं कि शोध अभिकल्प या प्रारूप क्या है। इसकी क्या विशेषताएँ एवं उद्देश्य होते हैं। शोध अभिकल्प एक ऐसी योजना होती है जिससे यह पता चलता है कि शोध में कितने स्वतंत्र चर प्रयुक्त हुए हैं। उनके कितने स्तर हैं। बाह्य चरों के नियंत्रण हेतु किन तकनीकों का उपयोग किया गया है। आश्रित चरों का मापन किस रूप में किया गया है। शोध अभिकल्प शोधकर्ता को शोध के वास्तविक लक्ष्य तक पहुँचने में मदद करता है। शोध अभिकल्प का मुख्य उद्देश्य होता है - शोध प्रश्नों का सही उत्तर ढूँढ़ना, प्रसरण को नियंत्रित करना एवं सामान्यीकरण की क्षमता।

16.6 शब्दावली

- **शोध अभिकल्प:** शोध अभिकल्प नियोजित अन्वेषण की एक ऐसी योजना, संरचना एवं व्यूहरचना होती है जिसके आधार पर शोध के प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किए जाते हैं और प्रसरण पर नियंत्रण किया जाता है।
- **प्रसरण का नियंत्रण:** शोध में कई प्रकार के प्रसरण पाये जाते हैं जिनका शुद्ध एवं वैध परिणाम पाने के लिए नियंत्रण आवश्यक होता है। शोध प्रारूप एक नियंत्रण प्रक्रिया के रूप में कार्य करता है। इस नियंत्रण की प्रक्रिया में शोध प्रारूप तीन तरह के प्रसरणों के क्रमबद्धीकरण पर जो देता है - प्रयोगात्मक प्रसरण की उच्चतम सीमा प्राप्त करना, बहिरंग प्रसरण को नियंचित करना एवं त्रुटि प्रसरण को कम से कम करना।

16.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. शोध अभिकल्प का मुख्य उद्देश्य होता है शोध प्रश्नों का सही उत्तर ढूँढ़ना। सत्य/असत्य
2. शोध प्रारूप एक ------ के रूप में कार्य करता है।

3. बहिरंग प्रसरण के नियंत्रण से सभी --- प्रसरण नियंत्रित हो जाते हैं।

शोध प्रारूप का एक मुख्य उद्देश्य प्रयोगात्मक प्रसरण को ---- तक बढ़ाना होता है।

उत्तर : 1-सत्य 2- नियंत्रण प्रक्रिया 3-आवांछित 4- उच्चतम सीमा

16.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- कपिल, डा0 एच0 के0 (2010): अनुसंधान विधियाँ- व्यवहारपरक विज्ञानों में, हर प्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशक, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- त्रिपाठी, जयगोपाल (2007): मनोविज्ञान एवं शिक्षा में शोध पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- त्रिपाठी, प्रो0 लाल बचन एवं अन्य (2008): मनोवैज्ञानिक अनुसंधान पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- सिंह, अरूण कुमार (2009), मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल- बनारसी दास, पटना एवं वाराणसी।
- Goode, W.J. & Hatt, P. K. (1981): Methods in Scoial Research
- Festinger and Katz : Research method in Behavioural Sciences.
- Kerlinger, F.N. (1986): Foundations of Behavioural Research
- Mc Guin, F.J. (1990) : Experimental Psychology

16.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. शोध अभिकल्प के अर्थ एवं उसकी विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
2. शोध अभिकल्प शोध समस्याओं के उत्तर प्राप्त करने की एक वैज्ञानिक योजना है, स्पष्ट कीजिए।
3. शोध अभिकल्प के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

इकाई 17. शोध अभिकल्प के प्रकार:- अन्तःसमूह, अन्तर समूह एवं कारकीय
(Types of Research Design: Within Group, Between Group and Factorial)

इकाई संरचना

17.1 प्रस्तावना

17.2 उद्देश्य

17.3 अभिकल्प के प्रकार

17.4 समूह अन्तर्गत अभिकल्प

17.5 समूहान्तर अभिकल्प

17.6 कारकीय अभिकल्प

17.7 सारांश

17.8 शब्दावली

17.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

17.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

17.11 निबंधात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

विभिन्न विद्वानों ने शोध का वर्गीकरण अपने-अपने दृष्टिकोण के आधार पर किया है, जिन्हें दो प्रकारों में बाँटा गया है - प्रयोगात्मक शोध तथा अप्रयोगात्मक शोध। प्रयोगात्मक शोध में जिन प्रारूप एवं अभिकल्पों का प्रयोग होता है उन्हें प्रयोगात्मक शोध अभिकल्प तथा अप्रयोगात्मक शोध में जिन शोध प्रारूपों का उपयोग होता है, उन्हें अप्रयोगात्मक शोध अभिकल्प कहते हैं । प्रायोगिक अभिकल्पों में कई अभिकल्प ऐसे हैं जिनका उपयोग अप्रयोगात्मक शोधों में भी किया जा सकता है। अतः समग्रता के दृष्टि से शोध अभिकल्प का प्रयोग करना उचित प्रतीत होता है।

इस इकाई में मुख्य रूप से तीन अनुसंधान अभिकल्पों - समूह अंतर्गत, समूहान्तर एवं कारकीय अभिकल्पों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

17.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे:

- शोध अभिकल्प के कौन-कौन से प्रकार हैं।
- समूह अन्तर्गत अभिकल्प क्या है और कब इसका उपयोग करते हैं।
- समूहान्तर अभिकल्प क्या है और कब इसका उपयोग करते हैं।
- कारकी अभिकल्प का उपयोग कब किया जाता है।

17.3 अभिकल्प के प्रकार

विभिन्न विद्वानों ने अनुसंधान अभिकल्पों का वर्गीकरण अपने-अपने दृष्टिकोण के आधार पर किया है। इनमें से कुछ विद्वानों द्वारा दिए गए दृष्टिकोण को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

मैग्यूगन ने निम्नांकित प्रायोगिक अभिकल्पों का वर्णन किया है -

1. **यादृच्छिकीकृत द्विसमूह अभिकल्प -** इसमें प्रतिदर्श का चयन समष्टि से यादृच्छिकीकृत ढंग से किया जाता है। प्रत्येक इकाई का समूहों में भी वर्गीकरण यादृच्छिक ढंग से ही किया जाता है। इसमें स्वतंत्र चर की शून्य मात्रा तथा एक निश्चित मात्रा होती है। किस समूह को शून्य मात्रा तथा किस समूह को एक निश्चित मात्रा देनी है इसका भी निर्धारण यादृच्छिक ढंग से किया जाता है। जिस समूह को स्वतंत्र चर की शून्य मात्रा दी जाती है उसे नियंत्रित समूह तथा जिस समूह को एक निश्चित मात्रा दी जाती है उसे प्रायोगिक समूह कहते हैं। दोनों समूहों के आश्रित चर का मापन कर अंतर की सार्थकता ज्ञात किया जाता है।
2. **समेलित द्विसमूह अभिकल्प -** इस अभिकल्प में प्रयोज्यों का वर्गीकरण दो समूहों में उनकी उन विशेषताओं के आधार पर किया जाता है जो आश्रित चर से प्रभावपूर्ण ढंग से सहसम्बन्धित होते हैं। इन समेलित समूहों का वर्गीकरण प्रयोगात्मक एवं नियंत्रित समूह के रूप में यादृच्छिक आधार पर ही किया जाता है। बाकी सभी प्रक्रियाएँ यादृच्छिक द्विसमूह अभिकल्प के आधार पर ही पूरी की जाती हैं।
3. **दो से अधिक यादृच्छिकीकृतसमूह अभिकल्प -** इसमें भी अपेक्षित संख्या में प्रयोज्यों का चुनाव समष्टि से यादृच्छिक ढंग से किया जाता है। प्रतिदर्श से समूहों में प्रयोज्यों का वितरण भी यादृच्छिक ढ़ंग से किया जाता है। इतना ही नहीं किस तीन या इससे अधिक समूह पर स्वतंत्र चर के मूल्यों का उपयोग किया जाय इसका भी निर्धारण यादृच्छिक ढ़ंग से ही किया जाता है। स्वतंत्र चर की न्यूनतम या शून्य मात्रा वाला समूह

इसमें नियंत्रित समूह कहा जाता है। इसमें स्वतंत्र चर दो से अधिक संख्या में दिया जाता है। आश्रित चर के जो मूल्य प्राप्त होते हैं उनकी आपस में तुलना की जाती है।

4. **कारकीय अभिकल्प -** इसमें दो या दो से अधिक स्वतंत्र चरों को एक ही प्रयोग में अध्ययन हेतु प्रयुक्त करते हैं। इसमें दो या अधिक चरों के प्रभाव के साथ-साथ उनकी अंतः क्रियाओं का भी अध्ययन किया जाता है।

5. **प्रयोजानान्तर्गत या समूहान्तर्गत अभिकल्प-** इस अभिकल्प में एक ही समूह पर प्रयोग किया जाता है। इसमें प्रत्येक का प्रयोज्य को विभिन्न प्रायोगिक मूल्य या दशाएँ प्रस्तुत की जाती हैं और उन भिन्न-भिन्न दशाओं में प्राप्त प्रदत्तों की आपस में तुलना किया जाता है। इसमें स्वतंत्र चर वही होते हैं जिसका सक्रिय रूप से नियोजन किया जा सकता है।

इसी से मिलते-जुलते अन्य वर्गीकरण के अनुसार शोध प्रारूपों का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप से किया गया है।

1. समूहों के अंतर वाले अभिकल्प

(i) यादृच्छिकृत समूहों वाले अभिकल्प - इसके अंतर्गत मैग्यूगन द्वारा वर्णित यादृच्छिकीकृत दो समूह तथा दो से अधिक समूहों वाले अभिकल्प आते हैं।

(ii) समेलित समूह वाले अभिकल्प - इस प्रकार के अभिकल्प में दो या दो से अधिक समेलित समूहों का उपयोग किया जाता है।

(iii) यादृच्छिकीकृत खण्ड़ों वाले अभिकल्प - इस प्रकार के अभिकल्प में उपर्युक्त दोनों अभिकल्पों का समन्वय निहित है। इसमें प्रयोज्यों को कई खण्डों या समूहों में बाँट दिया जाता है।

(iv) लैटिन वर्ग वाले अभिकल्प - जब प्रायोगिक दशाएँ 4 से 9 के बीच होती है तब इस प्रकार के अभिकल्प का प्रयोग किया जाता है। इसमें प्रयोगात्मक दशाओं के वर्ग निर्मित किए जाते हैं। जिसमें प्रत्येक दशा, प्रत्येक वर्ग में एक बार उपस्थित होती है।

(v) कारकीय अभिकल्प - इसमें दो या दो से अधिक स्वतंत्र चरों के प्रभावों तथा अंतक्रियात्मक प्रभावों का अध्ययन किया जाता है।

2. **समूहान्तर्गत अभिकल्प -** इस प्रकार के अभिकल्प में प्रत्येक प्रयोज्य को प्रत्येक प्रायोगिक मूल्य दिया जाता है।इस अभिकल्प को एक समूह अभिकल्प या प्रयोजनान्तर्गत अभिकल्प भी कहते हैं।

3. **अर्द्ध प्रायोगिक अभिकल्प -** इसमें दो या दो से अधिक समूहों वाले तथा एकल समूह वाले अभिकल्पों के आधारभूत तत्वों का उपयोग किया जाता है।

जहोदा आदि ने प्रायोगिक अभिकल्पों को आश्रित चर का मापन स्वतंत्र चर के पूर्व या पश्चात कब किया गया है के आधार पर विभाजित किया है -

(1) केवल पश्चात प्रयोग - इसमें आश्रित चर का मापन स्वतंत्र चर के प्रयोग के बाद ही किया जाता है।

(2) पूर्व-पश्चात प्रयोग - इसमें आश्रित चर का मापन स्वतंत्र चर के उपयोग के पूर्व तथा पश्चात दोनों ही दशाओं में किया जाता है। इसमें कई प्रकार के अभिकल्पों का प्रयोग किया जाता है।

लिण्डक्विस्ट ने मूलभूत छः प्रायोगिक अभिकल्पों का वर्णन किया है -

(1) सरल यादृच्छिक अभिकल्प - इसमें यादृच्छिकीकृत रूप से समष्टि से चुने गए सभी प्रतिदर्श पर प्रत्येक प्रायोगिक मूल्य का उपयोग किया जाता है।

(2) समुपचार स्तर अभिकल्प - इसमें स्वतंत्र चर के विभिन्न मूल्यों का उपयोग समेलित समूहों पर किया जाता है।

(3) समुचार प्रयोज्य अभिकल्प - इस प्रकार के अभिकल्पों में सभी समुपचारों को क्रमिक रूप से उन्हीं प्रयोज्यों पर प्रयुक्त किया जाता है।

(4) यादृच्छिक पुनरावृत्ति अभिकल्प - इसमें सरल यादृच्छिक प्रकार के प्रयोग को दोहराया जाता है। इसमें प्रत्येक पुनरावृत्ति हेतु एक समष्टि से प्रतिदर्श का चयन किया जाता है।

(5) कारकीय अभिकल्प - इसमें दो या अधिक स्वतंत्र चरों का एक साथ प्रयोग किया जाता है तथा उनके प्रभावों एवं अंतःक्रियाओं का साथ-साथ निरीक्षण किया जाता है।

(6) समुपचार-समूह अंतर्गत अभिकल्प - इस प्रकार के अभिकल्प में प्रत्येक समुपचार का उपयोग एक स्वतंत्र यादृच्छिक प्रतिदर्श पर किया जाता है। करलिंगर ने भी प्रायोगिक अभिकल्प के प्रकारों का वर्णन किया है। परन्तु जो विभिन्न विद्वानों द्वारा अनुसंधान अभिकल्पों का प्रतिपादन किया गया है सबका मूल्यांकन अनुसंधान समस्या के प्रश्नों के वैध, वस्तुनिष्ठ, परिशुद्ध उत्तरों के आधार पर सामान्यीकरण करना है।

17.4 समूह अन्तर्गत अभिकल्प

जब अधिक संख्या में प्रयोज्य उपलब्ध नहीं होते हैं तब ऐसी परिस्थिति में समूहान्तर अभिकल्पों का उपयोग करना कठिन होता है। इसके अलावा भी अनेक ऐसी समस्याएँ होती है जिनके अध्ययन में समूहान्तर अभिकल्पों

का उपयोग करना उचित नहीं होता है। एक और कारण यह है कि समूहान्तर अभिकल्पों में विभिन्न समुपचारों के लिए अलग-अलग प्रयोज्य हों जो यादृच्छिक ढंग से चुने गए हों और समूहों में वर्गीकरण भी यादृच्छिक ढंग से किया गया हो। ऐसा इसलिए किया जाता है कि प्रासंगिक विशेषताओं में एक दूसरे के समान हो जाँच, परन्तु ऐसा वास्तव में हो नहीं पाता है। प्रायोगिक उपचारों में प्रयोज्य समूहों का समान होना आवश्यक होता है। ऐसा यदि सावधानी पूर्वक किया भी जाय तब भी अनेक कारणें से प्रयोज्य समूहों में समतुल्यता नहीं रहती है, जिसके कारण प्रदत्तों में त्रुटि-प्रसरण की मात्रा अधिक होती है। इसीलिए इन कठिनाइयों को देखते हुए समूह अंतर्गत अभिकल्प का उपयोग अध्ययनों में किया जाता है। इस प्रकार के अभिकल्पों में सभी समुपचारों में एक ही प्रयोज्य समूह का उपयोग किया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि सभी प्रयोगिक उपचारों में एक ही प्रयोज्य समूह का उपयोग गरने से प्रतिदर्श चयन भी उच्चावच की सम्भावना नहीं होती है। प्रयोगिक अध्ययन में प्रारम्भ से अंत तक प्रयोज्य प्रासंगिक चरों में स्थिरता की सम्भावना बनी रहती है।

समूह अंतर्गत अभिकल्पों में मुख्य रूप से दो प्रारूपों का उपयोग व्यापक स्तर पर किया जाता है। इन अभिकल्पों में एक समूहः दो दशाएँ तथा एक समूह: बहुल दशाएँ प्रमुख हैं।

एक समूह: दो दशाएँ अभिकल्प - यह अभिकल्प दो यादृच्छिक समूह का एक विकल्प है। इसमें एक समूह का प्रत्येक प्रयोज्य का उपयोग स्वतंत्र चर के दो अलग स्तरों पर या दो प्रायोगिक दशाओं में किया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक प्रयोज्य से दो प्राप्तांक प्राप्त होते हैं। ये दोनों ही प्राप्तांक आपस में सहसम्बन्धित होते हैं। इस अभिकल्प का उपयोग स्वतंत्र चर और आश्रित चर के बीच प्रकार्यात्मक सम्बन्ध के अस्तित्व का सत्यापन करने के लिए किया जाता है। इस अभिकल्प के अंतर्गत उद्दीपक, संदर्भ एवं संकल्प संबंधित चरों में से किसी एक को स्वतंत्र चर के रूप में लेकर प्रयोज्यों के किसी अनुक्रिया, व्यवहार या निष्पादन पर उसके प्रभाव का निर्धारिण किया जाता है। स्वतंत्र चर के मूल्यों को लेकर दो प्रायोगिक दशाएँ बनाई जाती हैं। पहली दशा में स्वतंत्र चर का मूल्य कम तथा दूसरी दशा में उससे अधिक मूल्य रखा जाता है। कभी कभी प्रथम दशा में स्वतंत्र चर को अनुपस्थित रखकर या शून्य मूल्य पर और दूसरी दशा में पर्याप्त मूल्य रखकर इस अभिकल्प का उपयोग करते हैं। इनको अ और या प्रयोगिक दशा प्रथम एवं द्वितीय नाम दिया दिया जाता है। इस अभिकल्प के अन्तर्गत पहले आश्रित चर का मापन दशा अ या ब में फिर पूर्व निर्धारित अंतराल के बाद दशा ब या अ में किया जाता है। इस अभिकल्प के अंतर्गत क्रम प्रभाव एवं संवहन प्रभाव को नियंत्रित करने के लिए समूह के आधे प्रयोज्यों से पहले अ दशा तथा बाद में ब दशा में प्राप्तांक प्राप्त किया जाता है। शेष आधे प्रयोज्यों को पहले ब दशा फिर अ दशा में रखकर प्राप्तांक प्राप्त किया जाता है। प्राप्त प्राप्तांकों को निम्नलिखित सारिणी के प्रारूप में लिख लेते हैं।

प्रयोग	अ1	ब2
1		
2		
3		
4		
5		

प्रयोज्य	ब1	अ2
6		
7		
8		
9		
10		

एक समूह: दो से अधिक दशाएँ अभिकल्प

इस अभिकल्प में एक ही समूह के प्रयोज्यों का उपयोग करके तीन या तीन से अधिक प्रायोगिक उपचारों के अंतर्गत आश्रित चर का मापन किया जाता है। इस अभिकल्प को दो से अधिक यादृच्छिकीकृत समूह अभिकल्प के विकल्प के रूप में अपनाया जाता है। अंतर केवल इतना होता है कि इस अभिकल्प के अंतर्गत एक ही प्रयोज्य समूह तीन या तीन से अधिक प्रायोगिक उपचारों में भाग लेता है और इस प्रकार प्रत्येक प्रयोज्य की लक्षित अनुक्रिया का मापन पुनरावृत्त होता है। इसके कारण इस अभिकल्प में प्राप्त प्रदत्तों में त्रुटि प्रसरण की मात्रा कम होती है।

इस प्रकार के अभिकल्प में जो अध्ययन किए जाते हैं उसमें वातावरण जनित प्रासंगिक चरों के नियंत्रण पर विशेष ध्यान रखना आवश्यक होता है क्योंकि प्राणीगत प्रासंगिक चरों का नियंत्रण तो प्रत्येक दशा में उन्हीं प्रयोज्यों के प्रयोग के उपयोग के कारण स्वतः समाप्त हो जाता है। इस अभिकल्प में सांख्यिकीय विश्लेषण हेतु या यादृच्छिकीकृत खण्ड अभिकल्प हेतु प्रयुक्त एक दिशा प्रसरण विश्लेषण का उपयोग किया जाता है। जब आश्रित चर का स्वरूप कोटिक्रमिक या नामित होता है या अंतराली प्रकार का होते हुए भी प्रसरण विश्लेषण में निहित मान्यताओं की पूर्ति नहीं होती है तो अप्राचलिक सांख्यिकी परीक्षणों का उपयोग किया जाता है।

मूल्यांकन -

समूह अंतर्गत अभिकल्प का उपयोग काफी बचतपूर्ण है, क्योंकि इसमें सभी प्रयोज्यों के सभी दशाओं में प्राप्तांक उपलब्ध हो जाते हैं । जब प्रयोगात्मक परिस्थिति ऐसी होती है जिसमें प्रयोज्यों के मापन हेतु पर्याप्त व्यवस्था करनी पड़ती है, जिसमें व्याख्या के लिए समय, श्रम तथा उपकरणों आदि की अधिक व्यवस्था करनी पड़ती है तो ऐसी स्थिति में यह अभिकल्प अधिक उपयुक्त होता है। क्योंकि एक ही समूह के प्रयोज्यों पर सभी दशाओं में

अध्ययन करना सरल होता है। इस अभिकल्प का उपयोग त्रुटि-प्रसरण को कम करता है। क्योंकि इस अभिकल्प में उन्हीं प्रयोज्यों के उपयोग के कारण त्रुटि-प्रसरण से व्यक्तिगत भिन्नता के अंश को कम कर दिया जाता है।

प्रदत्तों का सांख्यिकीय विश्लेषण: सांख्यिकी विश्लेषण के सभी प्रयोज्यों के लब्धांकों को स्तम्भ अ तथा ब में व्यवस्थित कर इसका परीक्षण किया जाता है कि स्वतंत्र चर में परिवर्तन के कारण आश्रित चर पर प्रयोज्यों के प्राप्तांकों के मध्मानों में सार्थक अंतर प्राप्त हुआ है या नहीं। इसमें शून्य परिकल्पना यह होती है कि स्वतंत्र चर का सार्थक प्रभाव नहीं पड़ा है तथा दोनों दशाओं में (अ एवं ब) प्राप्त मध्यमानों का अंतर शून्य है। प्रायोगिक परिकल्पना यह होती है कि दोनों माध्यमानों का अंतर शून्य से सार्थक स्तर पर अधिक या शून्य से कम है।

Ho : Ma - Mb = 0 या Ma = Mb

HA : Ma - Mb # 0 या Ma - Mb > 0 या Ma - Mb < 0

इसमें टी-अनुपात की गणना कर देखा जाता है कि शून्य परिकल्पना को अस्वीकृत किया जा सकता है या नहीं। टी-अनुपात की गणना के लिए इस सूत्र का प्रयोग किया जा सकता है-

$$t = \frac{\sum D}{\sqrt{[N\sum D^2 - \{\sum D)^2] / N-1}}$$

D= प्रत्येक प्रयोज्य के प्राप्तांक युग्मों का अंतर

D^2= प्राप्तांक युग्म के अंतर का वर्ग

N= प्रयोज्यों की संख्या

यदि मापे जाने वाले आश्रित चर का वितरण सामान्य नहीं है तथा अध्ययन गत समूह बहुत छोटा है तो फिर सांख्यिकीय विश्लेषण हेतु अप्राचलिक सांख्यिकीय विधियों का उपयोग किया जाता है। इस स्थिति में चिह्न परीक्षण या बिल काक्सन के कोटि परीक्षण का उपयोग करना उचित होता है।

अनेक विशेषताओं के बावजूद इस अभिकल्प की कुछ परिसीमाएँ भी हैं: एक प्रायोगिक दशा के उपयोग का प्रभाव दूसरी प्रायोगिक दशा के आश्रित चर के मापन पर पड़ता है। इस अभिकल्प में प्रयोग समूह जब बहुत छोटा होता है तब प्रतिनिधित्वपूर्णता की कमी रहती है, इसके कारण परिणामों के सामान्यीकृत करने की सापेक्षिक रूप से कम क्षमता रहती है। इसमें एक दशा के उपयोग का अनुभव दूसरे समुपचारों के प्रभावों को

त्रुटिपूर्ण बनाता है। इस अभिकल्प में वातावरणजनित प्रासंगिक चरों का प्रभाव सापेक्षिक रूप से अधिक रहता है।

17.5 समूहान्तर अभिकल्प

समूहान्तर अभिकल्प यादृच्छिक समूह अभिकल्प का ही रूप है। इस अभिकल्प को द्विसमूह या दो स्वतंत्र समूह अभिकल्प भी कहते हैं । इसमें प्रत्येक प्रायोगिक उपचार के लिए एक अलग प्रयोज्य समूह का उपयोग किया जता है। दो यादृच्छिकीकृत समूह अभिकल्प में दो प्रयोज्य समूहों की जरूरत पड़ती है। दो से अधिक यादृच्छिकीकृत समूह अभिकल्प में कम से कम तीन या चार या पाँच या इससे अधिक प्रयोज्य समूहों का उपयोग किया जाता है। इन अभिकल्पों का उपयोग करने के पूर्व अध्ययन की समस्या के अनुसार लक्षित समष्टि से वांछित संख्या में यादृच्छिक रीति से प्रयोज्यों को चयन कर पुनः यादृच्छिक ढ़ंग से समूहों में विभक्त कर दिया जाता है। प्रत्येक उप समूह में अध्ययन की जाने वाली अनुक्रिया या उसके व्यवहार का मापन पूर्व निर्धारित प्रायोगिक उपचार करने के बाद किया जाता है। प्रायोगिक उपचारों में भिन्नता के आधार पर इसका परीक्षण किया जाता है कि मापी गई अनुक्रियाओं में सार्थक भिन्नता उत्पन्न हुई या नहीं ।

दो यादृच्छिकीकृत समूह अभिकल्प-

इस अभिकल्प में शोध के इस आधारभूत प्रश्न का उत्तर देने के लिए किया जाता है कि कोई निश्चित पूर्ववर्ती घटना या दशा पश्च घटना या दशा को उत्पन्न करती है या नहीं । इसमें पूर्ववर्ती घटना या दशा, स्वतंत्र चर एवं परिवर्ती घटना या दशा को आश्रित चर कहा जाता है। इसमें स्वतंत्र चर के दो मूल्यों का उपयोग किया जाता है। प्रत्येक मूल्य के उपयोग को प्रायोगिक उपचार कहा जाता है। सामान्यतः स्वतंत्र चर के दो मूल्यों में एक का मूल्य या स्तर शून्य तथा दूसरे की एक निश्चित मात्रा होती है। जिस समूह पर शून्य मूल्य के स्वतंत्र चर को दिया जाता है उसे नियंत्रित समूह एवं जिस समूह पर स्वतंत्र चर का एक निश्चित मूल्य दिया जाता है उसे प्रायोगिक समूह कहते हैं । कभी-कभी एक समूह के लिए स्वतंत्र चर की एक छोटी मात्रा तथा दूसरे समूह के लिए उसकी बड़ी मात्रा रखी जाती है। ऐसी दशा में प्रत्येक प्रयोज्य समूह एक दूसरे के लिए नियंत्रित समूह का कार्य करता है। वैसे इन्हें प्रायोगिक समूह प्रथम एवं प्रयोगिक समूह द्वितीय कहा जाता है। अक्सर ऐसा करते हैं कि दोनों समूहों में प्रयोज्यों की समान संख्या रहैं । वैसे दोनों समूहों में थोड़ी कम एवं अधिक संख्या भी रह सकती है। स्वतंत्र चर के विभिन्न मूल्यों का परीक्षण प्रयोग स्थिति से अन्य प्रासंगिक चरों को नियंत्रित या स्थिर रखकर प्रेक्षण या मापन किया जाता है। इस अभिकल्प से प्राप्त प्रदत्तों का विश्लेषण उपयुक्त सांख्यिकी के माध्यम से किया जाता है।

इस अभिकल्प में प्राप्त प्रदत्तों के विश्लेषण के लिए उपयुक्त सांख्यिकी विधियों के चयन के लिए तीन मुख्य आधार होते हैं । प्रथम यह कि आश्रित चर का मापन अन्तराली पर कोटिक्रम या नामिक स्तर पर किया

गया है। दूसरा यह है कि प्रत्येक समूह में लिए जाने वाले प्रयोज्यों की संख्या छोटी है या बड़ी । क्योंकि छोटी संख्या होने पर एक प्रकार की सांख्यिकी तथा बड़ी होने पर दूसरे प्रकार की सांख्यिकी विधियों का उपयोग किया जाता है। तीसरा यह है कि स्वतंत्र चर के प्रभावशाली होने पर दोनों समूहों के प्रदत्तों में सार्थक भिन्नता अवश्य होगी जिसके आधार पर प्रायोगिक परिकल्पना की पुष्टि हो जाती है। किन्तु सांख्यिकी विशेष का उपयोग करते समय शोधकर्ता शून्यय परिकल्पना को आधार बनाकर विश्लेषण की प्रक्रियां को आगे बढ़ाता है।

इस अभिकल्प में दोनों प्रयोज्य समूहों को आश्रित चर का लब्धांक अलग-अलग प्राप्त होता है। इन लब्धांकों के मध्यमानों की गणना कर ली जाती है। जब दोनों मध्यमानों के मूल्यों में अंतर पाया जाता है तब इसकी सार्थकता की जाँच की जाती है। इसमें विशेष रूप से दोनों मध्यमानों के अंतर को ही सार्थकता की जाँच के लिए विशेष रूप से टी-अनुपात की गणना की जाती है। जिसके लिए निम्नलिखित सूत्र का उपयोग किया जाता है।

$$\text{t - अनुपात} = \frac{m_1 - m_2}{\sqrt{\left(\frac{ss_1 + ss_2}{(n_1 - 1) + (n_2 - 1)}\right)\left(\frac{1}{n_1} + \frac{1}{n_2}\right)}}$$

$m_1 - m_2$ = दो प्रयोज्य समूहों के मध्यमानों का अंतर

ss_1 = प्रथम समूह के मध्यमान से लब्धांकों के विचलन वर्गों का योग

ss_2 = द्वितीय समूह के मध्यमान से लब्धांकों के विचलन वर्गों का योग

n_1 तथा n_2 = प्रथम समूह एवं द्वितीय समूह में प्रयोज्यों की संख्या

$$ss = \sum x^2 - \frac{(\sum x)^2}{n}$$

$\sum x^2$ = समूह के लब्धांक वर्गों का योग

$(\sum x)^2$ = समूह के लब्धांक के योग का वर्ग

टी-अनुपात की गणना के बाद उसकी सार्थकता की जाँच के लिए स्वायत्तता अंशों का निर्धारण किया जाता है। स्वायत्तता अंश (df) = $(n_1-1) + (n_2-1)$। पुनः सारिणी से प्राप्त स्वायत्तता अंश पर टी-मूल्य को .05 या .01 पर

देखते हैं कि यह मूल्य जो प्राप्त हुआ है वह अधिक है या कम। अधिक होने पर वह टी-मूल्य सार्थक होगा और कम होने पर प्राप्त टी-मूल्य सार्थक नहीं होगा। इसी के आधार पर प्रयोगात्मक या शून्य परिकल्पना को स्वीकृत या अस्वीकृत करते हैं।

मूल्यांकन -

इस अभिकल्प में किए गए अध्ययन से यह जानकारी प्राप्त होती है कि कोई स्वतंत्र चर किसी आश्रित चर को प्रभावित करता है या नहीं। परन्तु इस अभिकल्प के माध्यम से किसी स्वतंत्र चर और आश्रित चर विशेष के बीच प्रकार्यात्मक सम्बन्ध के स्वरूप का स्पष्ट निरूपण नहीं किया जा सकता है। अनेक स्थितियों में दो यादृच्छिकीकृत समूह अभिकल्प में किए गए प्रायोगिक अध्ययनों से चरों के प्रकार्यात्मक सम्बन्ध के बारे में भ्रामक प्रदत्त भी प्राप्त होते हैं। इसमें स्वतंत्र चर के मात्र एक मूल्य या अधिक से अधिक दो मूल्यों का ही प्रयोग किया जा सकता है। प्रयोज्य समूहों की संख्या के कम होने पर दोनों में प्रारम्भिक समतुल्यता भी संदिग्ध हो जाती है।

दो से अधिक यादृच्छिकीकृत समूह अभिकल्प

इस अभिकल्प के अंतर्गत यादृच्छिक रीति से गठित तीन या चार या इससे अधिक समूहों का उपयोग होता है। इसके अंतर्गत लक्षित समष्टि से यथेष्ट संख्या में प्रयोज्यों का चयन करके यादृच्छिक ढंग से 3,4,5 या 7 समूहों में बाँट लिया जाता है। प्रथम समूह को स्वतंत्र चर का शून्य मूल्य, दूसरे को अल्प मात्रा में और इसी प्रकार बढ़ाते हुए अंतिम समूह को अधिकतम मूल्य को उपचार हेतु दिया जाता है। उपचार के बाद प्रत्येक समूह में आश्रित चर का मापन किया जाता है। अनेक दृष्टिकोणों से यह अभिकल्प महत्वपूर्ण है। इस अभिकल्प में एक ही साथ स्वतंत्र चर के कई मूल्यों के सापेक्षिक प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। दो से अधिक समूहों वाले अभिकल्प के माध्यम से स्वतंत्र चर और आश्रित चर के प्रकार्यात्मक सम्बन्ध के सही स्वरूप का निरूपण सम्भव होता है। यह अभिकल्प इस दृष्टिकोण से भी अधिक उपयोगी है कि स्वतंत्र चर के दो से अधिक मूल्यों को लिया जा सकता है और देखा जा सकता है कि स्वतंत्र चर में कितनी वृद्धि पर किस तरह का परिवर्तन आश्रित चर पर होता है।

दो से अधिक यादृच्छिकीकृत समूह अभिकल्प के अंतर्गत किए गए प्रायोगिक अध्ययन से प्राप्त प्रदत्तों के आधार पर स्वतंत्र चर एवं आश्रित चर के बीच प्रकार्यात्मक सम्बन्ध के विषय में अनेक प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किए जाते हैं। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिए अलग-अलग प्रकार की सांख्यिकीय विधियों का उपयोग किया जाता है। प्रमुख रूप से एक दिश प्रसरण विश्लेषण, कोटि परीक्षण, चिह्न परीक्षण आदि सांख्यिकीय विधियों का उपयोग इस अभिकल्प में प्राप्त प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु किया जाता है। जब प्राप्त प्रदत्तों के वितरण प्रकृत होते हैं तो एकदिश प्रसरण विश्लेषण ही किया जाता है।

17.6 कारकीय अभिकल्प

कारकीय अभिकल्प शोध प्रारूपों का अति विकसित एवं महत्वपूर्ण स्वरूप है, जिसमें एक से अधिक स्वतंत्र चरों के प्रभावों तथा अंतः क्रियाओं का एक ही प्रयोग में अध्ययन होता है। अर्थात् जब एक से अधिक स्वतंत्र चरों प्ररभावों तथा उनकी आपसी अंतःक्रियाओं का एक ही प्रयोग या अनुसंधान में अध्ययन करना है तो हमें कारकीय अभिकल्प का उपयोग करना पड़ता है।

मैग्यूगन के अनुसार - "एक ही प्रयोग में दो या दो से अधिक स्वतंत्र चरों के अध्ययन के लिए एक संभव अभिकल्प कारकीय अभिकल्प है। एक पूर्ण कारकीय अभिकल्प वह है जिसमें प्रत्येक स्वतंत्र चर के चुने गए मूल्यों की सभी संभावित संयुक्तियों का उपयोग किया जाता है। "

करलिंगर ने कारकीय अभिकल्प को स्पष्ट करते हुए कहा है कि - "कारकीय अभिकल्प एक अनुसंधना संरचना है, जिसमें दो या दो से अधिक स्वतंत्र चरों को साथ-साथ जोड़ा जाता है जिससे आश्रित चर पर उनके द्वारा डाले गए स्वतंत्र तथा पारस्परिक अंतःक्रियाओं के प्रभावों को अध्ययन किया जा सके।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि -

1. कारकीय अभिकल्प में एक साथ दो या दो से अधिक स्वतंत्र चरों का अध्ययन किया जाता है।
2. प्रत्येक स्वतंत्र चरों के बीच पारस्परिक अंतःक्रिया के कारण आश्रित चर पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है।

कारकीय अभिकल्प में कारक से तात्पर्य स्वतंत्र चर से होता है। स्वतंत्र चर के संचालन के आधार पर दो प्रकार के स्वतंत्र चर (कारक) होते हैं । (i) वे कारक जिन्हें सक्रिय रूप से संचालित किया जा सकता है। (ii) वे कारक जिनका सक्रिय संचालन न होकर चयन किया जाता है। इन्हें चयन, वर्गीकरण या गुण कारक का नाम दिया जाता है। कारकीय अभिकल्पों में इन दोनों ही प्रकार के कारकों का उपयोग होता है। कारकीय अभिकल्प की प्रक्रिया पर प्रयुक्त कारकों की सक्रिय तथा चयन होने का प्रभाव पड़ता है।

कारकीय अभिकल्प में कम से कम दो कारक अवश्य होते हैं । वैसे इसमें अनेक कारकों को लेकर अध्ययन किया जा सकता है। कारकों की संख्या बढ़ा देने से अतःक्रिया प्रभावों की संख्या बहुत बढ़ जाती है। दो कारकों के होने पर मात्र एक अंतःक्रिया पंभाव होता है, जिसे द्विविध अंतःक्रिया कहा जाता है। तीन कारकों के होने पर त्रिविधि अ X ब, अ X स तथा ब X स और एक त्रिविध अंतःक्रिया प्रभाव अ X ब X स प्राप्त होते हैं।

इस अभिकल्प में प्रत्येक कारक के कम से कम दो मूल्य स्तर अवश्य होते हैं । कभी कभी एक कारक के दा या तीन तथा दूसरे कारक के तीन या चार या पाँच मूल्य या स्तर हो सकते हैं । कारकों की संख्या अध्ययनों के

उद्देश्यों पर निर्भर करती है। अक्सर अध्ययनों में दा या तीन कारकों को लेकर प्रत्येक कारक के दो या तीन स्तर लिए जाते हैं।

कारकीय अभिकल्पों में प्राप्त प्रदत्तों के आधार पर प्रत्येक काकक के अलग-अलग प्रभाव के साथ-साथ उनके संयुक्त या उनकी अंतःक्रिया से उत्पन्न प्रभाव की जानकारी प्राप्त होती है। अंतःक्रिया का तात्पर्य है एक कारक के किसी स्तर के प्रभाव पर दूसरे कारक के प्रभाव का निर्भर होना। कारकों के बीच सार्थक अंतःक्रिया के कई रूप हो सकते हैं।

कारकीय अभिकल्प में उपचारों की सभी सम्भव संयुक्तियों का योग कारकों के मूल्यों के गुणनफल के बराबर होता हैं। जब कारक दो हैं और प्रत्येक के मूल्य दो हैं तब चार सम्भव उपचार संयुक्तियाँ होती हैं। इसी प्रकार दो कारकों में एक के दो और दूसरे के तीन मूल्य होंगे तब 6 संयुक्तियाँ होंगी। जब दोनों के ही तीन-तीन मूल्य होंगे तो कुल 9 संयुक्तियाँ होंगी।

सामान्यतः कारकीय अभिकल्प में प्रत्येक संयुक्ति के लिए एक अलग उपसमूह का उपयोग किया जाता है। कारकीय अभिकल्पों में लिए जाने वाले उपसमूह में प्रयोज्यों की संख्या समान होती है।

कारकीय अभिकल्पों के प्रारूप-

कारकीय अभिकल्पों के प्रारूप कारकों की संख्या और प्रत्येक कारक के स्तरों की संख्या पर निर्भर करते हैं। कारकीय अभिकल्प में सामान्यतः दो या तीन कारकों को शामिल किया जाता है

1. द्विकारकीय अभिकल्प- कारकीय अभिकल्प का सरलतम रूप 2 X 2 कारकीय अभिकल्प है। इसमें दो स्वतंत्र चर तथा इनके दो-दो मूल्य या समुपचार निहित होते हैं।
2. द्वि X त्रि कारकीय अभिकल्प- इसके अंतर्गत किसी भी कारके के दो और दूसरे के तीन स्तर लिए जाते हैं। इसमें प्रयोग उपचार की 6 संयुक्तियाँ बनती हैं। प्रयोज्यों के 6 यादृच्छिकीकृत समूहों की जरूरत पड़ती है।
3. के X एल कारकीय अभिकल्प- द्विकारकीय अभिकल्प में किसी भी एक कारक के आवश्यकतानुसार 2, 3, 4, 5 स्तर और दूसरे कारक के 3,4 या 5 स्तर लिए जा सकते हैं।
4. त्रिकारकीय अभिकल्प- इसमें कभी-कभी तीन कारकों का उपयोग किया जाता है। इसके लिए एक कारक के 2, 3 या 4 स्तर तथा दूसरे कारक 2 या 3 स्तर और तीसरे कारक के भी 2 या 3 स्तर लिए जाते हैं। इनसे *2 X 2 X 2*, *2 X 2 X 3*, *2 X 3 X 3 X 3* और *2 X 3 X 4* कारकीय अभिकल्पों की संरचना होती है। इसके आधार पर जो प्रदत्त प्राप्त होंगे उनके आधार पर तीन कारकों के अलग-अलग प्रभावों, तीन द्विविध अंतः क्रिया तथा एक त्रिविध अंतक्रिया प्रभावों की जानकारी प्राप्त होगी।

कारकीय अभिकल्पों में किए गए अध्ययनों से जो प्रदत्त प्राप्त होते हैं उनसे परिशुद्ध परिणाम ज्ञत करने के लिए प्रसरण विश्लेषण किया जाता हैं । कारकीय अभिकल्पों में जितने कारक होते हैं प्रसरण विश्लेषण की उतनी दिशाएँ होती हैं। द्विकारकीय अभिकल्पों में प्रापत प्रदत्तों का प्रसरण विश्लेषण द्विदिश, त्रिकारकीय अभिकल्पों में त्रिदिश तथा चतुर्कारकीय अभिकल्प में चतुर्दिश प्रसरण विश्लेषण किया जाता है।

17.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात यह जान चुके हैं कि शोध अभिकल्प के प्रमुख प्रकार कौन-कौन से हैं और कब और किन दशाओं में किस अभिकल्प का उपयोग अनुसंधानकर्ता अपने अनुसंधानों में करता है। विशेषकर इस इकाई में समूह अंतर्गत अभिकल्प, समूहान्तर अभिकल्प एवं कारकीय अभिकल्प का विस्तृत वर्णन किया गया है। समूह अंतर्गत या प्रयोज्यान्तर्गत अभिकल्प में सभी प्रकार के प्रायोगिक उपचारों में एक ही प्रयोज्य समूह का उपयोग किया जाता है। इस अभिकल्प के अंतर्गत व्यापक स्तर पर दो प्रारूपों का अध्ययन हेतु उपयोग होता है - एक समूहः दो दशाएं अभिकल्प तथा एक समूहः बहु दशाएँ अभिकल्प । समूहान्तर अभिकल्प यादृच्छिक समूह अभिकल्प का ही रूप होता है। इस अभिकल्प को द्विसमूह या दो स्वतंत्र समूह अभिकल्प भी कहते हैं । इसमें प्रत्येक प्रायोगिक उपचार के लिए अलग-अलग प्रयोज्य समूह का उपयोग होता है। कारकीय अभिकल्प में एक से अधिक स्वतंत्र चरों के प्रभावों तथा अंतः क्रियाओं का एक ही प्रयोग में अध्ययन किया जाता है।

17.8 शब्दावली

- **समूह अंतर्गत अभिकल्प:** इस प्रकार के अभिकल्प में सभी प्रकार के प्रयोगिक उपचारों में एक ही प्रयोज्य समूह का उपयोग किया जाता है।
- **समूह अंतर अभिकल्प:** इस अभिकल्प को यादृच्छिकीकृत अभिकल्प भी कहा जाता है। इनके अंतर्गत प्रत्येक प्रायोगिक उपचार के लिए यादृच्छिक ढ़ंग से गठित पृथक प्रयोज्य समूह का मापन किया जाता है ।
- **कारकीय अभिकल्प:** जब यादृच्छिकीकृत समूहों में किसी आश्रित चर का मापन दो या दो से अधिक स्वतंत्र चरों का प्रहस्तन कर किया जाता है और उनका स्वतंत्र चरों के भिन्नताकारी तथा संयुक्त प्रभावों का निर्धारण किया जाता है तो उसको कारकीय अभिकल्प कहा जाता है। दूसरे शब्दों में - जब एक ही अध्ययन में एक साथ दो या दो से अधिक स्वतंत्र चरों का प्रहस्तन करनेकी व्यवस्था हो तो उसे कारकीय अभिकल्प कहा जाता है ।

17.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1) मैग्यूगन ने कितने प्रायोगिक अभिकल्पों का वर्णन किया है।

1-चार 2-पाँच 3-तीन 4-दो

2) लिण्डक्विस्ट ने मूलभूत ------ प्रायोगिक अभिकल्पों का वर्णन किया है।

3) समूह अंतर्गत अभिकल्प में सभी समुपचारों में -- समूह का अध्ययन हेतु उपयोग किया जाता है।

4) समूहान्तर अभिकल्पों में ------- प्रयोज्य समूह होते हैं।

5) कारकीय अभिकल्प में कारक से तात्पर्य ---- से होता है।

6) कारकीय अभिकल्पों में जितने कारक होते हैं ---- की उतनी दिशाएँ होती हैं।

उत्तर: 1. पाँच 2. छः 3.एक ही प्रयोज्य 4. अलग-अलग 5. स्वतंत्र चर 6. प्रसरण विश्लेषण

17.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- कपिल, डा0 एच0 के0 (2010): अनुसंधान विधियाँ- व्यवहारपरक विज्ञानों में, हर प्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशक, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- त्रिपाठी, जयगोपाल (2007): मनोविज्ञान एवं शिक्षा में शोध पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- त्रिपाठी, प्रो0 लाल बचन एवं अन्य (2008): मनोवैज्ञानिक अनुसंधान पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- सिंह, अरूण कुमार (2009), मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल- बनारसी दास पटना एवं वाराणसी।
- Goode, W.J. & Hatt, P. K. (1981): Methods in Scoial Research
- Festinger and Katz : Research method in Behavioural Sciences.
- Kerlinger, F. N. (1986): Foundations of Behavioural Research
- Mc Guin, F.J. (1990) : Experimental Psychology

17.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. मैग्यूगन द्वारा प्रस्तुत प्रायोगिक अभिकल्पों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. समूह अंतर्गत अभिकल्प का विस्तृत वर्णन करते हुए उसका मूल्यांकन कीजिए।
3. समूह अंतर अभिकल्प का विस्तृत वर्णन करते हुए उसका मूल्यांकन कीजिए।
4. कारकीय अभिकल्प क्या है, इसके विभिन्न प्रारूपों का वर्णन कीजिए।

इकाई 18. प्रदत्त संग्रहण की प्रविधियाँ- अवलोकन, प्रश्नावली, साक्षात्कार, श्रेणी मूल्यांकन, चिह्नांकन-सूची, समाजमिति (Technique of Data Collection: Observation, Questionnaires, Interview, Rating Scales, Check List, Sociometry)

इकाई संरचना

18.1 प्रस्तावना

18.2 उद्देश्य

18.3 प्रदत्त संकलन की प्रविधियाँ

18.4 निरीक्षण विधि

18.5 प्रश्नावली विधि

18.6 साक्षात्कार

18.7 निर्धारण मापनियाँ

18.8 चिह्नांकन सूची (चेक लिस्ट)

18.9 समाजमिति

18.10 सारांश

18.11 शब्दावली

18.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

18.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

18.14 निबंधात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

अनुसंधान में प्रदत्त संकलन की विधियों का भी अत्यधिक महत्व है। समस्या के स्वरूप के आधार पर अनुसंधानकर्ता प्रदत्त संकलन हेतु विधियों का निर्धारण करता है। ऐसी अनेक अनुसंधान विधियाँ है जिनका प्रदत्त

संकलन हेतु अनुसंधानकर्ता उपयोग करता है। ये प्रमुख विधियाँ हैं-प्रयोग विधि, निरीक्षण विधि, प्रश्नावली विधि, साक्षात्कार विधि रेटिंग मापनियाँ, चेकलिस्ट, समाजमिति आदि।

इस इकाई में प्रमुख रूप से निरीक्षण विधि, प्रश्नावली विधि, साक्षात्कार विधि, निर्धारण मापनियाँ, चिह्नांकन सूची समाजमिति विधि का वर्णन किया जा रहा है। निरीक्षण विधि वैज्ञानिक अनुसंधान का एक प्रमुख साधन है। वैज्ञानिक विधि के रूप में निरीक्षण का कार्य पर्याप्त सावधानी तथा सतर्कता की अपेक्षा रखता है। निरीक्षण विधि ही एक ऐसी विधि है जिसमें व्यवहार जैसा घटित हो रहा है वैसा ही अंकित किया जा सकता है। साक्षात्कार विधि में साक्षात्कारकर्ता एवं उत्तरदाता आमने-सामने बैठते हैं। इसमें साक्षात्कारकर्ता उत्तरदाता से मौखिक रूप से प्रश्न करता है और उत्तरदाता मौखिक रूप से उसका उत्तर देता है। प्रश्नावली विधि में उत्तर दाता के समक्ष सामान्यतया लिखित प्रश्नों का प्रपत्र या परीक्षण दिया जाता है, जिसका उत्तर वह स्वयं ही भरता है। अनुसंधानों में परीक्षणों एवं मापनियों का उपयोग वस्तुनिष्ठ मापन साधनों के रूप में किया जाता है। मापनी संकेतों या संख्याओं का एक सेट है। किसी उद्दीपन को मात्रात्मक रूप प्रदान करने हेतु चार प्रकार के मापको-नामिक, क्रम सूचक, अंतराली एवं अनुपातिक का उपयोग करते हैं। निर्धारण मापनियों का भी प्रयोग अनुसंधान में किया जाता है। निर्धारण मापनी किसी चर की मात्रा, तीव्रता एवं आकृति को निश्चित करती है। ये निर्धारण मापनियाँ भी पाँच प्रकार की होती हैं। अनुसंधान में प्रदत्त संकलन हेतु चेक लिस्ट (चिह्नांकनसूची) का भी उपयोग किया जाता है। जब छोटे समूह होते हैं एवं समूह की संरचना, उसके मनोबल या फिर समूह के सदस्यों के बीच पसंदगी-नापसंदगी, अंतःवैयक्तिक आकर्षण एवं विकर्षण का मापन करना होता है तब समाजमिति विधि का अनुसंधानकर्ता उपयोग करता है।

18.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह जान सकेंगे कि -

- निरीक्षण विधि क्या है ? इसके गुण-दोष क्या हैं?
- प्रश्नावली विधि का किस प्रकार से अनुसंधान में उपयोग किया जाता है।
- साक्षात्कार की क्या तकनीक होती है ?
- निर्धारण मापनियों का किस प्रकार से अनुसंधान में उपयोग करते हैं।
- चेक लिस्ट के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी।
- समाजमिति विधि क्या है?

18.3 प्रदत्त संकलन की प्रविधियाँ

व्यवहारपरक विज्ञानों में शोध समस्या के वैज्ञानिक एवं उत्तम उत्तर प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक होता है कि प्रदत्त संकलन हेतु उपयुक्त विधि का उपयोग किया जाय । मनोविज्ञान, शिक्षा तथा समाजशास्त्र में शोध समस्याओं का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करने के लिए तथा उससे सम्बन्धित महत्वपूर्ण तथ्य एवं प्रदत्त संकलन हेतु कुछ खास-खास विधियों का प्रतिपादन किया गया है। ऐसी विधियों में कुछ प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित है -

1- प्रयोग विधि

2- निरीक्षण विधि

3- प्रश्नावली एवं अनुसूची

4- निर्धारण मापनी

5- साक्षात्कार

6- केस अध्ययन विधि

7- समाजमितीय विधि

8- संपेक्षी विधि

9- अर्थ विभेदक मापनी

10- क्यूसार्ट विधि

11- अभिवृत्ति मापन प्रविधियाँ

12- चिह्नांकन सूची (चेक लिस्ट)

इसमें से कुछ प्रमुख विधियों का विस्तारपूर्वक वर्णन आगे किया जा रहा है ।

18.4 निरीक्षण विधि

व्यवहारपरक विज्ञानों में किसी भी शोध समस्या के अध्ययन एवं प्रदत्त संग्रह की यह एक पुरातन तथा आधुनिक विधि है। इसे प्रेक्षण विधि भी कहते हैं । इस विधि में शोधकर्ता व्यक्ति के व्यवहारों तथा घटनाओं के दृश्य तथा श्रव्य पक्षों को क्रमबद्ध ढंग से देख-सुन कर उसका रिकार्ड तैयार करता है। इसमें तथ्य संग्रह करते समय शोधकर्त्ता यह निरीक्षण करता है कि लोग क्या कर रहे थे और क्या कर रहे हैं । वह जो कुछ देखता एवं सुनता है उसका रिकार्ड कर लेता है। फिर बाद में सांख्यिकीय विश्लेषण कर, एक निश्चत निष्कर्ष पर पहुँचता है। विभिन्न

मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने ढंग से प्रेक्षण विधि को परिभाषित करने का प्रयास किया है। जहोदा और उनके साथियों के अनुसार - 'निरीक्षण हमारे दिन प्रतिदिन के जीवन की एक व्यापक क्रिया ही नहीं है, वरन् यह वैज्ञानिक अनुसंधान का एक प्रमुख साधन भी है।" गुडे एवं हाट के अनुसार - "विज्ञान निरीक्षण से प्रारम्भ होता है और अपने सिद्धान्तों की अंतिम पुष्टि के लिए पुनः निरीक्षण पर लौटना पड़ता है।" वैसे निरीक्षण या प्रेक्षण विधि को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है - "प्रेक्षण प्रदत्त या ऑंकड़े संग्रहण के रूप में एक ऐसी प्रविधि को कहा जाता है जिसके द्वारा विशिष्ट प्रकार की परिस्थितियों में प्राणियों से सम्बन्धित उन व्यवहारों का चयन, उत्तेजन, अभिलेखन एवं कूट संकेतन किया जाता है। जो शोध के उद्देश्यों से संगत होते हैं।"

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कह सकते हैं कि निरीक्षण या प्रेक्षण एक ऐसी वैज्ञानिक विधि है जिसमें निरीक्षणकर्त्ता प्राणियों के व्यवहारों का निरीक्षण एक विशेष परिस्थिति में करके उनसे प्राप्त ऑंकड़ों का विश्लेषण कर एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचता है।"

निरीक्षण विधि की मुख्य विशेषताएँ -

1- इस विधि में व्यवहार का ज्यों का त्यों अध्ययन किया जाता है।

2- इस विधि द्वारा अन्य विधियों के सापेक्ष अधिक वैध सामग्री का संकलन किया जाता है।

3- जब कभी व्यवहार का यथार्थ अंकन आवश्यक होता है तब निरीक्षण विधि में प्रयोग आवश्यक होता है।

4- जब व्यवहारों का वास्तविक स्थिति में निरीक्षण किया जाता है तब अति महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

5- जो उत्त्रदाता शाब्दिक रूप से उत्तर नहीं दे सकते हैं ऐसी स्थिति में निरीक्षण विधि ही प्रदत्त संकलन हेतु उपयुक्त होती है।

6- इस विधि का उपयोग एक प्रारम्भिक, पूरक, सहायक तथा मुख्य पद्धति के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

निरीक्षण विधि की परिसीमाएँ

1- घटना के दौरान ही उसका निरीक्षण किया जाता है। अतः जिन परिस्थितयों का हम अध्ययन करना चाहते हैं उनके घटित होने तक प्रतीक्षा करना पड़ता है।

2- घटना के घटित होने के साथ-साथ उस समय उस स्थान पर निरीक्षणकर्त्ता की उपस्थिति भी आवश्यक है।

3- घटनाओं के समय के विस्तार की दृष्टि से भी निरीक्षण पद्धति का प्रयोग सीमित है।

4- व्यवहार के अनेक ऐसे पक्ष हैं जिनका लोग विवरण देने को तो राजी हो सकते हैं लेकिन उनके निरीक्षण की अनुमति नहीं दे सकते।

निरीक्षण के प्रकार -

निरीक्षण में मुख्य रूप से तीन तरह की समस्याएँ आती हैं जिनके आधार पर निरीक्षण विधि के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं –

1. निरीक्षण में कितना नियंत्रण हो तथा कितनी स्वच्छन्दता रखी जाय इसके आधार पर निरीक्षण विधि के मुख्य दो प्रकार होते हैं --

(क) **नियंत्रित निरीक्षण** - इस तरह के निरीक्षण में निरीक्षणकर्ता एक निश्चित एवं स्पष्ट नियम के अनुसार प्रेक्षण या निरीक्षण करता है। इस तरह के निरीक्षण में स्थिति यदा-कदा स्वाभाविक भी हो सकती है, परन्तु अक्सर स्थिति काफी नियंत्रित होती है। जिससे अवांछनी तत्वों का प्रभाव न पड़ सके। इसमें निरीक्षणकर्ता पूर्व योजना के अनुसारप्रेक्षण करता है। नियंत्रित प्रेक्षण का मुख्य उद्देश्य एक वस्तुनिष्ठ, विश्वसनीय एवं वैध ऑकड़ों को संग्रह करना होता है। नियंत्रित स्थितियों में प्राप्त ऑकड़े और उसके आधार पर प्राप्त निष्कर्ष अधिक विश्वसनीय एवं वैध होते हैं।

(ख)**अनियंत्रित निरीक्षण** - इस प्रकार के निरीक्षण या प्रेक्षण में अक्सर एक स्वाभाविक परिस्थिति होती है। ऐसी परिस्थिति में दूसरे व्यक्तियों को यह जानकारी रहती है कि उनके व्यवहारों का प्रेक्षण किया जा रहा है। इस प्रकार के प्रेक्षण में कोई स्पष्ट नियम नहीं अपनाया जाता है। इसलिए इस प्रकार के निरीक्षण को अक्रमबद्ध निरीक्षण कहते हैं। संक्षेप में कहें तो ऐसे निरीक्षण में न तो प्रेक्षण पर नियंत्रण रहता है और न ही प्रेक्षित घटनाओं के घटित होने के स्वरूप पर ही कोई नियंत्रण रहता है। इसलिए ऐसे अनुसंधान को वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता है।

1- **प्रेक्षक की भूमिका** - प्रेक्षण की जाने वाली परिस्थिति में तटस्थ की हो या सक्रिय भागीदारी की, इस आधार पर निरीक्षण विधि के निम्नलिखित प्रकार होते हैं -

(i) **सहभागी निरीक्षण -** इस प्रकार के निरीक्षण में प्रेक्षणकर्त्ता व्यक्तियों के क्रिया-कलापों में स्वयं सक्रिय रूप से भाग लेता है और साथ ही साथ उनके व्यवहारों का प्रेक्षण भी करता है। अतः इस प्रकार के प्रेक्षण में प्रेक्षणकर्ता उस परिस्थिति का एक सक्रिय भाग बन जाता है जिसका प्रेक्षण किया जा रहा होता है। इस प्रकार की परिस्थिति में प्रेक्षक अपना परिचय सदस्यों से छिपाकर रखता है। इसमें प्रेक्षक को उन व्यक्तियों के साथ जिनके व्यवहारों का प्रेक्षण करना होता है सौहार्दपूण सम्बन्ध बनाकर रखना चाहिए। उनसे अपने को श्रेष्ठ नहीं समझना चाहिए।

(ii) **असहभागी निरीक्षण** - वैसे प्रेक्षण को कहते हैं जिसमें प्रेक्षक व्यक्तियों के व्यवहारों का निरीक्षण एक स्वाभाविक परिस्थिति में तो करता है परन्तु स्वयं व्यक्तियों के क्रिया-कलापों में हाथ नहीं बटॉंता है। ब्लैक तथा चैम्पियन के अनुसार -"असहभागी निरीक्षण एक ऐसी विधि है जिसमें अध्ययनकर्त्ता दूसरे व्यक्तियों के व्यवहारों का निरीक्षण एक स्वाभाविक परिस्थिति में करता है लेकिन प्रेक्षित व्यवहारों में वास्तविक सहभागी के रूप में कार्य नहीं करता है।" इस प्रकार का प्रेक्षण संगठित या संरचित होता है। इसमें प्रेक्षक इस बात की पूर्ण योजना पहले ही बना लेता है कि स्वाभाविक परिस्थिति का स्वरूप कैसा होगा । प्रेक्षकों की उपस्थिति से उत्पन्न होने वाली समस्याओं का समाधान कैसे किया जा सकता है, ऑंकड़ों में कहाँ तक सदृश्यमूलता होगी तथा किस ढ़ंग से इसका विश्लेषण किया जाय । असहभागी प्रेक्षण में प्रेक्षणकर्ता अक्सर व्यक्तियों के बीच बैठकर ही उनके व्यवहारों का प्रेक्षण करता है। इसे असहभागीता प्रेक्षण भी कहा जाता है।

2- प्रेक्षण प्रेक्षित व्यवहारों को विभिन्न वर्गों या श्रेणियों में बाँटकर या प्रेक्षित व्यवहार की विशेषताओं या मात्राओं के आधार पर निरीक्षण विधि के निम्नलिखित प्रकार है।

(i) **वर्गीकरण व्यवस्था -** इस विधि में प्रेक्षणकर्त्ता व्यक्तियों के व्यवहारों को विभिन्न वर्गो में बाटते हुए उसका अभिलेखन करता है। वर्गीकरण व्यवस्था के स्वरूप से तात्पर्य है वर्गों के प्रकार, वर्गों की संख्या, विभिन्न प्रकार के व्यवहारों के अध्ययन में उन वर्गों की उपयोगिता की सीमा आदि से होता है। इस विधि का महत्वपूर्ण लाभ यह है कि इस विधि द्वारा संग्रह किया गया तथ्य विश्वसनीय होता है। लेकिन इसमें समय एवं धन अधिक लगता है।

(ii) **रेटिंग या निर्धारण व्यवस्था** - इसमें शोधकर्त्ता किसी वस्तु, व्यक्तियों, घटना को एक दिए गए वर्ग मापनी के रूप में मापता है। रेटिंग मापनी के कई प्रकार हैं । समस्याओं के स्वरूप के आधार पर इनका अनुसंधान में उपयोग किया जाता है।

18.5 प्रश्नावली विधि

प्रश्नावली व्यवहारपरक शोध में प्रदत्त संकलन करने की एक लोकप्रिय एवं प्रचलित साधन है। प्रश्नावली एक ऐसे प्रश्नों की माला होती है जिसमें शोध समस्या से सम्बन्धित कई प्रश्न दिए होते हैं तथा जिसे उत्तरदाता प्रश्नों को ध्यानपूर्वक पढ़कर उनका उत्तर अपने अनुभव के आधार पर देता है और पुनः शोधकर्त्ता को उसे लौटा देता है। गुडे तथा हाट ने प्रश्नावली को परिभाषित करते हुए कहा है कि "सामान्यतः प्रश्नावली से तात्पर्य एक ऐसे साधन से होता है जिसमें एक प्रपत्र के सहारे प्रश्नों के उत्तर दिए जाते हैं तथा जिसे उत्तरदाता स्वयं भरते हैं।"

उक्त परिभाषा के आधार पर हम कह सकते हैं कि प्रश्नावली में प्रश्नों की कड़ी या माला होती है। प्रश्नावली को एक प्रपत्र के रूप में तैयार किया जाता है, जिसमें प्रश्न, उसके उत्तर एवं उसके उत्तर के लिए जगह, उत्तरदाता का नाम, पता, योग्यता आदि लिखने के लिए भी स्थान होता है। इसमें उत्तरदाता प्रश्नों को स्वयं पढ़ता है तथा उसका उत्तर देता है।

प्रश्नावली के प्रकार -

प्रश्नावली के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं -

1- **संरचित प्रश्नावली** - इस प्रकार की प्रश्नावली में प्रश्नों की प्रकृति वस्तुनिष्ठ, सीमित तथा प्रतिबन्धित होती है। इसमें प्रश्नों के उत्तर दिए रहते हैं । उनमें से किसी एक उपयुक्त उत्तर का चयन उत्तरदाता को करना होता है। इसमें सूचनादाता या उत्तरदाता की उत्तर देने की प्रकृति अधिकांशतया सीमित या प्रतिबन्धित ही रहती है।

2- **असंरचित प्रश्नावली -** इस प्रकार की प्रश्नावली में प्रश्नों के उत्तर नहीं दिए गए रहते हैं । उत्तरदाता पर किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध उत्तर देने पर नहीं रहता है। इसमें प्रश्नों का उत्तर वह खुलेकर देता है। जिसके कारण प्राप्त सूचना का स्वरूप विस्तृत, विवरणात्मक तथा गुणात्मक ही रहता है।

3- **मिश्रित प्रश्नावली** - इसमें संरचित तथा असंरचित दोनों ही प्रकार के प्रश्न दिए गए होते हैं । इसमें प्रायः विस्तृत तथा प्रतिबन्धित दोनों ही प्रकार की सूचनाएँ शामिल रहती हैं ।

4- **चित्रमय प्रश्नावली -** इस प्रकार की प्रश्नावली में मुख्यतया चित्रों का प्रयोग किया जाता है, लेकिन अध्ययन की दृष्टि से यह काफी खर्चीली होती है।

एक उत्तम प्रश्नावली की विशेषताएँ-

एक उत्तम प्रश्नावली में निम्नलिखित विशेषताओं का होना आवश्यक है -

1- अध्ययन समस्या का स्वरूप सैद्धान्तिक व व्यावहारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होना चाहिए।

2- प्रश्नों की संख्या उपयुक्त होनी चाहिए।

3- प्रश्नों का स्वरूप मिश्रित होना चाहिए।

4- प्रश्नों की भाषा सरल, स्पष्ट एवं निष्पक्ष होनी चहिए।

5- प्रश्नों की प्रकृति उपयुक्त होनी चाहिए।

6- प्रश्नों का अनुक्रम तर्कसंगत होना चाहिए।

7- प्रश्नों का स्वरूप ऐसा हो जिससे वस्तुपरक परिणाम प्राप्त हो सकें।

8- प्रश्नावली का विश्वसनीयता गुणांक उच्च स्तर का होना चाहिए।

9- वैधता गुणांक प्रश्नावली का उच्च होना चाहिए।

10- प्रश्नावली आकर्षक होनी चहिए।

11- प्रश्नावली में निर्देश पूर्ण एवं स्पष्ट होना चाहिए।

12- प्रश्नावली की लम्बाई कम होनी चाहिए।

13- प्रश्नावली में ऐसे ही प्रश्न पूछे जाँच जिसका उत्तर निसंकोच उत्तर दाता दे सकें।

प्रश्नावली विधि के लाभ -

1- इसमें विशाल तथा व्यापक समष्टि के अध्ययन की सुगमता होती है।

2- प्रश्नावली द्वारा अध्ययन में निष्पक्ष उत्तर प्राप्त होने के कारण अध्ययन की काफी सुगमता रहती है।

3- प्रश्नावली द्वारा अध्ययन वस्तुपरक एवं तर्क संगत प्रश्नों की रचना पर आधारित होता है। अतः अध्ययन में एकरूपता होती है।

4- प्रश्नों का स्वरूप प्रायः विविध प्रकार का होने से अध्ययन की जाने वाली समस्या के विभिन्न पक्षों का अध्ययन भी हो जाता है।

5- प्रश्नावली विधि द्वारा प्राप्त परिणाम वस्तुपरक होते हैं।

6- प्रश्नावली द्वारा अध्ययन में काफी सरलता एवं सुविधा रहती है।

7- समय कम एवं धन की भी बचत हो जाती है।

प्रश्नावली की सीमाएँ -

1- केवल उच्च स्तर के शिक्षित व्यक्तियों का ही अध्ययन प्रश्नावली द्वारा हो पाता है।

2- प्रश्नावली द्वारा प्रतिदर्श के पक्षपातपूर्ण प्रतिचयन की सम्भावना अधिक रहती है।

3- सार्वभौमिक प्रश्नों की रचना में कठिनाई होती है।

4- उत्तरदाता अधिकांश उत्तरों को पूरित नहीं करते हैं।

5- गहन तथा सतत् अध्ययन प्रश्नावली के द्वारा नहीं किया जा सकता है।

18.6 साक्षात्कार

साक्षात्कार विधि में साक्षात्कारकर्त्ता एवं उत्तरदाता दोनों ही आमने सामने बैठते हैं। इसमें साक्षात्कारकर्त्ता अपनी आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रश्न मौखिक रूप से उत्तरदाता से पूछता है और उत्तरदाता मौखिक रूप से उनके उत्तर देता है।

मैकोबी एंव मैकोबी के अनुसार- "साक्षात्कार से तात्पर्य आमने-सामने शाब्दिक आदान-प्रदान से है, जिसमें एक व्यक्ति जो साक्षात्कारकर्त्ता होता है, दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों से मतों, विश्वासों आदि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करता है।"

करलिंगर के अनुसार - "साक्षात्कार आमने-सामने अन्तः-व्यक्तित्व भूमिका की वह स्थिति है जिसमें एक व्यक्ति जिसका साक्षात्कार किया जा रहा है, उत्तरदाता से अपने अनुसंधान समस्या के उद्देश्यों के अनुरूप निर्मित प्रश्नों को पूछकर उनके उत्तर प्राप्त करना चाहता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि साक्षात्कार विधि में आमने-सामने प्रश्नोत्तर के रूप में शाब्दिक आदान-प्रदान के द्वारा साक्षात्कारकर्त्ता, उत्तरदाता से उसकी जानकारी की घटनाओं, अनुभवों, विश्वासों, मतों, भावनाओं, भूतकालीन व्यवहारों तथा भावी योजनाओं आदि के बारे में सूचना संग्रहित करता है। साक्षात्कार में विशेषकर साक्षात्कारकर्त्ता उत्तरदाता से मौखिक प्रश्न पूछता है। उत्तरदाता प्रश्नों का उत्तर साक्षात्कारकर्त्ता की ओर उन्मुख होकर देता है। शाब्दिक आदान-प्रदान का उद्देश्य अनुसंधान समस्या हेतु तथ्यों के एकत्रीकरण से होता है। साक्षात्कार में विशेष रूप से तथ्यों की जानकारी एवं कार्यों के औचित्य से सम्बन्धित प्रश्न पूछे जाते हैं।"

साक्षात्कार में प्रयुक्त प्रश्नों का प्रारूप दो प्रकार का होता है--

1- सीमित विकल्प या बन्द प्रश्न होते हैं।

2- दूसरे खुले या मुक्त प्रश्न होते हैं, जिसमें उत्तरदाता अपनी इच्छानुसार उत्तर देता है।

साक्षात्कार के प्रकार -

अनुसंधान में प्रयुक्त साक्षात्कार पद्धति के दो मुख्य प्रकार हैं -

1- **मानकीकृत साक्षात्कार** - इसमें उत्तरदाताओं से पूछे जाने वाले प्रश्नों का निर्धारण साक्षात्कार शुरू करने के पूर्व ही कर लिया जाता है। सभी प्रश्नों का क्रम उसकी भाषा, उसका क्रम बदलने की छूट साक्षात्कारकर्त्ता को नहीं रहती है। इसमें सभी कुछ पहले से ही निर्धारित रहता है।

2- **अमानकीकृत साक्षात्कार-** इसमें पूछे जाने वाले प्रश्न पूर्व निर्धारित नहीं रहते हैं। प्रश्नों की भाषा, उनके क्रम परिवर्तन की छूट साक्षात्कारकर्त्ता को रहती है। प्रयोज्य के अनुरूप साक्षात्कारकर्त्ता प्रश्नों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर लेते हैं।

इसमें सामान्यतया खुले एवं मुक्त-प्रश्नों का प्रयोग किया जाता है। समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा अनुसंधानों में दोनों ही प्रकार के साक्षात्कार का उपयोग पर्याप्त रूप से किया जाता है। कुछ विद्वानों ने मानकीकृत एवं अमानकीकृत के स्थान पर संरचित एवं असंरचित शब्दों का प्रयोग किया है। वास्तव में कोई भी साक्षात्कार परिस्थिति न तो पूर्ण मानकीकृत या संरचित होती है और न ही अमानकीकृत या असंरचित होती है।

साक्षात्कार विधि के प्रमुख चरण -

साक्षात्कार विधि के प्रमुख चरण निम्नलिखित होते हैं -

1- साक्षात्कार हेतु पूर्व तैयारी

2- मैत्रीपूर्ण वातावरण का निर्माण

3- प्रश्नों को पूछना

4- प्रतिक्रियाओं को प्राप्त करना

5- कथित सामग्री का अंकन

6- प्रतिचयन पर ध्यान

7- साक्षात्कारकर्त्ता - त्रुटि पर नियंत्रण

8- साक्षात्कार की परिसमाप्ति

9- साक्षात्कार प्रतिवेदन की रचना तथा प्रस्तुतीकरण

साक्षात्कार पद्धति की प्रमुख समस्यायें -

साक्षात्कार विधि में अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं जिनका निराकरण करना आवश्यक होता है -

1- साक्षात्कार के प्रश्नों का गठन सावधानी पूर्वक करना चाहिए।

2- साक्षात्कार सामग्री के अंकन की मूल समस्या होती है। इसके लिए सरलतम विधि का उपयोग करना चाहिए।

3- साक्षात्कार कर्त्ता-त्रुटि के स्रोत-इसका तात्पर्य है कि अक्सर साक्षात्कारकर्त्ता द्वारा पक्षपातपूर्ण ढंग से सामग्री का अंकन होने लगता है, इससे उसे बचना चाहिए। साक्षात्कार तथ्यों की विश्वसनीयता एवं वैधता की भी समस्या उत्पन्न होती है। साक्षात्कार द्वारा प्राप्त तथ्यों की विश्वसनीयता एवं वैधता तभी पायी जायेगी जब साक्षात्कार हेतु अपनाई गई विशिष्ट तकनीक का उपयोग हुआ हो। यह भी ध्यान देना होगा कि प्रश्न वही पूछे जाएं जो समस्या से सम्बन्धित हों। यह भी साक्षात्कारकर्त्ता को ध्यान देना होगा कि उत्तरदाता पूछे गए प्रश्नों का जबाब ठीक ढ़ंग से दे रहा है कि नहीं।

साक्षात्कार विधि के लाभ -

1- साक्षात्कार का प्रयोग अधिक व्यापक संख्या पर किया जा सकता है। इसका प्रयोग शिक्षित तथा अशिक्षित दोनों ही वर्गो पर किया जा सकता है।

2- परिस्थिति के अनुसार इस विधि में परिवर्तन किया जा सकता है।

3- साक्षात्कार में उत्तरदाता के उत्तर देते समय अन्य व्यवहारिक प्रतिक्रियाओं को भी देखने की सुविधा होती है।

4- साक्षात्कार में प्राप्त उत्तरों की जाँच करने की अधिक सुविधा है।

5- साक्षात्कार में प्रश्न मौखिक रूप से पूछे जाते हैं।

6- साक्षात्कार में प्रायः सभी प्रश्नों के उत्तर प्राप्त हो जाते हैं।

साक्षात्कार विधि की परिसीमाएँ -

1- कुछ उत्तरदाता प्रश्नों के उत्तर देने में कठिनाई का अनुभव करते हैं जबकि वे ही लोग लिखित रूप से उत्तर आसानी से दे देते हैं।

2- साक्षात्कारकर्त्ता त्रुटि के उत्पन्न होने की सम्भावना अधिक रहती है।

3- साक्षात्कार करते समय सभी प्रयोज्यों के लिए परिस्थितियों की एकरूपता बनाये रखने में कठिनाई होती है।

4- साक्षात्कार में गोपनीयता नहीं रहती है। इसलिए अधिकांश उत्तरदाता सही एवं खुलकर उत्तर देने में संकोच करते हैं।

18.7 निर्धारण मापनियाँ

निर्धारण मापनी को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि यह मापनियों मूल्यांकन की जाने वाली वस्तु के विभिन्न खण्डों की ओर ध्यान आकर्षित करती हैं। किन्तु इसमें इतने प्रश्न या वर्ग नहीं होते जितने जाँच सूची या प्राप्तांक कार्ड में होते हैं- गुड तथा स्केट

वान डैलोन के अनुसार - *"निर्धारण मापनी किसी चर की मात्रा, तीव्रता एवं आवृत्ति को निश्चित करती है। "* वास्तव में मापनी विधि एक सातत्य पर किसी वस्तु को क्रम देने की विधि है।

निर्धारण मापनियों के प्रकार -

सामान्य रूप से जिन निर्धारण मापनियों का उपयोग अनुसंधानों में किया जाता है उन्हें पाँच वर्गो में आंकिक, चित्रित, मानक, संचयी बिन्दु तथा बाधिक चयन में वर्गीकृत किया जा सकता है। इनका विस्तृत वर्णन नीचे किया जा रहा है।

1- **आंकिक निर्धारण मापनियाँ-** इन्हें एकीकृत तथा विशेष वर्ग की मापनियाँ भी कहा जाता है। इन मापनियों में निर्धारक सीमित संख्या में कुछ वर्गों का चयन करता है तथा उन्हें उनके मापनी मूल्य के अनुसार क्रमबद्ध कर लेता है। विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग ढंग से बिन्दुओं का निर्धारण किया है। कोई 5 तो कोई 7 या कोई 11 बिन्दुओं का प्रयोग निर्धारण मापनियों में किया है। इन मापनियों के केन्द्र में मध्य बिन्दु होता है। जिनके दोनों ओर समान अंतराल पर अन्य वर्ग स्थित होते हैं। इस प्रकार की मापनी का उदाहारण निम्नवत है। एक व्यक्ति का अपने मित्र के प्रति व्यवहार का निर्धारणः

10 9 8 7 6 5 4 3 2 1 0

अत्यधिक काल्पनातीत अत्यधिक सुखदायी अति सुखदायी साधारण सुखदायी कुछ सुखदायी तटस्थ कुछ दुखदायी साधारण दुखदायी अति दुखदायी अत्यधिक दुखदायी अत्यधिक कल्पनातीत

कुछ आंकिक मापनियों में अंक नहीं दिए रहते हैं बल्कि निर्धारक को अपने निर्णय केवल संकेतों के आधार पर देने होते हैं तथा निर्धारक बाद में इन पर अंक निर्धारित कर लेता है। उदहारणार्थ-

1 2 3 4 5

अत्याधिक सृजनात्मक सृजनात्मक साधारण असृजनात्मक अत्यधिक असृजनात्मक

उक्त संकेतों को 1 से 5 तक अंक दिए जाते हैं।

2- **चित्रित निर्धारण मापनियाँ -** इस प्रकार की मापनियों को अनेक रूपों में दर्शाया जाता है - एक ही रेखा को अनेक भागों में विभक्त कर या उसे एक सातत्य के रूप में रखकर। इस प्रकार की मापनी में निर्धारक उपयुक्त स्थान पर चिह्न मात्र लगाकर अपने निर्धारण को व्यक्त कर सकता है। निर्धारक का पथ प्रदर्शन के लिए इस प्रकार की मापनियों में हर मापनी बिन्दु पर संक्षिप्त निर्देशित कथन लिखे रहते हैं। इन कथनों द्वारा निर्धारक अपने निर्धारण का स्थानीयकरण कर सकता है। चित्रित मापनियों का निर्माण करते समय दो बातें पर ध्यान रखना चाहिए-

   (i) अति के कथनों को जहाँ तक हो सके उसे उपेक्षित करना चाहिए।

   (ii) विवरणात्मक कथनों को इस प्रकार रखना चाहिए कि सम्भवतया वे मापनी के आंकिक मूल्यों के निकट हो।

3- **मानक निधारण मापनी-** इसमें कुछ मानक विन्यास निर्धारकों को दिए रहते हैं। मानक प्रायः साधारण संकेतों से अधिक होते हैं। इसमें निर्धारण मापनी मूल्यों का पहले से ही निर्धारण कर लिया जाता है। इस मापनी में निर्धारण हेतु पाँच विशेषताओं का चयन किया जाता है। जब व्यक्ति से व्यक्ति का इन निर्धारित विशेषताओं के आधार पर मिलान करना होता है तब पॉचों विशेषताओं के आधार पर व्यक्तियों को क्रम में रखना होता है। इस प्रकार प्रत्येक सूची में प्रथम स्थान वाले व्यक्ति को मापनी में सर्वोत्तम विशेषता का प्रतिनिधित्व करने के लिए चयन कर लेते हैं। इसी प्रकार सबसे निम्न स्थान पाने वाले व्यक्ति का मापनी के निम्नतम स्थान का प्रतिनिधित्व करने के लिए निर्धारित कर लिया जाता है। मापनी के अन्य स्थानों के लिए इसी प्रकार व्यक्तियों का चयन कर लिया जाता है।

4- **संचयी बिन्दुओं द्वारा निर्धारण-** इसमें किसी व्यक्ति के अंक मापनी पर उसके द्वारा प्राप्त समस्त अंकों का औसत होता है। इसमें बिन्दुओं का चयन मानवीय निर्णय पर निर्भर करता है। इस प्रकार की मापनियों का प्रयोग कार्य पर लगे हुए व्यक्तियों के कार्य का मूल्यांकन करने के लिए किया जा सकता है।

5- **बाधिक चयन निर्धारण मापनी-** इस विधि में निर्धारक को यह नहीं बताना होता है कि किसी व्यक्ति में अमुक विशेषता है या नहीं बल्कि उसे विशेषताओं के युग्मों में से यह बताना होता है कि कौन सी विशेषताओं से वह दूसरे से अधिक है। इस युग्म में से एक समग्र विशेषता को बताने के लिए वैध होती है तथा दूसरी नहीं।

निर्धारण मापनियों का मूल्यांकन -

ये मापनियाँ युग्म तुलना और श्रेणी विधि की अपेक्षा अनेक दृष्टियों से उत्तम है। निर्धारण विधियों में युग्म तुलना एवं श्रेणी विधि से कम समय लगता है। इसका प्रयोग अधिक विस्तृत क्षेत्र पर किया जा सकता है। इस विधि में कुछ त्रुटियाँ भी हैं। इसमें सतत् त्रुटि, उदारता त्रुटि, तार्किक त्रुटि, विरोधी त्रुटि पाई जाती है।

18.8 चिह्नांकन सूची (चेक लिस्ट)

चिह्नांकन सूची का रूप बहुत कुछ अनुसूची के समान होता है। परन्तु चिह्नांकन सूची में जो प्रश्न होते हैं उनका स्वरूप अनुसची के प्रश्नों की तरह मुक्तोत्तर नहीं होता है। चिह्नांकन सूची में एक प्रश्न से सम्बन्धित वैकल्पिक उत्तर प्रश्न के ठीक नीचे दिए रहते हैं या फिर उनके उत्तर केवल हाँ व नहीं या पता नहीं के आधार पर ही होते हैं। संक्षेप में इस विधि के अंतर्गत सूचनादाता को दिए गए प्रश्न के उत्तर दिए गए वैकल्पिक उत्तरों में से किसी एक उत्तर को एक चिह्न के द्वारा जैसे - ठीक है, चित्र के द्वारा व्यक्त करना होता है। जैसे -

प्र0 मुझे अक्सर नींद आती रहती है।

1. हाँ 2. पता नहीं 3. नही

प्र0 क्या आप अंग्रेजी समाचार पत्र नियमित रूप से पढ़ते हैं?

1. हाँ 2. नही

प्र0 निम्नलिखित खेलों में आप किस खेल को प्रायः अधिक पसंद करते हैं।

1-फुटबाल 2-क्रिकेट 3-हाकी 4- बालीबाल

चिह्नांकन सूची में वैकल्पिक उत्तरों का स्वरूप जिस प्रकार एक व्यक्ति के व्यक्तित्व, उसकी अभिरूचि, अभिवृत्ति से सम्बन्धित रहता है ठीक उसी प्रकार इसके द्वारा एक समूह, समुदाय, संस्था, संगठन, योजना के प्रति भी उपयुक्त वैकल्पिक उत्तरों की रचना की जा सकती है और सम्बन्धित इकाई के प्रति आवश्यक वस्तुपरक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

चिह्नांकन सूची की रचना में ध्यान देने योग्य बातें -

1- सबसे पहले इसमें सम्बन्धित इकाई के विभिन्न पक्षों की विस्तृत जानकारी अध्ययनकर्त्ता को होनी चाहिए। इसके लिए सम्बन्धित साहित्य का उसे गहन अध्ययन करना चाहिए।

2- प्रश्नों की रचना तथा सम्बन्धित वैकल्पिक उत्तरों का स्वरूप व्यावहारिक होना चाहिए।

3- सम्बन्धित इकाई के अध्ययन का सम्बन्ध यथासम्भव व्यापक एवं सम्पूर्ण होना चाहिए।

4- प्रश्नों के प्रस्तुत करने की प्रक्रिया तर्कसंगत एवं क्रमबद्ध होनी चाहिए।

5- सूची में जिन विशेष शब्दों एवं पदों का उपयोग किया गया है, उनकी उपयुक्त संक्रियात्मक व्याख्या की जानी चाहिए।

18.9 समाजमिति

इस विधि का विकास जे0एल0 मोरेनो ने 1934 में सामूकि मनोबल के मापन के लिए किया। सामाजिक अनुसंधानों में अक्सर इस विधि का उपयोग सामूहिक संगठन, समूह संरचना, सामाजिक स्थिति, सामाजिक अंतःक्रियाओं, आकर्षण-विकर्षण पसंदगी-नापसंदगी के अध्ययन हेतु किया जाता है। इस विधि में एक समूह के सदस्यों से गोपनीय ढ़ंग से पूछा जाता है कि वे समूह के किन सदस्यों के साथ किसी विशिष्ट क्रिया को करना पसंद करेंगे या नापसंद करेंगे। किनका व्यक्तित्व आपको आकर्षित करता है या अपने समूह के किस सदस्य के प्रति विकर्षण की प्रतिक्रिया करते हैं। इस प्रकार समाजमिति केवल समूह सदस्यों में विद्यमान पसंदगी-नापसंदगी या आकर्षण-विकर्षण के मूल्यांकन का माप है।

जैनिंग्स ने समाजमिति को परिभाषित करते हुए कहा है कि-"समाजमिति को एक ऐसा यंत्र माना जा सकता जिसके माध्यम से एक विशेष समाज, एक विशेष समूह में प्रचलित सम्पूर्ण संरचना को स्पष्ट रूप से तथा आलेखीय आधार पर प्रस्तुत किया जा सकता है।"

करलिंगर के अनुसार - "समाजमिति एक विस्तृत पद है जिससे अनेक विधियों का संकेत मिलता है। इन विधियों के द्वारा व्यक्तियों का चयन, सम्प्रेषण और अंतःक्रिया प्रतिमानों से सम्बन्धित ऑंकड़ों का संकलन और विश्लेषण किया जाता है। "

अतः वैयक्तिक सम्बन्धों को ज्ञात करने के लिए समाजमितीय को परिष्कृत किया गया है। इस विधि में सर्वप्रथम समाजमितिक मापदण्ड का निर्माण किया जाता है। इस मापदण्ड का कथन निश्चित संकृत्यों के रूप में किया जाता है।

मान लीजिए कि किसी समूह में अंतः वैयक्तिक आकर्षण का अध्ययन करना है। समूह के प्रत्येक सदस्य से यह पूछा जायेगा कि वह किसी व्यक्ति विशेष को किसी विशेष क्षेत्र में पसंद करता है या नापसंद करता है। चूँकि इस प्रकार का प्रश्न पूछना बहुत उचित नहीं होता है इसलिए इतना ही पूछा जाता है कि आप अमुक कार्य के लिए किसी व्यक्ति को अधिक पसंद करेंगे। समूह के सदस्यों से प्राप्त स्वीकृति या अस्वीकृति के आधार पर

समाजमिति प्रदत्तों की आख्या की जा सकती है। इन प्रदत्तों के आधार पर समाज आलेख की भी रचना की जा सकती है। वैसे समाजमिति विधि द्वारा प्राप्त आंकड़ों का निरूपण कई विधिओं द्वारा किया जा सकता है।

समाजमितीय विश्लेषण की विधियाँ -

समाजमितीय विश्लेषण की प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित हैं-

1- आलेखीय विश्लेषण

2- समाज आलेख

3- समाज मितीय मैट्रिसेज

4- समाजमितीय सूचनाएँ

समाज आलेख -

समाजमितीय विश्लेषण की उपर्युक्त विधियों में से समाजमिति विधि द्वारा प्राप्त प्रदत्तों का विश्लेषण करने हेतु प्रमुख रूप से समाज आलेख प्रविधि का उपयोग किया जाता है। इस विधि में समूह के प्रत्येक सदस्य से यह प्रश्न पूछा जाता है कि आपके समूह का नेता कौन है या आप सबसे अधिक किसे पसंद या नापसंद करते हैं या किसका व्यक्तित्व अपको आकर्षित या विकर्षित करता है। प्राप्त पसंदगी, नापसंदगी, स्वीकृति-अस्वीकृति, आकर्षण या विकर्षण के आधार पर रेखा चित्र बनाया जाता है। इसे ही समाज आलेख कहते हैं। समाज आलेख की रचना में सर्वप्रथम प्रत्येक व्यक्ति को एक वृत्त के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। पुनः एक व्यक्ति के वृत्त से एक तीर उस व्यक्ति के वृत्त तक खींचा जाता है। जिसे वह पहला व्यक्ति पसंद करता है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति से प्रश्न किए जाते हैं तथा प्रत्येक वृत्त से दूसरे वृत्त तक तीर के निशान अंकित किए जाते हैं। समाज आलेख में जिस व्यक्ति को सबसे अधिक मत प्राप्त होते हैं या जिस व्यक्ति को सर्वाधिक पसंद किया जाता है या जिस व्यक्ति पर सर्वाधिक निशान होते हैं वह व्यक्ति ही नेता होता है। एक समूह में एक या अधिक नेता हो सकते हैं। समूह में जिस व्यक्ति को नेता के बाद बहुमत प्राप्त होता है वह समूह का उपनायक या गौड़ नेता कहलाता है। समूह में कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो दूसरों को तो पसंद करते हैं, परन्तु उन्हें कोई पसंद नहीं करता है, ऐसे व्यक्तियों को बहिष्कृत या एकाकी कहा जाता है। जब व्यक्ति आपस में एक दूसरे को पसंद करते हैं तो ऐसे सम्बन्धों को युगल सम्बन्ध का नाम दिया जाता है। जब एक सदस्य दूसरे को दूसरा तीसरे को तीसरा पहले को चुनता या पसंद करता है तो ऐसे सम्बन्धों को त्रिकोणात्मक सम्बन्ध कहते हैं। ऐसे सम्बन्ध समूह में गुटबंदी के प्रतीक होते हैं। समूह में कई त्रिकोणात्मक सम्बन्ध बनते है तब समूह असंगठित हो जाता है। ऐसी स्थिति में समूह का मनोबल गिरता है। कभी-कभी समूह में ऐसा भी होता है कि एक सदस्य दूसरे को दूसरा तीसरे को तीसरा चौथे को और चौथा पाँचवे

व्यक्ति को पसंद करता है तो ऐसे-सम्बन्धों को कड़ी का सम्बन्ध कहते हैं। इस प्रकार कई प्रकार के सम्बन्धों का अध्ययन समाजमिति विधि द्वारा हो जाता है। एक काल्पनिक उदाहरण द्वारा प्राप्त पसंदगी को समाज आलेख के द्वारा यहाँ स्पष्ट किया जा रहा है। समूह में दस सदस्य हैं, उनकी पसंदगी का विवरण इस चित्र में दिया गया है।

पसंदगी का विवरण

क्र0सं0	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
1			✓							
2			✓							
3		✓								
4			✓							
5			✓							
6							✓			
7								✓		
8									✓	
9							✓			
10	✓									
योग	1	1	4	0	0	0	2		1	0

समाजमिति विधि के लाभ -

समाजमिति विधि के कुछ प्रमुख लाभ निम्नलिखित है -

1- इस विधि द्वारा समूह की संरचना एवं समूह के सम्बन्धों का जितना अच्छा अध्ययन किया जा सकता है उतना अन्य विधियों द्वारा नहीं।

2- समूह सम्बन्धशीलता का अध्ययन सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

3- नेतृत्व एवं सामूहिक मनोबल का अध्ययन भी इस विधि द्वारा किया जा सकता हैं।

4- एक समूह में सदस्यों की स्थिति का भी अध्ययन किया जा सकता है।

समाज विधि के दोष -

समाज विधि के कुछ प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं -

1- इस विधि का अक्सर एक पूरक विधि के रूप में उपयोग किया जाता है।

2- इसका उपयोग केवल छोटे समूहों पर ही हो सकता है।

3- इस विधि द्वारा प्राप्त तथ्य अधिक मात्रात्मक नहीं होते हैं।

4- अधिकांश मनोवैज्ञानिक इस विधि को क्रमबद्ध एवं वैज्ञानिक विधि नहीं मानते हैं।

18.10 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान चुके हैं कि अनुसंधानों में प्रदत्त संकलन की कौन-कौन सी प्रविधियाँ होती हैं। विशेषकर निरीक्षण विधि, प्रश्नावली, साक्षात्कार, निर्धारण मापनियाँ, चेकलिस्ट एवं समाजमिति विधि के बारे में आपने विस्तृत अध्ययन किया होगा। प्रदत्त संकलन की इन प्रविधियों का मनोवैज्ञानिक अनुसंधान में विशेष रूप से उपयोग किया जाता है। निरीक्षण विधि जो प्रदत्त संकलन की एक उपयुक्त एवं महत्व पूर्ण विधि है। इसमें व्यक्तियों के व्यवहारों एवं घटनाओं के दृश्य तथा श्रव्य पक्षों को क्रमबद्ध ढंग से देख-सुनकर उसका रिकार्ड तैयार किया जाता है। निरीक्षण विधि को मुख्यतः विभिन्न आधारों पर वर्गीकृत किया गया है। इन आधारों पर यह विधि छः प्रकार की होती है - नियंत्रित, अनियंत्रित, सहभागी, असहभागी, वर्गीकरण व्यवस्था एवं निर्धारण व्यवस्था। प्रश्नावली एक ऐसे प्रश्नों की माला होती है जिसमें शोध समस्या से सम्बन्धित कई प्रश्न होते हैं। प्रश्नावली मुख्यतः चार प्रकार की होती है - संरचित, असंरचित, मिश्रित एवं चित्रमय। साक्षात्कार विधि में साक्षात्कारकर्त्ता एवं उत्तरदाता दोनों ही आमने-सामने बैठते हैं। साक्षात्कारकर्त्ता आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रश्न उत्तरदाता से पूछता है। साक्षात्कार दो प्रकार का होता है - मानकीकृत एवं अमानकीकृत। निर्धारण मापनी वह होती है जिसमें मूल्यांकन की जाने वाली वस्तु के विभिन्न खण्डों की ओर ध्यान आकर्षित किया जाता है। निर्धारण मापनियाँ पाँच प्रकार की होती है। आंकिक निर्धारण मापनियाँ, चित्रित निर्धारण मापनियाँ, मानक निर्धारण मापनी, संचयी बिन्दुओं द्वारा निर्धारण एवं बाधिक चयन निर्धारणमापनी। चिह्नांकन सूची का भी प्रदत्त संकलन में उपयोग किया जाता है।

समाजमिति विधि का सामाजिक मनोवैज्ञानिक अध्ययनों, अंतःवैयक्तिक आकर्षण- विकर्षण, पसंदगी-नापसंदगी लोगों के बीच शक्ति सम्बन्ध, समूह संशक्तिशीलता, समूहमनोबल आदि के अध्ययन में प्रयुक्त किया जाता है। इस विधि में सर्वप्रथम समाजमितिक मापदण्ड का नियोजन किया जाता है। इस मापदण्ड का कथन

निश्चित संकृत्यों के रूप में किया जाता है। समाजमिति विधि में लिखित या मौखिक रूप से प्रदत्त प्राप्त किए जा सकते हैं। इस विधि से विशेष रूप से अंतः वैयक्तिक सम्बन्धों का मापन होता है।

18.11 शब्दावली

- **निरीक्षण या प्रेक्षण:** विज्ञान निरीक्षण से प्रारम्भ होता है और अपने सिद्धान्तों की अंतिम पुष्टि के लिए पुनः निरीक्षण पर ही लौटना पड़ता है। निरीक्षण या प्रेक्षण को यंग के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त कर सकते है- प्रेक्षण-नेत्र माध्यम से किया गया स्वाभाविक घटनाओं के सम्बन्ध में एक ऐसा क्रमबद्ध तथा विचारपूर्वक अध्ययन है जो कि उनके घटित होने के समय पर किया जाता है। प्रेक्षण का उद्देश्य विषम सामाजिक घटनाओं, संस्कृति के प्रतिरूपों या मानव व्यवहार के अंतर्गत सार्थक अंतः सम्बन्धित तत्वों के स्वरूप तथा विस्तार को ज्ञात करना होता है।
- **प्रश्नावली:** सामान्यतः प्रश्नावली शब्द से एक ऐसे उपकरण का बोध होता है जिसमें प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के लिए कई प्रपत्र का उपयोग किया जाता है। जिसे सूचनादाता अपने आप भरता है।
- **साक्षात्कार:** साक्षात्कार से तात्पर्य एक ऐसी स्थिति से है, जिसमें एक व्यक्ति साक्षात्कारकर्ता आमने-सामने के पारस्परिक मौखिक आदान प्रदान से दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों को सूचना देने या अपने विचार तथा विश्वास व्यक्त करने के लिए प्रेरित करने का प्रयार करता है।
- **निर्धारण मापनी:** निर्धारण मापनी के अंतर्गत विभिन्न उद्दीपकों के प्रति निर्धारकों को अपना निर्धारण प्रत्येक उद्दीपक के प्रति एकल आधार पर तथा मात्रात्मक आधार पर व्यक्त करना होता है। यह मात्रात्मक आधार पर एक विशिष्ट संख्या, आलेखी निरूपण तथा शाब्दिक अंकन कुछ भी हो सकता है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत एक निर्धारक एक उद्दीपक के प्रति अपने निर्णय की अभिव्यक्ति दिए गए एक स्केल पर किसी एक निश्चित बिन्दु के द्वारा ही उस उद्दीपक को दिए गए विभिन्न संवर्गों में से किसी एक संवर्ग में रखकर व्यक्त करता है।
- **चेकलिस्ट(चिह्नांकन सूची):** इस विधि के अंतर्गत सूचनादाता को दिए गए प्रश्न के उत्तर व काल्पनिक उत्तरों में से किसी एक उत्तर को एक चिह्न के द्वारा व्यक्त करना होता है।
- **समाजमिति:** समाजमिति एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा समूहों में व्यक्तियों की स्वीकृति या अस्वीकृति के विस्तार के मापन के आधार पर उनकी सामाजिकस्थिति, संरचना तथा विकास का अन्वेषण, वर्णन एवं मूल्यांकन किया जाता है। इस विधि के द्वारा नेतृत्व, पूर्वाग्रह एवं मनोबल का भी मापन होता है।

- **समाज आलेख:** समाजमिति विधि द्वारा प्राप्त प्रदत्तों का विश्लेषण एवं प्रदर्शन कई विधियों द्वारा किया जाता है। इसमें से एक विधि समाज आलेख है। इसमें रेखा चित्रों के माध्यम से प्रत्येक सदस्य की पसंदगी या नापसंदगी को दर्शाया जाता है। इसी को समाज आलेख कहते हैं।

18.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1) निरीक्षण विधि को ------ कहते हैं।

2) निरीक्षण विधि में व्यवहारों का ---- अध्ययन किया जाता है।

3) सहभागी निरीक्षण में प्रेक्षणकर्ता ---- भाग लेता है।

4) असहभागी निरीक्षण में प्रेक्षणकर्ता स्वयं व्यक्तियों के क्रियाकलापों में --- बताता है।

5) प्रश्नावली एक ऐसे प्रश्नों की ---- होती है जिसमें शोध समस्या से सम्बन्धित कई प्रश्न दिए होते हैं।

6) प्रश्नावली का इनमें से कौन सा प्रकार नही हैं?

1- संरचित प्रश्नावली 2- असंरचित प्रश्नावली 3-मिश्रित प्रश्नावली

4- निर्धारण व्यवस्था

7) एक उत्तम प्रश्नावली में प्रश्नों की प्रकृति उपयुक्त होनी चाहिए - सत्य/असत्य

8) साक्षात्कार में साक्षात्काकर्ता एवं उत्तरदाता दोनों ही ---- बैठते हैं।

9) साक्षात्कार के मुख्य तीन प्रकार होते हैं - सत्य/असत्य

10) निर्धारण मापनियों के प्रमुख प्रकार हैं –

1- दो 2-पाँच 3-छः 4-तीन

11) समाजमिति का विकास किसने किया?

i. जेनकिन्स ii. जे0एल0 मोरेनो iii. सिगमण्ड फ्रायड iv. गुडे एण्ड हाट

12) प्रदत्तों के निरूपण हेतु समाज आलेख का कहाँ उपयोग करते हैं?

1. निरीक्षण ii. साक्षात्कार iii. समाजमिति iv. प्रश्नावली

उत्तर: 1-प्रेक्षणविधि 2-ज्यों का ज्यों 3-सक्रिय रूप से 4- हाथ नहीं 5-माला 6-निर्धारण व्यवस्था 7-सत्य 8- आमने-सामने 9-असत्य 10-पाँच 11-जे0एल0 मोरेनो 12-समाजमिति

18.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- कपिल, डा0 एच0 के0 (2010): अनुसंधान विधियाँ- व्यवहारपरक विज्ञानों में, हर प्रसाद भार्गव, पुस्तक प्रकाशक, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- भार्गव, महेश (2007): मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन, एच0पी0भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- श्रीवास्तव, डी0एन0 (2001): सामाजिक मनोविज्ञान, साहित्य प्रकाशन, आगरा
- त्रिपाठी, जयगोपाल (2007): मनोविज्ञान एवं शिक्षा में शोध पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- त्रिपाठी, प्रो0 लाल बचन एवं अन्य (2008): मनोवैज्ञानिक अनुसंधान पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- सिंह, अरूण कुमार (2009), मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल- बनारसी दास पटना एवं वाराणसी।
- Goode, W.J. & Hatt, P. K. (1981): Methods in Scoial Research
- Festinger and Katz : Research method in Behavioural Sciences.
- Kerlinger, F.N. (1986): Foundations of Behavioural Research
- Mc Guin, F.J. (1990) : Experimental Psychology

18.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. निरीक्षण विधि को स्पष्ट करते हुए इसकी विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. निरीक्षण विधि के प्रकारों का वर्णन कीजिए।
3. प्रश्नावली विधि क्या है? इसके प्रमुख प्रकारों का वर्णन कीजिए।
4. एक उत्तम प्रश्नावली की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
5. प्रश्नावली के गुण-दोषों की विवेचना कीजिए।
6. साक्षात्कार प्रविधि क्या है? इसके प्रकारों का वर्णन कीजिए।

7. साक्षात्कार विधि के प्रमुख चरणों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
8. साक्षात्कार पद्धति के लाभ एवं परिसीमाओं का वर्णन कीजिए।
9. निर्धारण मापनियों के प्रमुख प्रकारों का वर्णन कीजिए।
10. समाजमिति का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।
11. निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिए -

    i) समाज आलेख ii) असहभागी निरीक्षण

    iii) चेकलिस्ट iv) मानक निर्धारण मापनी

इकाई 19. शोध प्रस्ताव की तैयारी

(Preparation of Research Proposal)

इकाई संरचना

19.1 प्रस्तावना

19.2 उद्देश्य

19.3 शोध प्रस्ताव तैयार करना

19.4 सारांश

19.5 शब्दावली

19.6 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

19.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

19.8 निबन्धात्मक प्रश्न

19.1 प्रस्तावना

कोई भी शोध प्रस्ताव तैयार करना शोध प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण एवं कठिन कार्य है। शोध प्रस्ताव से तात्पर्य एक ऐसे प्रस्ताव से होता है जिसमें शोधकर्त्ता किसी शोध समस्या के समाधान के लिए विशेष कार्यविधि, संभावित समय एवं अनुमानित धन खर्च आदि का उल्लेख करता है। शोध कार्य शुरू करने के पूर्व शोधकर्त्ता को शोध प्रस्ताव तैयार करना उसकी मंजूरी के लिए आवश्यक होता है। अलग-अलग ढंग से विभिन्न संस्थाएँ शोध प्रस्ताव मॉगती हैं । अतः शोध प्रस्ताव का कोई निश्चित प्रारूप तो नहीं है, परन्तु किसी भी शोध प्रस्ताव में जो आवश्यक चरण होते हैं उनका वर्णन इस इकाई में किया जायेगा ।

19.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे:

- शोध प्रस्ताव कैसे तैयार किया जाता है।
- शोध प्रस्ताव देने के आवश्यक चरण ।

19.3 शोध प्रस्ताव तैयार करना

किसी भी शोध प्रस्ताव को तैयार करते समय निम्नलिखित चरणों का उल्लेख करना आवश्यक होता है –

1) **समस्या का उल्लेख तथा उसका महत्व-** सर्वप्रथम किसी भी शोध प्रस्ताव को तैयार करते समय जिस समस्या को लेकर अध्ययन करना होता है उसका उल्लेख करना आवश्यक होता है। समस्या का उल्लेख घोषणात्मक कथन के रूप में भी हो सकता है और प्रश्नवाचक कथन के रूप में किया जा सकता है। सामान्यतः शोध समस्या का उल्लेख करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि शोध का जो विशिष्ट लक्ष्य है वह स्पष्ट हो जाय । शोध का क्या महत्व है तथा इसका क्या लाभ होगा, इसका उल्लेख करना आवश्यक होता है। शोध समस्या के उल्लेख के कुछ उदाहरण इस प्रकार है -

    a. सहशिक्षा में नैतिकता का स्तर गिर रहा है।

    b. आर्थिक स्तर का शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन।

2) **परिभाषा, पूर्व कल्पना, परिसीमा तथा सीमांकन-** यह शोध प्रस्ताव का दूसरा चरण होता है। इसमें शोधकर्त्ता को शोध प्रस्ताव तैयार करते समय इन चार पक्षों का उल्लेख अवश्य करना चाहिए ।

अ-परिभाषा- शोध में शामिल किए जाने वाले सभी चरों को परिभाषित करना आवश्यक होता है। चरों को परिभाषित कर देने से शोध प्रस्ताव का मूल्यांकन करने में सहायता मिलती है।

ब-पूर्वकल्पना- शोध में किन-किन पूर्वकल्पनाओं का परीक्षण किया जायेगा उनका शोध प्रस्ताव में उल्लेख करना आवश्यक होता है।

स-परिसीमा- जो भी दोष शोध में होंगें या वे स्थितियाँ जो शोधकर्ता के नियंत्रण से बाहर होंगी, जिनका शोध निष्कर्ष की शुद्धता पर प्रभाव पड़ेगा, इनका भी शोध प्रस्ताव में उल्लेख करना आवश्यक होता है।

द-सीमांकन- सीमांकन से तात्पर्य अध्ययन की सीमा कहाँ तक होगी, इसका निर्धारण करना आवश्यक होता है। यह भी शोध प्रस्ताव में उल्लेख करना आवश्यक होता है कि अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष किन व्यक्तियों पर लागू होंगे।

3) **सम्बन्धित साहित्य की समीक्षा-** शोध प्रस्ताव तैयार करते समय यह आवश्यक होता है कि जिस समस्या का अध्ययन किया जाना है इसके पूर्व इससे सम्बन्धित जो शोध हुए हैं उनका उल्लेख अवश्य किया जाय, विशेषकर उन अध्ययनों को अवश्य जिनकी सार्थकता है। इस प्रकार की समीक्षा से यह लाभ होता है कि -

    i) पहले किए गए अध्ययनों की पुनरावृत्ति नहीं होती है।

ii) समस्या से सम्बन्धित उत्तम परिकल्पनाओं के निर्माण में सहायता मिलती है।

iii) सम्बन्धित शोधों के समीक्षा से यह ज्ञात हो जाता है कि अब तक समस्या से सम्बन्धित किन पक्षों का अध्ययन नहीं हुआ है।

4) **प्राक्कल्पना-** शोध प्रस्ताव तैयार करने के इस चरण में शोध समस्या से सम्बन्धित प्राक्कल्पनाओं का निर्माण करना आवश्यक होता है। प्राक्कल्पनाओं के उल्लेख से समस्या के स्वरूप तथा शोध के पीछे तर्क के विषय में पता चलता है। शोध प्राक्कल्पना शोध समस्या का प्रस्तावित अस्थायी उत्तर होती है। यह एक ऐसा अनुमान होता है जो पूर्व शोध या सिद्धान्त पर आधारित होता है। प्रदत्त संकलन के पूर्व प्राक्कल्पनाओं का निर्माण आवश्यक होता है।

5) **विधियाँ -** शोध प्रस्ताव के इस चरण में तीन बातों का उल्लेख करना आवश्यक होता है- प्रयोज्य, प्रक्रिया या कार्यविधि तथा प्रदत्त विश्लेषण कैसे किया जायेगा।

6) **समय अनुसूची-** शोध प्रस्ताव में शोधपूर्ण कर लेने की एक समय सीमा देना आवश्यक होता है। सामान्यतः शोध के कार्यों को छोट-छोटे भागों में बाँटकर प्रत्येक भाग (इकाई) को पूरा करने के समय का उल्लेख कर दिया जाता है।

7) **संभावित परिणाम-** शोध प्रस्ताव तैयार करते समय शोध के संभावित परिणामों का भी उल्लेख कर दिया जाता है। उन तथ्यों का भी उल्लेख कर दिया जाता है जो शोध के लिए महत्वपूर्ण होते हैं।

8) **संदर्भ-** इस चरण में शोध प्रस्ताव तैयार करते समय जिन वैज्ञानिकों के शोध का उल्लेख साहित्य समीक्षा में किया गया रहता है उनके शोधों एवं नाम का उल्लेख शोध प्रस्ताव में अवश्य किया जाता है।

9) **परिशिष्ट-** किसी भी शोध प्रस्ताव में परिशिष्ट का होना आवश्यक होता है। इसमें उन सभी सामग्रियों की सूची होती है जिसे शोध में उपयोग किया जाना है, इसमें उपयोग में लिए जाने वाले परीक्षणों या मापनियों, उपकरणों आदि की सूची भी अवश्य होती है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि किसी भी शोध प्रस्ताव के कई चरण होते हैं। इन चरणों को ध्यान में रखकर ही शोधकर्त्ता को शोध प्रस्ताव तैयार करना चाहिए।

19.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान चुके हैं कि किसी भी समस्या से सम्बन्धित कोई भी शोध प्रस्ताव तैयार करते समय इन चरणों में ही पूरा प्रस्ताव तैयार करना चाहिए - सर्वप्रथम समस्या का उल्लेख किया जाय तथा उसके महत्व को बतलाया जाय। इसके बाद अध्ययन में शामिल किए जाने वाले चरों को जिनका मापन

किया जाना है परिभाषित किया जाय । पूर्व कल्पना, अध्ययन की क्या परिसीमा होगी तथा अध्ययन क्षेत्र का सीमांकन आवश्यक है। तीसरे चरण में सम्बन्धित साहित्य की समीक्षा इसके बाद समस्या से सम्बन्धित उन प्राक्कल्पनाओं का उल्लेख करना आवश्यक होता है जिनका अध्ययन में परीक्षण या मापन करना होता है। पाँचवे चरण में किन प्रयोज्यों को लेना है ओर कितने प्रयोज्य होंगे, अध्ययन की विधि या प्रक्रिया क्या होगी तथा ऑकड़ों का विश्लेषण करने में किन उपयुक्त सांख्यिकीय विधियों का उपयोग किया जाएगा उल्लेख किया जाता है। शोध प्रस्ताव के छठवें चरण में इसका भी उल्लेख कर दिया जाता है कि शोध कितने समय में पूरा होगा अर्थात् शोध पूरा होने की समय सीमा तय कर दी जाती है। शोध में संभावित परिणाम क्या होंगे इसका भी उल्लेख अगले चरण में कर दिया जाता है। शोध प्रस्ताव को तैयार करने में जिन अनुसंधानों का सहारा लिया उसका उल्लेख संदर्भ के रूप में कर दिया जाता है। शोध प्रस्ताव के अंतिम चरण में शोध में प्रयुक्त हुए परीक्षणों, मापनियों, उपकरणों आदि की सूची परिशिष्ट के अंतर्गत लगा दी जाती है।

19.5 शब्दावली

- **शोध प्रस्ताव:** शोधकार्य प्रारम्भ करने के पूर्व शोधकर्त्ता एक शोध प्रस्ताव तैयार करता है जिसमें किसी शोध समस्या के समाधान के लिए विशेष कार्यविधि, संभावित समय एवं संभावित धन का व्यय आदि का उल्लेख करता है। इसी के आधार पर शोध प्रस्ताव का मूल्यांकन होता है तथा उसकी मंजूरी मिलती है।
- **समस्या:** किसी भी शोध में जिस समस्या का अध्ययन किया जाना है उसको शोध प्रस्ताव में स्पष्ट कर देना आवश्यक होता है। करलिंगर के अनुसार-समस्या एक प्रश्नात्मक कथन या वाक्य है जो स्पष्ट करता है कि दो या अधिक चरों में किस प्रकार का सम्बन्ध पाया जाता है। यह कथन समस्या के रूप में एक प्रश्न खड़ा करता है।
- **प्राक्कल्पना:** प्राक्कल्पना या परिकल्पना दो या दो से अधिक चरों के बीच स्थित सम्बन्ध के विषय में एक अनुमानिक (कल्पित) कथन है।" परिकल्पना किसी समस्या के संभावित उत्तर के रूप में किया गया कथन है।
- **सीमांकन:** इससे तात्पर्य अध्ययन की चाहरदीवारी से होता है। अध्ययन से प्राप्त तथ्य किन व्यक्तियों पर लागू होगा तथा उस विशिष्ट प्रतिदर्श के बाद निष्कर्ष को दूसरों के ऊपर सही नहीं माना जायेगा । इस प्रक्रिया को सीमांकन कहते हैं ।

19.6 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1) परिकल्पना दो या दो से अधिक चरों के बीच स्थित सम्बन्ध के विषय में एक --कथन है।

2) समस्या एक प्रश्नात्मक ----- है।

3) शोधकार्य प्रारम्भ करने के पूर्व शोधकर्ता एक ---- तैयार करता है।

4) शोध प्रस्ताव तैयार करने में कुल कितने चरण होते है?

1-चार 2-सात 3-आठ 4-नौ

उत्तर: 1-आनुमानिक 2-कथन या बाक्स 3-शोध प्रस्ताव 4- नौ

19.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- **कपिल, डा0 एच0 के0** (2010): अनुसंधान विधियाँ- व्यवहारपरक विज्ञानों में, हर प्रसाद भार्गव, पुस्तक प्रकाशक, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- **त्रिपाठी, जयगोपाल** (2007): मनोविज्ञान एवं शिक्षा में शोध पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- **त्रिपाठी, प्रो0 लाल बचन एवं अन्य** (2008): मनोवैज्ञानिक अनुसंधान पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- **सिंह, अरूण कुमार** (2009): मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल- बनारसी दास, पटना एवं वाराणसी।
- Goode, W.J. & Hatt, P. K. (1981): Methods in Scoial Research
- Festinger and Katz : Research method in Behavioural Sciences.
- Kerlinger, F.N. (1986): Foundations of Behavioural Research
- Mc Guin, F.J. (1990) : Experimental Psychology

19.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. शोध प्रस्ताव तैयार करने के प्रमुख चरणों का वर्णन कीजिए।
2. टिप्पणी लिखिएः
   i. समस्या
   ii. प्राक्कल्पना

इकाई 20. शोध प्रतिवेदन लेखन
(Writing a Research Report)

इकाई संरचना

20.1 प्रस्तावना

20.2 उद्देश्य

20.3 शोध प्रतिवेदन लिखना

20.4 सारांश

20.5 शब्दावली

20.6 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

20.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

20.9 निबन्धात्मक प्रश्न

20.1 प्रस्तावना

किसी भी समस्या पर अनुसंधान या शोध करके उसका निष्कर्ष निकाल लेना ही महत्वपूर्ण नहीं होता है बल्कि उसे एक वैज्ञानिक तरीके से प्रतिवेदित करना भी उसका मुख्य उद्देश्य होता है। प्रतिवेदन तैयार करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि उसके प्रस्तुतीकरण का स्वरूप इतना विस्तृत न हो कि उसमें अनावश्यक सूचनाएँ भर जाएं और यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इतना संक्षिप्त भी न हो कि उसमें आवश्यक सूचनाएँ आने से रह जाएं। इसलिए यह आवश्यक है कि प्रतिवेदन इस प्रकार का हो कि उसमें संगठित रूप से शोध से सम्बन्धित सभी आवश्यक सूचनाएँ अवश्य आ जाय। किसी शोध के प्रतिवेदन में अन्य बातों के अलावा स्पष्टता, यथार्थता तथा संक्षिप्तता तीन प्रमुख गुण होते हैं। किसी भी मनोवैज्ञानिक शोध को वैज्ञानिक ढंग से प्रतिवेदित करने के लिए अमेरिकन मनोवैज्ञानिक संघ ने जो प्रारूप तैयार किया है वह ठीक है। भारतीय मनोवैज्ञानिक भी इसी प्रारूप का उपयोग शोध प्रतिवेदन लिखने में कर रहे हैं।

20.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे:

- शोध प्रतिवेदन कैसे लिखा जाता है।
- शोध प्रतिवेदन से नई दिशा का बोध होगा।
- विज्ञान के वृहद क्षेत्र से शोध को जोड़ना।
- शोध की परख होगी।

20.3 शोध प्रतिवेदन लिखना

अमेरिकन मनोवैज्ञानिक संघ ने शोध प्रतिवेदन लिखने हेतु एक प्रारूप दिया है जिसका अनुपालन भारतीय मनोवैज्ञानिक भी अपने शोध को उसी ढंग से प्रकाशित कर रहे हैं। इस प्रारूप को ध्यान में रखते हुए मनोवैज्ञानिक शोध को हम निम्नलिखित भागों में बाँटकर प्रस्तुत कर सकते हैं -

1- शीर्षक पृष्ठ-

मनोवैज्ञानिक शोध का शीर्षक एक पृष्ठ पर अलग से लिखा जाना चाहिए। शीर्षक के नीचे शोधकर्त्ता का नाम तथा उनके संस्था जिससे वे सम्बन्धित है का उल्लेख होना चाहिए।

2- सारांश-

किए गए शोध को समान्यतः 15-20 पंक्तियों में सारांश के रूप में लिखना चाहिए। इसमें शोध के उद्देश्य, कार्यविधि, परिणाम एवं निष्कर्ष को अवश्य लिखना चाहिए। सारांश सुस्पष्ट एवं संक्षिप्त होना चाहिए।

3- प्रस्तावना या आमुख-

प्रस्तावना को एक अलग पृष्ठ पर लिखना चाहिए इसका कोई अलग से शीर्षक नहीं होता है। इसमें मुख्य रूप से शोधकर्त्ता शोध समस्या क्या है तथा उसका उद्देश्य क्या है का विशेष रूप से वर्णन करता है। इसमें शोध समस्या की पृष्ठ भूमि तैयार करने के दृष्टि से शोधकर्त्ता सम्बन्धित अध्ययनों का समीक्षात्मक रूप में वर्णन करता है। शोध के उद्देश्य को प्राक्कल्पना के रूप में उल्लेख किया जाता है। शोध में एक या एक से अधिक प्राक्कल्पना हो सकती है।

4- विधि-

यह प्रतिवेदन का मुख्य भाग होता है। इस भाग में शोधकर्त्ता विस्तार से शोध या प्रयोग के तरीकों का वर्णन करता है। इस भाग को तीन उपभागों में बाँटकर रिपोर्ट तैयार किया जाता है।

(क) **प्रयोज्य** - इसमें यह उल्लेख किया जाता है कि अध्ययन में प्रयोज्यों की संख्या क्या है। इनकी पूरी पृष्ठभूमि का उल्लेख करना आवश्यक होता है। प्रयोज्यों का चयन करने का ढ़ंग क्या था।

(ख) **उपकरण** - जिन उपकरणों या परीक्षणों का उपयोग शोध में हुआ रहता है उनका उल्लेख इसके अन्तर्गत किया जाता है।

(ग) **कार्यविधि-** प्रयोग या परीक्षण कैसे किया गया, प्रयोज्यों को क्या निर्देश दिए,किस प्रकार के शोध अभिकल्प का उपयोग शोध में किया गया इस सबका उल्लेख करना शोध प्रतिवेदन प्रस्तुत करते समय आवश्यक होता है।

5- परिणाम-

इस भाग में शोधकर्त्ता यह लिखता है कि प्रयोग या शोध में किस प्रकार के प्रदत्त (तथ्य) प्राप्त हुए। ऑकड़ों के विश्लेषण में किस प्रकार की सांख्यिकीय विधियों का उपयोग किया गया। परिणाम के आँकड़ों को ग्राफ, चित्र तथा सारिणी के रूप में भी व्यक्त किया जाता है। परिणाम लिखते समय यह ध्यान देना आवश्यक होता है कि प्राप्त आँकड़ों के आधार पर किसी भी प्रकार के अनुमान तथा निष्कर्ष का उल्लेख नहीं होना चाहिए।

6- विवेचना-

इस भाग में शोधकर्त्ता समस्या, परिणाम तथा प्राप्त निष्कर्षों का उल्लेख करता है। इसमें शोधकर्त्ता शोध से प्राप्त ऑकड़ों की व्याख्या करता है। वर्तमान शोध के परिणाम पहले के शोधों के परिणामों से मेल खाते हैं कि नहीं या उनसे भिन्न हैं। शोध प्राक्कल्पनाओं की पुष्टि हो रही है या नहीं। यदि शोध प्राक्कल्पना की पुष्टि नहीं हो रही है तो उन कारणों पर भी प्रकाश डाला जाता है कि जिससे ऐसा हुआ। विवेचना वाले इस भाग में प्राप्त परिणामों का सामान्यीकरण किन-किन के ऊपर किया जा सकता है, इसमें जो परिसीमाएँ होती हैं उनका भी वर्णन किया जाता है। उन चरों का भी उल्लेख किया जाता है जिनका नियंत्रण नहीं किया जा सका। यदि शोध प्रारूप या कार्य विधि में कोई परिवर्तन किया गया है तो उसका भी उल्लेख इस भाग में किया जाता है। इस भाग में शोध किस विषय से सम्बन्धित है तथा उसके प्राप्त परिणाम या निष्कर्ष क्या हैं का भी वर्णन किया जाता है।

7- संदर्भ-

इस भाग में उन सभी अध्ययनों या लेखकों को आकारादि क्रम से लिखा जाता है जिन्हें अध्ययन में शामिल किया गया था। संदर्भ को विशेषकर इस प्रकार लिखते हैं –

- **Anderson, R.L. and Baneroft, T.A. (1952).** Statistical Theory in Research. New york: Mc Graw Hill.
- **Cohen, L. (1955).** Statistical Methods for Social Scientists. An Introduction, N.J. Prentice Hall Inc.
- **D' Amato, M.R. (1970).** Experimental Psychology, New york : Mc Graw Hill

8- परिशिष्ट

इसमें शोधकर्त्ता शोध में प्रयुक्त परीक्षणों, विस्तृत सांख्यिकीय गणना तथा कम्प्यूटर कार्यक्रम आदि को रखता है।

20.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान चुके हैं कि शोध प्रतिवेदन को कैसे और किन चरणों में लिखा जाता है। संक्षेप में उन चरणों का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

1- शीर्षक पृष्ठ

अ- शीर्षक

ब- लेखक या शोधकर्त्ता का नाम एवं संबंधन

स- सतत् शीर्षक

द- आभारोक्ति

2- सारांश

3- आमुख या प्रस्तावना

अ- समस्या का उल्लेख

ब- साख्यिकी समीक्षा

स- उद्देश्य एवं प्राक्कल्पना

4- विधि

अ- प्रयोज्य

ब- परीक्षण या उपकरण

स- शोध अभिकल्प

द- कार्यविधि या प्रक्रिया

5- परिणाम

अ- सारिणी एवं चित्र

ब- सांख्यिकी प्रस्तुतीकरण

6- विवेचना

अ- प्राक्कल्पना की पुष्टि या अपुष्टि

ब- व्यावहारिक आशय

स- निष्कर्ष

7- संदर्भ

8- परिशिष्ट

20.5 शब्दावली

- **शोध प्रतिवेदन:** किसी समस्या का शोध करके उसके निष्कर्ष क्रियाविधि, उद्देश्य आदि का वैज्ञानिक ढ़ंग से प्रस्तुत करना ही शोध प्रतिवेदन कहलाता है।
- **सारांश:** शोध के उद्देश्य, निष्कर्ष, कार्यविधि, परिणाम आदि को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करना।

20.6 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1) शोध प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के कुल कितने अनुच्छेद हैं।

1-सात 2-पाँच 3-छः 4-आठ

2) विधि के अंतर्गत इनमें से किसका वर्णन नहीं किया जाता है।

1-प्रयोज्य 2-शोध अभिकल्प 3-उद्देश्य एवं प्राक्कल्पना 4-शीर्षक

3) सारिणी एवं चित्र शोध प्रतिवेदन के किस अनुच्छेद में दिया जाता है।

1-शीर्षक पृष्ठ 2-सारांश 3-परिणाम 4-विवेचना

4) इनमें से किसका विवेचना में वर्णन होता है।

1-निष्कर्ष 2-प्रयोज्य 3-आभारोक्ति 4-प्रयोज्य

उत्तर: 1-आठ 2-शीर्षक 3-परिणाम 4- निष्कर्ष

20.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- कपिल, डा0 एच0 के0 (2010)**:** अनुसंधान विधियाँ- व्यवहारपरक विज्ञानों में, हर प्रसाद भार्गव, पुस्तक प्रकाशक, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- त्रिपाठी, जयगोपाल (2007)**:** मनोविज्ञान एवं शिक्षा में शोध पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- त्रिपाठी, प्रो0 लाल बचन एवं अन्य (2008)**:** मनोवैज्ञानिक अनुसंधान पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- सिंह, अरूण कुमार (2009)**:** मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल- बनारसी दास, पटना एवं वाराणसी।
- Goode, W.J. & Hatt, P. K. (1981): Methods in Scoial Research
- Festinger and Katz : Research method in Behavioural Sciences.
- Kerlinger, F.N. (1986): Foundations of Behavioural Research
- Mc Guin, F.J. (1990) : Experimental Psychology

20.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. शोध प्रतिवेदन कैसे लिखा जाता है, उल्लेख कीजिए।
2. शोध प्रतिवेदन लिखने के अनुच्छेदों का सारांश लिखिए।